ओशो
की जीवन दृष्टि

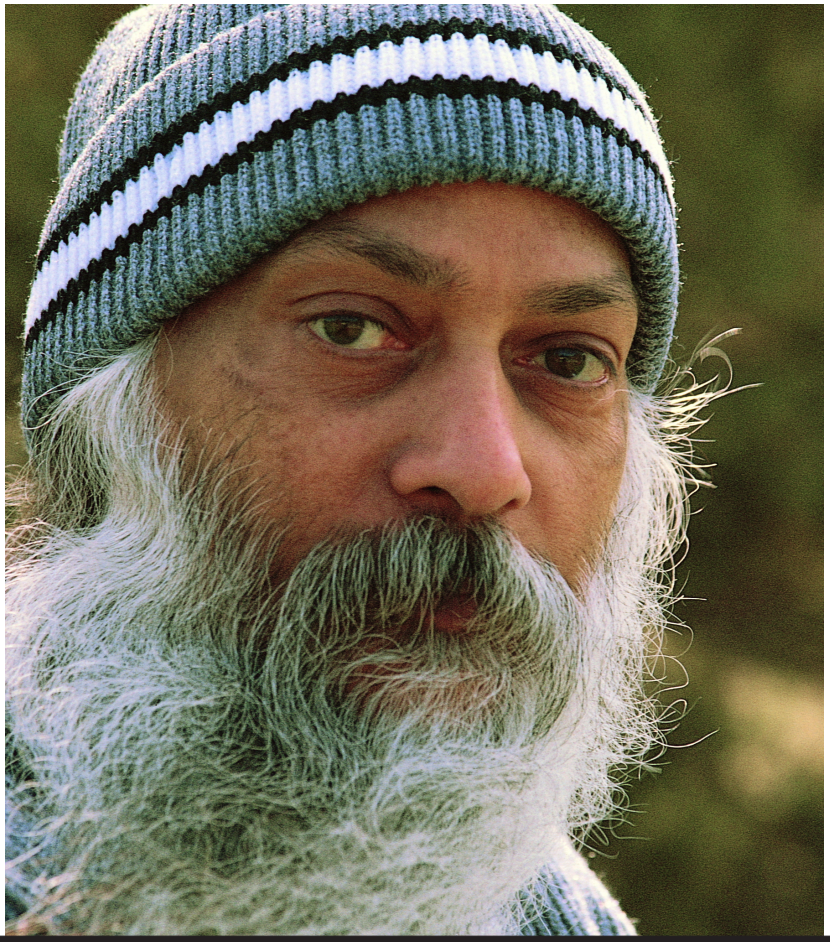

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

टी.वी. चैनल पर स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती
द्वारा दिए तीस इंटरव्यू का संकलन

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org
www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565,+91-7988969660
+91-7015800931

टी.वी. चैनल पर स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती द्वारा दिए तीस इंटरव्यू का संकलन (एम.पी.थ्री में आडियो भी उपलब्ध)

01 अनूठी विहंगम–दृष्टि	5
02 असंभव का प्रयास	11
03 कृष्ण–जन्म का रहस्य	17
04 अहिंसा, संयम और तप	23
05 हर परिस्थिति का सदुपयोग	29
06 असंतोष का कारण	35
07 कृष्ण के नजरिये से	41
08 तपश्चर्या का महत्त्व	47
09 धार्मिक इलाजः असफल?	53
10 गुरु बिन होय न ज्ञान	59
11 श्रेष्ठ आत्माओं का जन्म	65

12 चार पुरुषार्थ 73
13 ध्यान प्रेम और समाधि 79
14 विज्ञान एवं नास्तिकता 85
15 ओशो–परिवार की दीक्षा 91
16 बुद्ध से झोरबा का मिलन 97
17 दुख का कारण 103
18 आंतरिक तृप्ति कैसे मिले? 109
19 पौराणिक कथाओं के प्रतीक 115
20 सांख्य योग की विधि नहीं 121
21 समाधि में भय क्यों? 127
22 नकली गुरुओं की पहचान 133
23 अशांति के बीच शांति 139
24 संदेह स्वाभाविक है 145
25 स्वर्ग–नर्क यहीं हैं! 151
26 सामूहिक साधना 157
27 श्रेष्ठ शिष्य कौन? 163
28 गुरु से मिले नया जन्म 169
29 महत्त्वाकांक्षा का ज्वर 175
30 धीरे सब कुछ होय! 181

अध्याय–1

अनूठी विहंगम–दृष्टि

प्यारे सद्गुरु, आज से आप परमगुरु ओशो की जीवनदृष्टि पर प्रवचनमाला आरंभ करने जा रहे हैं। इस शुभ घड़ी पर हमारे प्रणाम स्वीकार करें। पहला प्रश्न दिल्ली से स्वामी प्रेम प्रमोद जी का है कि परमगुरु के अद्भुत और अनूठे दृष्टिकोण के बारे में कृपया हमें समझाने की अनुकंपा करें?

सबसे पहली बात ओशो के दृष्टिकोण के बारे में मैं कहना चाहूंगा कि उनका कोई एक सुनिश्चित दृष्टिकोण नहीं है। दृष्टिकोण हमेशा संकीर्ण होता है। ओशो की दृष्टि विहंगम दृष्टि है, पैनोरामिक व्यू। वे पूरे जीवन को एक नजर से देख रहे हैं इसलिए उनके दृष्टिकोण को हम दृष्टिकोण नहीं कह सकते। उसमें संकीर्णता नहीं, विराटता है। उसमें विरोधी तत्त्व भी सम्मिलित हैं। वे दो विपरीत बातों को विपरीत की तरह नहीं, परिपूरक की तरह देखते हैं। वे हमेशा द्वंद्व के पार, तीसरे अतिक्रमण बिन्दु की तरफ संकेत करते हैं। यह उनकी दृष्टि की एक खासियत है।

सच पूछो तो उनकी दृष्टि को हम एक दार्शनिक दृष्टि नहीं कह सकते। वे कोई फिलॉसफर नहीं हैं, वे कोई शास्त्र और सिद्धांत नहीं समझाते। शास्त्र में नहीं, सत्य में उनका भरोसा है। किसी सिद्धांत में नहीं, अनुभव की ओर ले जाने में, अंतर्यात्रा कराने में उनका रस है। वे जो कह रहे हैं, वह लोचपूर्ण है। जैसे एक डॉक्टर किसी मरीज से कहता है कि ठीक

से खाओ–पियो, किसी दूसरे मरीज से कहता है कि कम खाना खाओ, एक मरीज से कहता है कि रोज घंटा भर पैदल चला करो, दूसरे से कहता है कि बिल्कुल बेडरेस्ट करो। व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर करता है कि डॉक्टर कैसी सलाह देगा। ठीक इसी प्रकार ओशो के उत्तर हैं। उसमें अगर औसत सिद्धांत बनाने की कोशिश की तो मुश्किल में फंस जाओगे।

जैसे नदी बहती है अनिश्चित, निर्बाध, कब बाएं मुड़ जाएगी, कब दाएं, कब सीधी बहेगी; कहा नहीं जा सकता, ऐसे ही ओशो का प्रवाह सरिता के समान है। वे स्वयं के भी विपरीत जाने का साहस रखते हैं। वे अपनी ही बात को काट भी सकते हैं क्योंकि उनका लक्ष्य तर्क से कुछ सिद्ध करना नहीं है, कोई शास्त्र निर्मित करना नहीं है। बल्कि उस व्यक्ति की मदद करना है जो उनसे सवाल पूछ रहा है, जो उनके सामने बैठा है। वे शिष्य की सहायता करना चाहते हैं ताकि उसका विकास हो। उसे कोई सिद्धांत पकड़ाना नहीं चाहते, उसको कट्टरपंथी नहीं बनाना चाहते इसलिए उनका दृष्टिकोण बड़ा लोचपूर्ण है। और याद रखना, वे हमारे भीतर के विवेक और प्रज्ञा को जगाना चाहते हैं, वे हमें कोई नियम नहीं देना चाहते।

जीवन लोचपूर्ण है, अनुभव से परिपक्वता आती है। आज मैं जितना समझदार हूं, निश्चितरूप से आज से छः महीने बाद मैं और अनुभवी हो जाऊंगा, ज्यादा प्रौढ़ और परिपक्व हो जाऊंगा। साल भर बाद और ज्यादा समझदार बनूंगा। अब अगर आज मैं जिंदगी के बारे में कोई नियम बना लूं, कि मुझे भविष्य में कैसे जीना है, इसका अर्थ हुआ कम समझदार व्यक्ति ने ज्यादा समझदार व्यक्ति को बांध लिया।

इसलिए किसी नियम की जरूरत नहीं है, विवेक और प्रज्ञा की जरूरत है।

ओशो के दृष्टिकोण को अगर तुम दृष्टिकोण कहो तो वह गैर–गंभीर है, नॉन–सीरियस। ओशो कहते हैं सीरियसनेस इज ए स्पिरिचुअल डिसीज, गंभीरता एक आध्यात्मिक रोग है। अतीत के धार्मिक लोग बहुत गंभीर रहे और उनकी गंभीरता बहुत मंहगी पड़ी है। थोड़ा हंसो और खेलो। संत गोरख नाथ कहते हैं– हंसिबा खेलिबा करिबा ध्यानम्, वही ओशो का संदेश भी है। ओशो कोई धर्म नहीं सिखाते, संगठन में उनका रस नहीं है, धार्मिकता में उनका रस है। धार्मिकता एक क्वॉलिटी है, धर्म एक संगठन होता है। ओशो न तो परंपरा के पक्ष में हैं और न ही आधुनिकता के। कुछ बातें परंपरा में भी अच्छी थीं उनको बचाना, उनमें बहुत कूड़ा–कचरा है उन्हें हटाना। आधुनिकता में भी कुछ बातें सुंदर हैं, बचाने योग्य हैं, बहुत कुछ कूड़ा–कचड़ा है जो हटाने योग्य है। तो जिद नहीं करना कि मैं परंपरावादी बनूं कि आधुनिक बनूं, दोनों में से हीरे–हीरे चुन लेना, कचरा–कूड़ा अलग कर देना।

ओशो चाहते हैं 'व्यक्ति को शांति और समाज को क्रांति', यहां पर पुनः दो विरोधाभासी तत्त्व एक साथ आ जाएंगे। भीतर तो हम जीवन के केन्द्र में शांत हों, स्थिर हों; और जीवन की परिधि पर विद्रोह, परिवर्तनशीलता हमारी प्रकृति हो। परिधि तो बदलेगी गाड़ी के चाक की तरह लेकिन भीतर जो धुरी है वह थिर रहेगी। धुरी जितनी शांत हो, परिधि उतनी ही गतिमान हो सकेगी। तो शांति और क्रांति का समन्वय है ओशो का दृष्टिकोण।

वे अध्यात्म, मनोविज्ञान और विज्ञान तीनों को इकट्ठा जोड़कर देखते हैं। उनकी दृष्टि में

विभाजन नहीं है, जीवन एक अखण्ड सरिता की भांति है प्रवाहमान, परिवर्तनशील। अध्यात्म जीवन का केन्द्र है, विज्ञान उसकी परिधि है, मनोविज्ञान दोनों के मध्य में है। ओशो की दृष्टि में अध्यात्म का वैज्ञानिक रूप प्रगट होता है और विज्ञान को भी वे अध्यात्म के रंग में रंगना चाहते हैं। अधूरे–अधूरे हमने बहुत जीकर देख लिया, अब हमारा जीवन एक अखण्ड जीवन बने ऐसा उनका भाव है। संसार के कीचड़ में वे संन्यास का कमल खिलाना चाहते हैं, भोग से त्याग की ओर ले जाना चाहते हैं। इसलिए न वे भोग के पक्ष में हैं न ही त्याग के पक्ष में हैं। उनकी बात को गौर से एवं विस्तार से ही समझना होगा, संक्षिप्त में कहो तो बात बहुत मुश्किल हो जाती है।

ओशो बोलते तो शब्दों में हैं लेकिन उनका इशारा शब्दातीत मौन की तरफ है। वो जो शून्य में संगीत गूंज रहा है ओंकार का, उस ब्रह्मनाद में हमें डुबाना चाहते हैं। लेकिन उसमें डुबाने के लिए भी शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा, शब्दातीत के लिए भी शब्दों से ही इशारा करना पड़ेगा। ये मजबूरी है; बोलने में रस नहीं है, मौन में रस है। लेकिन चुप्पी के लिए भी समझाना पड़ता है।

और अंतिम बात कहना चाहूंगा, ओशो हमें आदेश नहीं देते, उपदेश देते हैं, समझाते हैं कि ऐसा करने से ऐसा होता है, ऐसा नहीं करने से ऐसा नहीं होगा। लेकिन कोई निर्देश नहीं है, कोई आज्ञा नहीं है। अक्सर गुरु लोग आज्ञा देते हैं शिष्य को। बौद्ध ग्रंथों में तैंतीस हजार नियम हैं शिष्य के पालन के लिए; ये तो याद रखना भी मुश्किल है, पालन कौन कर पाएगा! ओशो हमें कोई नियम नहीं देते, स्वतंत्रता देते हैं। वे स्वयं एक स्वतंत्र जीवन जिये और वे चाहते हैं कि उनके शिष्य भी स्वतंत्र जीवन जियें। लेकिन याद रखना, स्वतंत्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है, शिष्य का अर्थ है जो अनुशासन से जिये। अंग्रेजी में शिष्य को कहते हैं 'डिसाइपिल' अर्थात् जो 'डिसीप्लिन' का अभ्यास करने में उत्सुक हो।

मैं बार–बार कहता हूं कि ओशो की बातों में विरोधाभास है, स्वतंत्रता और अनुशासन का वहां मिलन है। इसलिए कह रहा हूं कि ओशो के दृष्टिकोण को दृष्टिकोण कहना बड़ा मुश्किल है और संक्षेप में नहीं कहा जा सकता, विस्तार से ही समझना होगा। अतः आज से नई प्रवचनमाला शुरू कर रहे हैं जिसमें विभिन्न पहलुओं से ओशो के दृष्टिकोण को समझाने की कोशिश करूंगा। एक शिष्य और क्या कर सकता है, अपने गुरु की कही हुई बातों को फिर–फिर कहता है और अपने ढंग से कहता है। निश्चित रूप से मेरे कहने का ढंग मेरा ही होगा।

अधिकतम बौद्ध ग्रंथ शुरू होते हैं इस वचन से कि हमने भगवान बुद्ध को ऐसा कहते हुए सुना। मैं भी आपसे कहना चाहता हूं कि इस प्रवचनमाला को इसी भाव से लेना। मैंने ओशो को जैसा समझा है, मैंने जैसा सुना है; वैसा ही मैं समझाऊंगा। मेरा आग्रह नहीं है कि ओशो ने यही कहा है। ऐसा मैंने सुना है, मैंने समझा है। हो सकता है मेरे समझने में भूल–चूक हो इसलिए आप स्वयं समझने की कोशिश करना, मेरी बात को जोर से न पकड़ना। हो सकता है जो मेरे भीतर सुगंध आई है समाधि की, वह आपके नासापुटों तक भी पहुंच जाए।

सदगुरु ओशो के संबंध में सुनो यह प्यारा गीत–

जहां भी देखता हूं तेरा रूप नजर आता है,
जो भी सुनता हूं तो तेरी आवाज सुना करता हूं,
सोचता हूं तो फकत याद तेरी आती है,
बोलता हूं तो बस जिक्र तेरा करता हूं,
मेरी चुप्पी में तेरी खामोशी समा गई मुर्शिद,
जो तू कहता मेरे लफ्जों में वही कहता हूं,
जां तो जां जिस्म भी रोशन है तेरी लौ से मेरा,
तेरे ही नूर से मैं शमां बनकर जलता हूं।
भूख लगती है तो लगती है तेरे प्यार की भूख,
तुझमें सोता हूं, जगता हूं, जीता–मरता हूं।
बस तेरे लफ्जों में मेरे लफ्ज समा जाएं,
और मेरे लफ्जों में तेरे लफ्ज समा जाएं,
मुझमें तू समा जाए, मैं तुझमें समा जाऊं।

ऐसा भाव शिष्य का होता है, उसी भाव से इस प्रवचनमाला को सुनना, गुनना।

दूसरा प्रश्न– दिल्ली से श्रीमती ऊषा जी का प्रश्न है, मैं एक पत्थर दिल इंसान हूं, भावुकता से भरे क्रियाकांड, पूजा–प्रार्थना आदि मुझे नहीं जमते, क्या मेरे लिए भी आनंद और शांति पाने का कोई मार्ग है?

निश्चित ही परमात्मा तक जाने का मार्ग, आनंद और शांति पाने का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए है, जहां तुम खड़े हो वहीं से। कुछ लोग कर्म के जगत में खड़े हैं, शरीर के तल पर, उनके लिए कर्मयोग मार्ग बनेगा। कुछ लोग हृदय तल पर हैं, भाव के तल पर, उनके लिए भक्ति मार्ग बनेगा। कुछ लोग विचार और बुद्धि के तल पर हैं उनके लिए गौतम बुद्ध का मार्ग ठीक रहेगा, वे ज्ञानमार्ग से चलें। सभी मार्ग उसी मंजिल तक जाते हैं। जैसे एवरेस्ट पर चढ़ना हो तो यदि भारत की तरफ से चढ़ोगे तो उत्तर की तरफ मुंह करके चढ़ना पड़ेगा, अगर चीन से चढ़ोगे तो दक्षिण की तरफ मुंह करके चढ़ना पड़ेगा। दोनों बिल्कुल भिन्न मार्ग होंगे, दिशाएं अलग होंगी, रास्ते के दृश्य अलग होंगे, लेकिन अंततः एक ही मंजिल पर पहुंचा देंगे। ठीक इसी प्रकार से सभी मार्ग वहीं तक जाते हैं। निश्चित रूप से भावुक व्यक्ति ज्यादा आसानी से अपनी आत्मा के केन्द्र में पहुंच सकता हैं। लेकिन भावुक लोग अब हैं कहां, विशेषकर आज का आधुनिक व्यक्ति, शिक्षित व्यक्ति, महानगर में रहने वाला बुद्धि के तल पर जीता है। बुद्धि से मार्ग थोड़ा कठिन है, इस संबंध में सुनो ओशो की यह अमृत वाणी–

हृदय से भरे हुए लोग सुगमता से परमात्मा की ओर चले जाते हैं, लेकिन हृदय से भरे हुए लोग हैं कहां? और हृदय से भरने का कोई उपाय भी तो नहीं है। हों तो हों, न हों तो न हों ऐसी आकस्मिक, नैसर्गिक बात पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बुद्ध ने उनको चेताया जिनको चेताना सर्वाधिक कठिन है, विचार से भरे लोग, बुद्धिवादी, चिंतन–मननशील। प्रेम और भाव

से भरे लोग तो परमात्मा की तरफ सरलता से झुक जाते हैं, उन्हें झुकाना नहीं पड़ता, उनसे कोई न भी कहे तो भी वे पहुंच जाते हैं, उन्हें पहुंचाना नहीं पड़ता। लेकिन वे तो बहुत थोड़े हैं और उनकी संख्या रोज थोड़ी होती गई है। अंगुलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग हैं। मनुष्य का विकास मस्तिष्क से हुआ है, मनुष्य मस्तिष्क से भरा है इसलिए जहां जीसस हार जाएं, जहां कृष्ण की पकड़ न बैठे वहां भी बुद्ध नहीं हारते हैं। वहां भी बुद्ध प्राणों के अंतर्तम में पहुंच जाते हैं। बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नहीं। शुरुआत बुद्धि से है, प्रारंभ बुद्धि से है क्योंकि मनुष्य वहां खड़ा है लेकिन अंत उसकी बुद्धि में नहीं है, अंत तो परम अतिक्रमण है। जहां सब विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है, जहां केवल साक्षी है, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोचविचार में कुशल हैं। बुद्ध के साथ एक नया अध्याय शुरू होता है। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पड़ेगा और जो आने वाली सदियों तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण किया और जिस तरह से विश्लेषण उन्होंने किया कभी किसी ने न किया था और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिए, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिए।

तीसरा प्रश्न– किशोर कुमार जैन राजस्थान से पूछ रहे हैं, मेरी शादी होने वाली है, धन–संपत्ति व दहेज का ख्याल रखते हुए वधु चुनूं, सद्गुणों वाली कन्या का वरण करूं अथवा प्रेम–भावना पर अधिक जोर दूं? कृपया मेरा मार्गदर्शन करें।

लगता है कि राजस्थान के पक्के मारवाड़ी हो और ऊपर से जैन, करेला और नीम चढ़ा। तुम्हारे प्रश्न से ही स्पष्ट है कि प्रेमभाव तुम्हारे जीवन का लक्ष्य नहीं है, तुम हृदय से जीने वाले नहीं हो। प्रश्न में तुमने जो सीक्वेंस रखा है सवालों का, सबसे पहले तुमने पूछा है कि धन–संपत्ति और दहेज का ख्याल, नंबर दो पर पूछा है अथवा सौंदर्य प्रतिभा आदि सद्गुणों वाली कन्या का वरण करूं और बिल्कुल अंत में रखा है अथवा प्रेम भाव पर जोर दूं? तुम्हारी लिस्ट में सबसे पीछे है प्रेम, अब तुम्हें क्या जवाब दूं! ऐसा करो भैया कि दहेज वाली बहू ही चुनो, उसी में तुम संतुष्ट होओगे।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल की बेटी ने आकर कहा कि पिताजी मैं एक युवक से शादी करना चाहती हूं, उसका नाम ये है, मैंने उसको पसंद कर लिया है और उसी से शादी करूंगी। चंदूलाल बहुत नाराज हुए, उन्होंने कहा नालायक, ऐसे कैसे शादी तय हो सकती है, अरे देखना पड़ेगा उसका काम–धंधा क्या है, उसका बैंक बैलेंस कितना है, जमीन कितनी है? बेटी बोली कि पिताजी आपको जानकर खुशी होगी, आपके और उसके विचार बिल्कुल मिलते–जुलते हैं, आपको जरूर पसंद आएगा, यही सारे सवाल वह मुझसे आपके बारे में पूछ रहा था।

अभी जो दूसरे प्रश्न के संबंध में ओशो ने कहा, भावुकता से भरे लोग हैं कहां? ठीक उसी का उदाहरण तुम पेश कर रहे हो किशोर कुमार जैन, भक्ति में डूबना तुम्हारे लिए मुश्किल

होगा। प्रेम तक में डूबना संभव नहीं है, तुम्हारे लिए दूसरा ही मार्ग चुनना होगा। असंभव का प्रयास न करना, नहीं है तुम्हारे पास हृदय तो नहीं है, कुछ किया नहीं जा सकता। जहां हो वहीं से यात्रा शुरू करनी होगी। पहला कदम वहीं से उठेगा जहां तुम खड़े हो। जरूर शादी करो, चाहे दहेज वाली कन्या से ही करो, छोड़ो फिक्र सौंदर्य और प्रतिभा की, छोड़ो फिक्र प्रेमभाव की, अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति से चलो, वहीं से तुम्हारे लिए रास्ता बनेगा।

अब पहले प्रश्न का उत्तर भी समझ लेना, लोचपूर्ण दृष्टि। यही सवाल किसी और ने पूछा होता तो मैं दूसरा जवाब देता, मैं स्वयं प्रेम का पक्षधर हूं मगर किशोर कुमार जैन, मारवाड़ी के लिए मुझे लोचपूर्ण होना पड़ेगा, मुझे स्वयं के विपरीत ही जवाब देना पड़ेगा। वही मैं कह रहा था कि लोचपूर्ण और सरिता के समान ओशो का दृष्टिकोण है। एक सुनिश्चित जवाब नहीं हो सकता, निर्भर करेगा कि किसने पूछा है, किस स्थिति से पूछा है, अपने-अपने रास्ते से चलो। अपने विवेक का उपयोग करो। आत्म-श्रद्धा से भरो। धन्यवाद। जय ओशो।

अध्याय–2

असंभव का प्रयास

पहला प्रश्न–प्यारे सद्गुरु कल आपने ओशो की विरोधाभासी दृष्टि के बारे में जो कहा वह मेरी समझ में नहीं आया, कृपया पुनः समझाएं? पूछ रहे हैं अमृतसर से दीनदयाल उपाध्याय जी।

कल मैंने एक उदाहरण दिया था उसी से फिर समझो गौर से। कोई दुबला पतला मरीज है तो डॉक्टर उससे कहता है कि ठीक से खाओ–पियो, थोड़े विटामिन्स लो; कोई मरीज मोटापे की बीमारियों से ग्रस्त है तो उसे डॉक्टर कहता है कि कम खाना खाओ। किसी को हृदय का रोग हो गया है तो उससे डॉक्टर कहता है कि चलो–फिरो नहीं, आराम करो; किसी को डॉक्टर कहता है अभ्यास करो, चलो–फिरो, मेहनत करो। अगर तुम वक्तव्यों पर जाओगे तो विरोधाभास नजर आएगा। उद्देश्य को देखो, इरादों को देखो, दोनों ही स्थितियों में डॉक्टर का इरादा क्या है... बीच का... स्वास्थ्य, वह बेहतर हो सके। ठीक इसी प्रकार सद्गुरु के वक्तव्य हैं। कोई व्यक्ति अतिकर्मठ है उससे कहेंगे कि थोड़े शांत बनो, शिथिल बनो। कोई व्यक्ति बहुत आलसी है, बहुत प्रमादी है तो उससे कहेंगे कि कर्मठ बनो, थोड़े राजसी बनो। उनकी कोशिश क्या है... मध्य में लाने की, क्योंकि मध्य में ही रूपांतरण होता है।

जरा सोचो, अगर हिटलर थोड़ा आलसी होता तो दुनिया का कितना भला होता। द्वितीय विश्वयुद्ध न हुआ होता। उसकी अतिकर्मठता ही द्वितीय विश्वयुद्ध में दुनिया को ले

गई। अतिकर्मठता भी पागलपन है, अतिआलस्य भी पागलपन है, मध्य में व्यक्ति स्वस्थ होता है, संतुलित होता है। हम एक शब्द का प्रयोग करते हैं संत, संत का मतलब है जो संतुलित है। वक्तव्यों पर मत जाना, उनके पीछे छिपे इरादों पर ध्यान रखना।

दूसरा प्रश्न–होशंगाबाद मध्यप्रदेश से रामलखन तिवारी जी पूछ रहे हैं, प्रेमिका से शादी, उच्च शिक्षा, आई.ए.एस. की नौकरी और खूब सारी संपत्ति, बस कुल जमा ये चार इच्छाएं थीं। बदकिस्मती से एक भी पूरी न हो सकी, चित्त सदा अशांत रहता है। क्या ईश्वर से साक्षात्कार को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने से राहत मिलेगी? कृपया सांत्वना के दो शब्द कहें।

रामलखन तिवारी, सांत्वना क्यों, सत्य ही सुनो। सत्य यह है कि शून्यता हमारा स्वभाव है। और हम इस शून्यता को भरने की नायाब कोशिश जिंदगीभर करते रहते हैं। जैसे संसार में बाहर चार दिशाएं हैं– उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम ठीक उसी प्रकार हमारी चार मनोदशाएं हैं जिनसे हम अपने को भरने की कोशिश करते हैं, धन, पद, यश और ज्ञान। जब मैं कहता हूं यश तो मेरा तात्पर्य है प्रेम। प्रेम का अर्थ है दो–चार लोगों से मुझे प्रेम मिले और यश–प्रतिष्ठा का अर्थ है कि बहुत लोग मुझे प्रेम करें। तो ये चार मुख्य आकांक्षाएं हैं, ये चार मुख्य दिशाएं हैं जिनमें हम दौड़ते हैं। तुमने चारों बातें एक साथ गिना दीं, प्रेमिका से शादी, दूसरा तुम कह रहे हो उच्च शिक्षा की प्राप्ति अर्थात् ज्ञान, तीसरा कह रहे हो आई.ए.एस. की नौकरी अर्थात् ऊंचा पद, शक्ति और ताकत और चौथा तुम कह रहे हो खूब सारी संपत्ति। चारों ही दिशाओं में तुमने दौड़ने की सोची और जो व्यक्ति चारों दिशाओं में दौड़ेगा वह कहीं भी न पहुंच पाएगा। एक दिशा में जाते तो शायद कहीं पहुंच भी जाते। यद्यपि वहां जाकर भी पता चलता कि भीतर की शून्यता भरी नहीं, खालीपन ज्यों का त्यों है। चारों दिशाओं में दौड़ना तो ऐसे हो गया जैसे किसी बैलगाड़ी में चारों दिशाओं में बैल जोड़ दिये। कोई आगे खींच रहा है, कोई पीछे खींच रहा है, कोई दाएं खींच रहा है कोई बाएं, अब ये बैलगाड़ी कहां पहुंचेगी, कहीं भी नहीं। वहीं टूटकर नष्ट हो जाएगी। जैसे किसी कार में चारों दिशाओं में इंजन लगे हों, अब ये कार कहीं भी यात्रा नहीं कर पाएगी। ठीक ऐसे ही तुम्हारे जीवन की दुर्गति हुई।

अब तुम पूछ रहे हो कि क्या ईश्वर साक्षात्कार को अपने जीवन का उद्देश्य बना लूं? मैं कहूंगा नहीं, अब तुम फिर नए सपने गढ़ने लगे। अभी पुराने सपने टूटे नहीं कि फिर नया सपना शुरू। पुराने सपनों की व्यर्थता देखो। अब ईश्वर को प्राप्त करने चल पड़े। फिर एक नया सपना, फिर एक नई आशा, अब बाकी की जिंदगी तुम व्यर्थ में गंवा दोगे। अक्सर ऐसा होता है कि संसार से लोग परास्त हो जाते हैं, थक जाते हैं, हार जाते हैं और फिर वे धार्मिक हो जाते हैं। यही लोग तथाकथित धार्मिक होते हैं। मेरी दृष्टि में धार्मिक नहीं, ओशो की दृष्टि में धार्मिक नहीं। संसार के ठीक विपरीत काम करने लगते हैं, फिर नई आशाएं, फिर नए सपने।

गौतम बुद्ध के प्रसिद्ध ग्रंथ धम्मपद पर बोलते हुए सुनो ओशो क्या कहते हैं–

'साधारणतः आदमी की जिंदगी क्या है? कुछ टूटे–फूटे सपने, कुछ भविष्य की आशा

में अटके। आदमी की जिंदगी क्या है? अतीत के खंडहर, भविष्य की कल्पनाएं। आदमी का पूरा होना क्या है? चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, काम करते हैं, कुछ पक्का पता ही नहीं कि क्यों, कुछ साफ जाहिर नहीं कि कहां जा रहे हैं। बहुत जल्दी में भी जा रहे हैं, पहुंचने की तीव्र उत्कंठा है लेकिन पक्का नहीं है कि कहां पहुंचना चाहते हैं। किस तरफ जाते हो? कल मैं एक गीत पढ़ रहा था साहिर का–

न कोई ज्यादा, न कोई मंजिल, न रोशनी का सुराग,
भटक रही है कलाओं में जिंदगी मेरी।

न कोई रास्ता, न कोई मंजिल, रोशनी का सुराग भी नहीं, कोई एक किरण भी नहीं और पूरी जिंदगी अंधेरी घाटियों में, शून्य में भटक रही है। भटक रही है कलाओं में जिंदगी मेरी। ऐसे ही मनुष्य की दशा है सदा से। बहुत सी झूठी मंजिलें भी तुम बना लेते हो, राहत के लिए कुछ तो चाहिए। सत्य बहुत कड़वा है, और अगर सत्य के साथ तुम खड़े हो जाओ तो खड़े होना भी मुश्किल मालूम पड़ेगा। सिग्मंड फ्रायड ने कहा है कि आदमी बिना झूठ के जी नहीं सकता। झूठ सहारा है। तुम भी झूठी मंजिल बना लेते हो, असली मंजिल का तो कोई पता नहीं, बिना मंजिल के जीना असंभव है। कैसे जियोगे बिना मंजिल के? अगर ये पक्का ही हो जाए कि पता ही नहीं कहां जा रहे हैं तो पैर कैसे उठेंगे? यात्रा कैसे होगी? इसलिए हम कल्पित मंजिल बना लेते हैं, एक झूठी मंजिल बना लेते हैं। उससे राहत मिल जाती है, लगता है कि कहीं जा रहे हैं। कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि झूठी मंजिलों के क्या कोई रास्ते होते हैं। जब मंजिल ही झूठी है तो रास्ता कैसे सच्चा हो सकता है? तो फिर हम झूठा रास्ता भी बना लेते हैं। रास्ता बना लेते हैं, मंजिल बना लेते हैं सब कल्पित मन के जाल। और ऐसे ही अपने को भर लेते हैं और लगता है कि शून्य भर गया, जिंदगी बड़ी भरी–पूरी है।'

रामलखन तिवारी, बस लगता है कि शून्य भर गया लेकिन भरता कभी नहीं। गौतम बुद्ध कहते हैं शून्यता से भरने की कोशिश न करो, इस शून्यता में रमो, वह हमारा स्वभाव है। और एक अद्भुत आश्चर्यजनक घटना घटती है, चूंकि हम शून्यता से बचने की कोशिश करते हैं, भागने की कोशिश करते हैं इसलिए हम गौर से देख ही नहीं पाते। जब हम उसमें रमेंगे, प्रेम से निहारेंगे तब हमें पता चलेगा कि शून्य वास्तव में शून्य नहीं है, उस शून्य में पूर्ण अवतरित हुआ है। और तब जीवन धन्य–धन्य हो जाता है

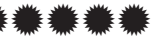

तीसरा प्रश्न–अमरावती से पुष्प कुमार सक्सेना जी का है– मैं एक विद्यार्थी हूं, कभी स्वार्थ से प्रेरित होकर अमीर बनने की सोचता हूं तो कभी परमार्थ भावना से अनुप्राणित होकर, दया–करुणा से भरकर दीन–दुखियों की सेवा करना चाहता हूं, दोनों में से किस मार्ग को चुनूं? क्या मेरे लिए ओशो का कोई संदेश है?

दोनों अतियों पर मत डोलो, हमेशा मध्य में रहो। तुम पूछ रहे हो कि स्वार्थ पूरा करूं कि परमार्थ, धन कमाऊं की लोगों की सेवा करूं। अगर कमाओगे नहीं तो दूसरों को दोगे कैसे, जो चीज तुम्हारे पास ही नहीं है वह दूसरों को दोगे कैसे। इन दोनों चीजों में कुछ ऐसा नहीं है कि किस काम को करूं। क्रम को याद रखना, पहले कमाना तभी देना हो पाएगा, पहले तुम्हारे पास हो तो सही। निश्चित रूप से अगर तुम संपन्न हो जाओगे तभी दे पाओगे। और

अभी मैं जिन चार दिशाओं की बात कर रहा था उस संदर्भ में एक बात और समझना। हमारा मन एक अति से दूसरी अति पर डोलता है और दोनों ही अतियां गलत होती हैं, हमेशा मध्य में संतुलन होता है। रामलखन तिवारी ने जो चार बातें कहीं– धन, पद, यश और ज्ञान उसको हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं संपत्ति, शक्ति, प्रीति और बुद्धि। अब पुष्प कुमार सक्सेना इसका ठीक विपरीत जानने की सोच रहे हैं, वे कह रहे हैं कि मैं संपत्ति और धन कमाऊंगा नहीं, मैं बांटूंगा, दीन–दुखियों की सेवा करूंगा। शक्ति का उल्टा है तपस्या। कुछ लोग संसार में पहले ताकतवर होने की कोशिश करते हैं, दूसरों पर अपनी शक्ति दिखाने की कोशिश करते हैं और जब उससे थक जाते हैं, ऊब जाते हैं और कुछ भी नहीं पाते तब वे अपने ही ऊपर बल का प्रयोग करने लगते हैं, अपने आपको ही सताने लगते हैं। पहले दूसरों को सताया फिर खुद को सताया, इसी का नाम है तप और तपस्या। यह भी वास्तविक धर्म नहीं है। न ही दान वास्तविक धर्म है और न ही तपस्या वास्तविक धर्म है। धर्म का तीसरा रूप जो प्रचलित है वह प्रीति का ठीक उल्टा है। पहले हमने चाहा कि लोग हमें प्रेम करें, मेरा यश हो, मेरी प्रतिष्ठा हो, मेरा नाम हो, सब लोग मुझे चाहें। फिर इसका उल्टा शुरू हो जाता है कि मैं लोगों की सेवा करूं, मैं लोगों पर दया और करुणा करूं, वही पुष्प कुमार सक्सेना पूछ रहे हैं। यह भी वास्तविक धर्म नहीं है। सामान्यतः लोग इन चार बातों को धर्म कहते हैं– दान को धर्म कहते हैं, त्याग को धर्म कहते हैं, घर–गृहस्थी छोड़कर भाग जाओ, प्रेम पाने की कोशिश न करो, दूसरों को प्रेम देना शुरू करो, सेवा करो, मिशनरी बन जाओ, अस्पताल खोलो, स्कूल खोलो। और चौथी बात, वह भी भ्रांतिपूर्ण है, बुद्धि और ज्ञान के ठीक विपरीत लोग काम करने लगते हैं, मूढ़तापूर्ण कृत्य और उसी को धर्म समझते हैं। एक आदमी बैठकर मूर्ति से बातचीत कर रहा है, इसको हम कहेंगे धार्मिक। अगर एक पत्थर के सामने बैठकर बातचीत कर रहा होता तो हम कहते कि इसका दिमाग खराब हो गया है, पागलखाने ले जाओ, ये तो पत्थर से बातचीत करता है लेकिन अब इसने पत्थर को एक शेप दे दिया है, आकार दे दिया है और भगवान की मूर्ति बन गई। है तो पत्थर ही। आकार देने से क्या होगा और ये आदमी अभी भी पागलपन ही कर रहा है। और इतना ही नहीं कि ये प्रार्थना कर रहा है, इसको इसके प्रश्नों के उत्तर भी मिलने लगते हैं और पागलपन अपने शिखर पर पहुंच जाता है। इस प्रकार के मूढ़तापूर्ण कृत्य धर्म के नाम पर चलते हैं। ये चार प्रकार के झूठे धर्म दुनिया में प्रचलित हैं। पुष्प कुमार सक्सेना, सावधान! तुम जो सेवा और करुणा की बात कर रहे हो, परमार्थ की बात कर रहे हो वह संसार के विपरीत है, एक अति से दूसरी अति पर। तुम पूछ रहे हो कि मैं धन कमाकर अमीर बन जाऊं अथवा दूसरों की सेवा करूं? इन दो अतियों के बीच में भी एक मार्ग है, वही संतुलन का मार्ग है, संत होने का मार्ग है।

चौथा प्रश्न– दिल्ली के अशोक रावल जी का है, मैं निष्ठापूर्वक ध्यान करना चाहता हूं, दृढ़ता के साथ, संकल्प सहित धर्म मार्ग पर चलना चाहता हूं। मगर कोई न कोई छोटे–मोटे व्यवधान आ जाते हैं, क्या बाधाएं भेजकर प्रभु परीक्षा लेना चाहता है? समझ में नहीं आता कि भगवान का इरादा क्या है?

ऐसा व्यक्तिवाची भगवान कहीं कोई नहीं है जो तुम्हारी परीक्षा ले। और अगर तुम्हारी धारणाओं का भगवान जो कि सर्वशक्तिमान है, कहीं है, तो क्या उसको इतना भी ध्यान नहीं कि वह तुम्हें जान सके, तुम्हारी परीक्षा लेने की उसे जरूरत क्या पड़ेगी। नहीं, भगवान का कोई इरादा नहीं है, तुम अपने इरादे देखो। तुम जो शब्द उपयोग कर रहे हो दृढ़ता, निष्ठापूर्वक, संकल्प सहित इससे ही पता चलता है कि तुम कमजोर व्यक्ति हो, तुम्हारे खुद के इरादे ढीले–ढाले हैं, वरना इन बड़े–बड़े शब्दों का इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं थी। अगर कोई कहे कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, बहुत ज्यादा प्रेम करता हूं, अब इसके ऊपर संदेह करना, ये व्यक्ति जरूर प्रेम नहीं करता, इतने ज्यादा विशेषण जोड़ने की जरूरत क्या थी, प्रेम अकेला ही पर्याप्त था। तुम कह रहे हो दृढ़तापूर्वक, निष्ठापूर्वक, संकल्प सहित ध्यान करता हूं। परमात्मा कोई बाधा नहीं भेज रहा। क्या परमात्मा कोई दुष्ट है, पागल है जो बाधाएं भेजेगा ध्यान में? उस तरफ से तो सहयोग ही आ सकता है। सुनो यह गीत–

एक हसरत थी कि आंचल का मुझे प्यार मिले
मैंने मंजिल को तलाशा, मुझे बाजार मिले
जिन्दगी और बता तेरा इरादा क्या है?
मुझको पैदा किया संसार में दो लाशों ने
और बरबाद किया कौम के अय्याशों ने
तेरे दामन में बता मौत से ज्यादा क्या है?
जिन्दगी और बता तेरा इरादा क्या है?
जो भी तस्वीर बनाता हूं बिगड़ जाती है
देखते–देखते दुनिया ही उजड़ जाती है
मेरी कश्ती तेरा तूफान से वादा क्या है? . . .
तूने जो दर्द दिया, उसकी कसम खाता हूं
इतना ज्यादा है कि अहसां से दबा जाता हूं
सिवा गम के मेरी तकदीर में लिखा क्या है? . . .
मैंने जज्बात के संग खेलते दौलत देखी
अपनी आंखों से मुहब्बत की तिजारत देखी
ऐसी दुनिया में मेरे वास्ते रखा क्या है? . . .

तुम पूछ रहे हो अशोक रावल कि परमात्मा का इरादा क्या है? छोड़ो परमात्मा की, मैं तुमसे पूछता हूं, तुम्हारा इरादा क्या है?

आदमी चाहे तो तकदीर बदल सकता है? . . .
अपनी दुनिया की वो तस्वीर बदल सकता है
आदमी सोच तो ले उसका इरादा क्या है? . . .

तुम अपने संकल्प को वाकई में मजबूत करो। मैं तुम्हें निमंत्रित करूंगा कि ओशोधारा का आनंद प्रज्ञा कार्यक्रम करने आओ, संकल्प के विज्ञान को समझो। अभी तुम जिसे संकल्प

और दृढ़ता कह रहे हो वह जरा भी दृढ़ता नहीं है, जरा भी संकल्प नहीं है, वह तुम्हारे अहंकार का ही रूप है। और जो चार बातें मैंने गिनाईं पिछले दो प्रश्नों में, उसके ठीक मध्य में संतुलन की स्थिति है, वह भी तुम समझ लो ताकि तुम्हारा ठीक–ठीक इरादा हो कि करना क्या है। बाहर की संपत्ति को न ही बटोरने में लगना, न बांटने में लगना, मैं कहता हूं भीतर की संपत्ति पाना। जैसे मीराबाई कहती है 'पायो जी मैंने रामरतन धन पायो', उस ओंकार को पाओ। बाहर की शक्ति न दूसरों पर आजमाना न खुद पर आजमाना, अपने भीतर की ऊर्जा को पहचानो, वह अमृत–तत्त्व, जीवन की शक्ति हमारे भीतर ही मौजूद है।

तीसरी बात प्रीति को दिशा दो भक्ति की तरफ, व्यक्तियों से तो बहुत प्रेम कर लिया अब समष्टि के प्रति प्रेम से भरो। और चौथी बात, न बुद्धि काम आएगी, न विचारों का संग्रह, न ज्ञान और न ही मूढ़तापूर्ण कृत्य; काम आएगी निर्विचार जागृति। इन चारों के प्रति तुम्हारा संकल्प जागे, प्यास जागे। कोई परमात्मा बाधा नहीं भेज रहा है, एक ही बाधा है... वह है तुम्हारा अहंकार, वह तुम स्वयं हो। उस अहंकार के प्रति जागो।

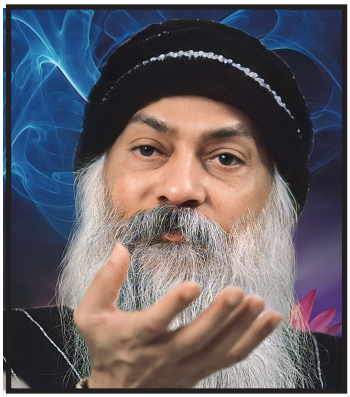

अध्याय–3

कृष्ण–जन्म का रहस्य

प्यारे सद्गुरु, हम सबके प्रणाम स्वीकार करें। शेखपुरा हरियाणा से श्रीमती केलारानी जी का प्रथम प्रश्न है, भगवान कृष्ण के जन्म संबंधी विशेष परिस्थितियों के रहस्य के संबंध में ओशो की दृष्टि क्या है?

ओशो की एक अद्भुत प्रवचनमाला है 'कृष्ण मेरी दृष्टि में'। उस प्रवचनमाला में ओशो ने इस दृष्टि में चार बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है। पहली बात तो उन्होंने कहा कृष्ण के जन्म की परिस्थितियों को तथ्यात्मक या ऐतिहासिक रूप से न लेकर प्रतीकात्मक रूप से, काव्यात्मक रूप से लेना। पहला बिन्दु, रात को जन्म होता है अंधकार में, सभी जन्म अंधेरे में ही होते हैं। मां के गर्भ में बच्चा नौ महीने अंधकार में ही रहता है। बीज जमीन के अंधकार में गड़ा दिया जाता है, वहां से अंकुरित होता है। वैज्ञानिक कहते हैं इस सृष्टि का उद्गम शून्य से, महा–अंधकार से हुआ होगा। सब चीजें अंधकार से ही जन्मती हैं और प्रकाश की ओर आगे बढ़ती हैं। उपनिषद् के ऋषि प्रार्थना करते हैं 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', अंधकार से प्रकाश की ओर चलो। ठीक वही बात कृष्ण के जन्म के संबंध में है। अंधेरी रात को उनका जन्म होता है। दूसरी बात कारागृह में बंधन में हैं, जहां जन्म होता है। सबका जन्म कारागृह में ही होता है, जन्म के साथ ही बंधन शुरू हो जाते हैं। जैसे ही इस तन–मन के भीतर यह चेतना प्रवेश करती है बंधन शुरू हो गए। यह शरीर कारागृह ही है, यह मन कारागृह ही है। अब हम एक

सीमा में बंद हो गए। आत्मा असीम थी, निराकार थी, अरूप थी, अब इस छोटे से रूप के भीतर, इस छोटे से आकार के भीतर यह समा गई। स्वतंत्रता की ओर हमें जाना है। मुक्ति हमें पानी होगी साधना के द्वारा। जन्म तो सभी का बंधन में है, मुक्ति प्रयास से, श्रम से, साधना से मिलती है।

तीसरा बिन्दु कृष्ण के जन्म के संबंध में यह है कि शुरुआत से ही मृत्यु का भय है। स्वयं कृष्ण के मामा ही मारने को तैयार हैं। और फिर बचपन में ही बार–बार मौत का सामना होता है, इसको भी काव्यात्मक समझना। जन्म के साथ ही मृत्यु की शुरुआत हो जाती है, मृत्यु सदा ही संभावित है, किसी भी क्षण, किसी भी पल हो सकती है। ऐसा नहीं सोचना कि सिर्फ कृष्ण के बारे में ही यह बात सच है, सभी के बारे में सच है। जन्मने के बाद हमेशा ही मौत का खतरा है, किसी भी क्षण मौत हो सकती है।

चौथी और अंतिम बात जो ओशो ने समझाई कि सारी मौत की संभावनाओं के बावजूद भी कृष्ण जीवित बच जाते हैं। बड़ी प्यारी बात है, हजार कांटों के बीच में भी आखिर फूल खिल ही जाता है। कितनी ही कठोर मिट्टी क्यों न हो या कितनी भी चट्टानें क्यों न हों उनको तोड़कर बीज अंकुरित हो ही जाता है। जीवन की सदा विजय हो जाती है, मौत हार जाती है। बड़ी–बड़ी चट्टानों पर पौधा उग जाता है और चट्टानें टूट जाती हैं और पानी निकल आता है। कोमल सा पानी जीत जाता है और पत्थर हार जाता है। ठीक वही बात कृष्ण के संबंध में है, कृष्ण का जीवन बच जाता है और मौत की संभावनाएं नष्ट हो जाती हैं। इसको प्रतीकात्मक और काव्यात्मक समझना।

किसी ने ओशो से यह भी पूछा है कि क्या क्राइस्ट शब्द कृष्ण से ही तो नहीं बना है? ओशो ने कहा है नहीं, क्राइस्ट शब्द हो सकता है पदवी के रूप में दिया गया हो लेकिन जीसस क्राइस्ट के जन्म के साथ भी इसी प्रकार की प्रतीकात्मक कथाएं जुड़ी हैं कि मृत्यु का खतरा है, सारे बच्चों को मारा जा रहा है, जन्म घुड़साल में होता है, वही कारागृह जैसी परिस्थिति है, रात है, अंधकार है, सब प्रकार से खतरे ही खतरे हैं। तो जो–जो परिस्थितियां कृष्ण के साथ जुड़ी हैं ठीक वही परिस्थितियां क्राइस्ट के साथ भी जुड़ी हैं। क्योंकि सारी मानव जाति एक सी काव्यात्मक, चित्रात्मक भाषा में सोचती थी। पुराने जमाने में वैज्ञानिक भाषा न थी, काव्यात्मक व कथात्मक ढंग से लोग सोचा करते थे। इसलिए दुनिया के सब ग्रंथों के, सब धर्मों के प्राचीन शब्द करीब–करीब एक से हैं। लेकिन जीसस क्राइस्ट निश्चित रूप से अलग व्यक्ति थे, कृष्ण से भिन्न। हां, ये हो सकता है कि कृष्ण शब्द ही धीरे–धीरे घिसते–घिसते क्राइस्ट हो गया हो। बंगाल में बहुत लोग हैं जिनका नाम आपको मिल जाएगा क्रिष्टो मुखर्जी, क्रिष्टो बनर्जी। ये कृष्टो कृष्ण का नाम है। तो जब कृष्ण से कृष्टो हो सकता है तो फिर कृष्ण से क्राइस्ट भी हो सकता है। तो ये तो हो सकता है विशेषण के रूप में, पदवी के रूप में ईसामसीह को क्राइस्ट पुकारा गया लेकिन वे एक भिन्न ही व्यक्ति थे।

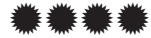

आज का दूसरा प्रश्न पूछ रहे हैं स्वामी ज्ञान सागर जी जमशेदपुर झारखंड से, ओशो की धर्म दृष्टि में तपश्चर्या एवं यज्ञ आदि का क्या महत्त्व है?

उत्तर–तीन तरह के कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं: यज्ञ, दान और तप।

तपरूप कर्म वे हैं, तुमने जो–जो गलत किया है, उसे काटने के लिए किए जाते हैं। कांटा लग गया है, तो एक और कांटा खोजना पड़ता है उसे निकालने को, नहीं तो लगे कांटे को कैसे निकालोगे? गलत कर्म तुमने किए हैं, तो उनको निकालने के लिए तुम्हें दूसरे शुभ कर्म भी करने पड़ेंगे। वे भी कर्म हैं। मगर करने पड़ेंगे, क्योंकि गलत कर्म तुम कर चुके हो।

तुमने किसी को गाली दे दी, अब माफी मांगनी पड़ेगी, ताकि संतुलित हो जाए। गाली से जो असंतुलन पैदा हुआ था, वह भी कर्म था। माफी मांगना भी उसी तरह कर्म है। दोनों में वाणी का उपयोग हुआ है, दोनों में मुंह का उपयोग हुआ है। लेकिन माफी मांगनी पड़ेगी, ताकि संतुलन आ जाए।

तपरूप कर्म का अर्थ है, संतुलन लाने वाले कर्म, जिनसे जीवन संतुलित होता है। तुमने बहुत अपराध किए हैं, थोड़ी सेवा भी करो। तुमने बहुत चूसा है, विसर्जित भी करो। तुमने बहुत छीना है, बांटो भी।

नहीं तो यह होगा कि अब तक तो काफी छीना, लूटा, दुख दिया, और अब अचानक तुमको यह दर्शनशास्त्र समझ में आ गया कि सब कर्म त्याज्य हैं। अब तुम कुछ भी नहीं करते, अब तुम बैठ गए। तो वे जो कांटे लगे हैं, वे लगे रह जाएंगे, वे छिद्र रह जाएंगे। उन्हें काटो, उन्हें निकालो। उनके लिए तपरूप कर्म।

तुमने जो–जो छीना है, जहां–जहां हिंसा हुई है, जहां–जहां शोषण हुआ है – और निरंतर हुआ है, सारे जीवन की यात्रा शोषण, हिंसा की है – दान करो, बांट दो। जहां से लिया है, वहां लौट जाने दो। ताकि संतुलन आ जाए। और यज्ञ... यज्ञ उस कर्म का नाम है, जो तुम अपने लिए नहीं करते, जो तुम समष्टि के लिए करते हो। जो तुम अपने लिए नहीं करते, सबके लिए करते हो। यज्ञ वैसा विराट कर्म है, जिसमें तुम्हारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं है। जो स्वयं की आकांक्षा से किया जाए, वह यज्ञ नहीं है। यज्ञ वह है जो सबके लिए करते हो।

समझो, तुम एक अस्पताल बनाते हो, वह यज्ञरूप हो जाता है। तुम अकेले ही थोड़े उसमें बीमार पड़कर इलाज करवाओगे, सभी के काम आएगा। तुम एक विद्यापीठ बनाते हो। तुम्हारे बच्चे ही थोड़े उसमें पढ़ेंगे; सबके बच्चे उसमें पढ़ेंगे।

जो–जो कर्म सिर्फ स्वार्थ के लिए नहीं किए जाते, वे सभी यज्ञरूप हैं। स्वार्थ के लिए तुमने बहुत कर्म किए हैं, अब तुम थोड़े परार्थ के कर्म करो।

कृष्ण कहते हैं, ऐसे भी विद्वान हैं, जो कहते हैं, यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। बाकी सब कर्म त्यागने योग्य हैं. . . .।

इन तीन प्रकार के कर्मों को औषधि के समान समझना। जब बीमारी है तो औषधि भी लेनी होगी। हां, एक बात का ख्याल रखना, जब बीमारी से मुक्त हो जाओ तो औषधि से भी मुक्त हो जाना। कोई आदमी दवाइयों और बोतलों के डब्बे, इंजेक्शन वगैरह लटकाए हुए फिरे

कि इन्हीं के कारण तो मैं ठीक हुआ हूं, अब मैं इनको छोड़ूंगा नहीं, उस आदमी को हम पागल कहेंगे। औषधि की तरह उपयोग करना इन तीन प्रकार के कर्मों का। जब समाधि मिल जाए, व्याधि से मुक्त हो जाओ तो औषधि से भी मुक्त हो जाना।

तीसरा प्रश्न– मोहाली पंजाब से मां प्रेम महिमा का प्रश्न है, ओशो ने स्वयं परिवार नहीं बसाया फिर वे क्यों हमें पारिवारिक उत्तरदायित्वों से न भागने की सलाह देते हैं?

थोड़ा देखने का नजरिया बदलो, ओशो ने बहुत विराट परिवार बसाया, उसका नाम उन्होंने कम्यून रखा। वे उत्तरदायित्व से भागे नहीं, उत्तरदायित्व को बहुत बड़ा कर दिया, फैला दिया, सिर्फ चार–छः सौ तक परिवार पर ही सीमित न रहे, उनके जीवनकाल में दुनिया में उनके दस लाख शिष्य–शिष्याएं बने। और आने वाले समय में करोड़ों–करोड़ों लोग उनके इस परिवार के सदस्य बनेंगे। ओशो किसी उत्तरदायित्व से कभी नहीं भागे। याद रखना, उनका एनलाइटेनमेंट तो इक्कीस वर्ष की अवस्था में हो गया था तब वे बी.ए. प्रथम वर्ष के छात्र थे। परमज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात भी उन्होंने अपने विश्वविद्यालय का ज्ञान प्राप्त किया और बी.ए. पास किया, एम.ए. पास किया, एम.ए. में उन्हें गोल्ड मेडल मिला। उसके बाद उन्होंने आठ वर्ष तक नौकरी की। पिताजी हमारे गरीब थे इसलिए किसी न किसी को नौकरी करनी ही पड़ती, इसलिए ओशो ने आठ साल तक नौकरी की। रायपुर में, जबलपुर विश्वविद्यालय में। जब उनका काम बहुत ज्यादा हो गया, सारे देश में घूम–घूमकर यह मुमकिन नहीं रहा कि अब कॉलेज की चारदीवारी तक सीमित रहें, केवल चालीस विद्यार्थियों को क्लास में पढ़ाएं, अब तो चालीस हजार लोगों को इकट्ठा पढ़ाया जा सकता है। अभी मैंने जो आपको कोटेशन सुनाया वह गीतादर्शन प्रवचनमाला का है, उस समय साठ–सत्तर हजार लोग सुनने आते थे जब गीतादर्शन की प्रवचनमाला चल रही थी। तो जरा सोचो, वो चालीस बच्चों की क्लास छोड़कर ओशो गए साठ–सत्तर हजार लोगों को सिखाने के लिए। अब सोचो कि उत्तरदायित्व से भागे कि उत्तरदायित्व को बड़ा किया।

मैंने जब अपनी नौकरी से इस्तीफा दिया तो मैंने उसमें यही लिखा था कि अभी तक मैं थोड़े से लोगों की चिकित्सा कर रहा था और एक बात मेरी समझ में आई कि शरीर के रोगी अब दुनिया में कम होते जा रहे हैं और मनोरोगी बढ़ते चले जा रहे हैं। मन की चिकित्सा की जरूरत है, अब मैं एक विराट कार्य में संलग्न होना चाहता हूं। ओशो की वह औषधि वाली दृष्टि, उनकी ध्यान की चिकित्सा जन–जन तक पहुंचाना चाहता हूं, घर–घर तक खबर पहुंचाना चाहता हूं ताकि बहुत लोग स्वस्थ हो सकें। ये स्वस्थ शब्द बड़ा प्यारा है, इसका अर्थ है स्वयं में स्थित होना, आत्मरमण होना, ध्यानस्थ होना, समाधिस्थ होना। मैंने अपने त्यागपत्र में यही लिखा कि अभी तक मैं एक छोटी जिम्मेवारी निभा रहा था एक डॉक्टर की। शरीर की बीमारियां तो दूसरे डॉक्टर भी ठीक कर देंगे, मेरा तबादला हो जाएगा तो कोई और आ जाएगा लेकिन ओशो सारी मानव जाति की जो चिकित्सा बता गए हैं उस कार्य को करने के लिए मेरी ज्यादा जरूरत है। तो मैं छोटी जरूरत को छोड़कर बड़ी जरूरत के लिए जा रहा हूं, किसी उत्तरदायित्व से भाग नहीं रहा। तो याद रखना, ओशो ने अपनी सारी पारिवारिक

जिम्मेवारी निभाई। दो छोटे भाइयों की पढ़ाई–लिखाई का जिम्मा भी उन्होंने उठाया। एक कजिन ब्रदर और एक कजिन सिस्टर की भी उन्होंने देखभाल की, उनकी शिक्षा पूरी की, उनके साथ कई सालों तक रहे। सारी जिम्मेवारियां जब पूरी हो गईं और जब इसकी कोई जरूरत न रही कि अब वे नौकरी करें तभी उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ी। और तब एक विराट कम्यून बसाया। कम्यून यानी बड़ा परिवार, दस लाख लोगों का परिवार सारी दुनिया में ओशो ने बसाया, किसी उत्तरदायित्व से वे भागे नहीं। सुनो यह प्यारा गीत–

ये दुनिया है यहां दिल का लगाना किसको आता है
हजारों प्यार करते हैं, निभाना किसको आता है
ये दुनिया है यहां दिल में समाना किसको आता है
मिटाने वाले लाखों हैं बनाना किसको आता है. . .
निगाहें फेर लीं तुमने तो हम किसकी तरफ देखें
तुम्हीं कह दो मुहब्बत का, फसाना किसको आता है. . .
वफा का यूं तो दम भरते हैं, इस दुनिया में सब लेकिन
वफा के नाम पर मिटकर दिखाना किसको आता है
हजारों प्यार करते हैं, निभाना किसको आता है
ये दुनिया है यहां दिल का लगाना किसको आता है

ओशो ने तो असली प्रेम–मोहब्बत की शिक्षा दी, और न केवल शिक्षा दी उन्होंने स्वयं वह करके दिखाया। जिस नवसंन्यास की उन्होंने धारणा दी कि संसार में रहते हुए कोई व्यक्ति अनासक्त हो सकता है कींचड़ में कमलवत, वैसा उन्होंने करके दिखाया। ये कोई सिद्धांत की बात नहीं है, व्यावहारिक रूप से जो उन्होंने स्वयं किया, जो उन्होंने स्वयं जाना वही उन्होंने दूसरों को सिखाया। उनका जीवन स्वयं ही, अपने आप में एक शास्त्र है। ओशो के जीवन को देख लो और समझ लो। कई बार मैं हैरान होता हूं। अभी थोड़े दिन पहले ही एक मित्र से मुलाकात हुई, उनके मुंह से शराब की बास आ रही थी। मैंने पूछा आप शराब पीते हैं? वे कहने लगे हां। ओशो ने कहां मना किया है? मैंने कहा हद हो गई, ओशो ने तो गोबर खाने के लिए भी मना नहीं किया है तो गोबर भी खाया करो, ओशो ने समुद्र में कूदने के लिए भी नहीं कहा है तो समुद्र में भी कूद जाओ। तुम तो बचकानी बात कर रहे हो, ओशो को तो पता नहीं था कि तुम्हारे जैसे बच्चों से बात कर रहे हैं, वे तो प्रौढ़ लोगों से बात कर रहे थे, वे आशा और उम्मीद कर रहे थे कि तुम विवेकपूर्ण और प्रज्ञावान होओगे, क्या यह बात कोई कहने की बात है। तुम ओशो के जीवन से देखो, क्या ओशो ने शराब पी थी? उन्होंने क्या कहा क्या नहीं कहा छोड़ो। 650 किताबें हैं जिनको तुम जिंदगी भर में पढ़ भी नहीं पाओगे, क्या ओशो ने शराब पी, क्या ओशो ने मांसाहार किया, क्या ये पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि वो क्या चाहते हैं कि हम करें, हम कैसे जिएं। गुरु के जीवन को देखना, बातों को मत पकड़ना। ये तो विचित्र बात है कि ओशो ने शराब पीने को कहां मना किया है, मैं आपको पचास कोटेशन बता दूंगा जहां ओशो ने शराब पीने की मनाही की है लेकिन आप एक कोटेशन हमें बता दो जहां उन्होंने पीने के लिए कहा है। आप एक भी न बता पाओगे और ओशो का जीवन स्वयं प्रमाण है इस बात

का। तो ओशो ने परिवार की जिम्मेवारी नहीं छोड़ी, संसार का कोई उत्तरदायित्व नहीं छोड़ा बल्कि और बड़े उत्तरदायित्व को स्वेच्छा से ग्रहण किया वही हम सबको करना है तभी हम उनके असली शिष्य कहलाएंगे। (नीचे– परमगुरु ओशो का चित्र– युवावस्था में, सन 1970)

अध्याय–4

अहिंसा, संयम और तप

सद्गुरु ओशो शैलेन्द्र जी के चरणों में नमन करती हूं, आज का पहला प्रश्न है, कल आपने यज्ञ और तप के विषय में ओशो की दृष्टि प्रस्तुत की, उसे सुनकर कुछ विस्मय हुआ। मैं तो समझता था कि ओशो तप के खिलाफ हैं। पूछते हैं श्यामसुंदर चतुर्वेदी, उज्जैन से।

सबसे पहले मैं आपको सूचित करना चाहूंगा कि ओशो ने भगवान महावीर के ऊपर एक बहुत लंबी प्रवचनमाला दी है जिसका शीर्षक है 'महावीर वाणी'। इसमें चौदह प्रवचनों में अर्थात् लगभग 21 घंटों में केवल एक शब्द 'तप' को समझाया है कि तप क्या है। तप के वास्तविक रूप के पक्ष में हैं ओशो। महावीर का सूत्र है 'सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं अहिंसा, संयम और तप', सिर्फ इस एक सूत्र को चौदह प्रवचनों में समझाया है। तप के दो रूप उन्होंने कहे– बाह्य तप और आंतरिक तप। बाह्य तप के फिर छः प्रकार, भीतरी तप के फिर छः प्रकार, इस प्रकार कुल मिलाकर बारह प्रकार के तप कहे। तो ओशो की दृष्टि तप और संयम के बारे में विधायक दृष्टि है। जैसे अशुद्ध सोना हो और उसे हम अग्नि से गुजारकर कुंदन बनाएं, कचरे को जलाएं ठीक ऐसे ही साधक भी एक तप से गुजरता है। लेकिन यह एक विधायक दृष्टि है। सामान्यतः तप के नाम पर जो प्रचलित है वह स्वयं को सताना है, वह नकारात्मक है, उससे हासिल कुछ भी नहीं होगा। स्वयं को कष्ट देने से आत्महिंसा करने से आध्यात्मिक प्रगति नहीं होगी। तो तप के वास्तविक सच्चे रूप के पक्ष में हैं ओशो।

दूसरा प्रश्न– मां योग संयम दिल्ली से पूछ रही हैं, मेरा ध्यान, शांति, परमात्मा आदि में कोई रस नहीं है। सिर्फ एक सांसारिक सवाल पूछना चाहती हूं अगर उचित समझें तो जवाब दें। मैंने बड़े अरमानों के साथ प्रेम विवाह किया था किन्तु न जाने कैसी बदकिस्मत हूं कि पति को प्रसन्न रखने में अक्षम हूं, धन संपत्ति की कोई कमी नहीं है, सब सुविधाएं हैं। दिनों–दिन प्रेम क्यों घटता गया ये मैं आज तक नहीं समझ पाई, अब विवाह मात्र एक सामाजिक दिखावा बनकर रह गया है। मुझसे कहां भूल हो गई कृपया बताएं?

हम सामान्यतः जिसे प्रेम कहते हैं, प्रेमविवाह कहते हैं उसमें प्रेम कम और वासना अधिक होती है, देह का आकर्षण, सौंदर्य का मोह ही ज्यादा होता है। अच्छा नाम हम दे देते हैं, अच्छा लेबल लगा देते हैं बुरी चीज पर और वासना को हम प्रेम कहने लगते हैं, देह आकर्षण को हम आत्मा का लगाव कहने लगते हैं। लेकिन हमारे लेबल से क्या होगा, भीतर तो जहर छिपा है, वह शीघ्र प्रगट हो जाएगा, जैसा कि तुम्हारे साथ हुआ है। जल्दी ही अप्रसन्नता, नाराजगी, क्रोध, कलह, बेरुखी पैदा हो गई। क्योंकि वास्तव में कोई प्रेम नहीं था, वासना का आकर्षण तो थोड़े दिन में समाप्त हो ही जाएगा, वह तो ज्यादा दिन नहीं चल सकता। जो दूर है उसके प्रति आकर्षण होता है, उसमें सौंदर्य दिखाई पड़ता है, जो निकट है, उपलब्ध है उस पर दृष्टि पड़नी बंद हो जाती है। सुंदर से सुंदर व्यक्ति के साथ भी अगर तुम दो महीने रहो तब उसकी तरफ दृष्टि पड़नी ही बंद हो जाएगी, वह भी साधारण दिखाई पड़ने लगेगा। तो वासना का आकर्षण तो जल्दी ही समाप्त हो जाएगा, उस पर आधारित संबंध ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सामान्यतः हम जिसे प्रेम कहते हैं वो कुछ और नहीं सेक्स का प्री–प्ले है, एक पूर्व खेल, फुसलाने का एक तरीका। वे जो कविताएं हैं, गीत हैं, और एक–दूसरे की प्रशंसाएं हैं, सिर्फ फुसलाने के तरीके हैं ताकि सामने वाला राजी हो जाए। हम उसी प्रेम को, प्रशंसा को, गीत को, काव्य को प्रेम समझ लेते हैं। प्रेम बड़ी ऊंची बात है। 'गीतादर्शन' नामक प्रवचनमाला में सुनो ओशो की अमृतवाणी। वे कहते हैं–

सबसे निम्नतम चेतना वह है जिसका लक्ष्य जीवन में अर्थ, धन, मकान, वस्तुएं है। और वह संस्कृति निम्नतम है, जो अर्थ पर पूर्ण हो जाती है।

उसके ऊपर काम है। कम से कम दूसरे से जुड़ने की थोड़ी संभावना है, द्वार खुला है। कोई बहुत बड़ा द्वार नहीं है, बड़ा क्षुद्र द्वार है, लेकिन है। कोई बहुत विराट द्वार नहीं है, संकीर्ण है; उसमें से घसिटकर आना और जाना भी कष्टपूर्ण है। और उससे दूसरे से तुम जुड़ते भी हो और नहीं भी जुड़ते। क्योंकि जिससे भी तुम्हारा कामवासना का संबंध है, उससे गहरा संबंध हो ही नहीं पाता।

यह बड़े मजे की बात है। अगर तुम पति हो और तुम्हारी पत्नी से तुम्हारा केवल कामवासना का संबंध है, तो संबंध ही नहीं है। नाममात्र को है। एक ने दूसरे के हृदय को जाना नहीं, पहचाना नहीं। एक ने दूसरे के जीवन में कोई गहराई छुई ही नहीं; एक ने दूसरे की गहराई को पुकारा ही नहीं। बस, शरीर के ऊपर परिधि पर थोड़ा–सा मिलन है। और वह भी मिलन क्षणभंगुर है। फिर फासला है, फिर मिलन है, फिर फासला है। मिलना और बिछुड़ना, मिलना और बिछुड़ना। और बिछुड़ना चौबीस घंटे है, मिलना क्षणभर को है। इसलिए कोई बड़ा

संबंध नहीं है।

और जिससे तुम्हारा कामवासना का संबंध है, उससे तुम्हारा संघर्ष जारी रहेगा, द्वंद्व जारी रहेगा, विरोध जारी रहेगा। क्योंकि तुम्हें भीतर गहराई में ऐसा लगता ही रहेगा कि मैं निर्भर हूं, अपनी वासना की तृप्ति पर निर्भर हूं।

इसलिए पति पत्नियों से लड़ते ही रहेंगे, पत्नियां पतियों से लड़ती ही रहेंगी। जब तक उनके बीच से कामवासना तिरोहित न हो जाए, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। जब तक पति–पत्नी उस जगह न आ जाएं, जहां उनके भीतर तीसरा चरण उठ जाए, धर्म का, तब तक कलह जारी रहेगी; तब तक उन दोनों के बीच शांति का राज्य स्थापित नहीं हो सकता। और ऐसा संबंध भी क्या, जो सिर्फ कलह का संबंध है!

तो माना, रुपये–पैसे के बीच अगर तुलना करनी हो, अगर मुझसे कोई पूछे कि कामवासना या धन की दौड़? तो मैं कहूंगा, कामवासना। कम से कम थोड़े तो बाहर आओगे। बहुत सुंदर रूप से न आओगे, मगर आओगे तो! मुख्य द्वार से न आओगे, सरकते हुए, सेंध लगाकर आओगे किसी दीवार में, आओगे तो! ठीक है; चलो, इतना ही सही। जुड़ोगे तो जुड़ना कोई गहरा न होगा, परिधि–परिधि का मिलन होगा, हृदय हृदय से फासले पर रहेंगे। पर चलो, कुछ शुरुआत तो हुई।

जो संस्कृतियां अर्थ और काम, दो पर ही समाप्त हो जाती हैं, वही अधार्मिक संस्कृतियां हैं।

फिर तीसरा है द्वार धर्म का। धर्म तुम्हें खोलता है। तुम्हें तुम्हारे शरीर के ऊपर उठाता है। और कहता है तुम शरीर ही नहीं हो। तुम्हें चैतन्य बनाता है। तुम्हें चैतन्य की पहली गंध देता है; चैतन्य का पहला स्वाद देता है। फिर तुम धर्म से जुड़ते हो जब, तब बड़ी और ही बात हो जाती है। जब पति–पत्नी ऐसी जगह आ जाते हैं, जहां उनके बीच नाता वासना का नहीं, काम का नहीं, धर्म का हो जाता है, तभी प्रेम पैदा होता है।

प्रेम धर्म की छाया है। धार्मिक व्यक्ति के आस–पास प्रेम बरसता है। तुम फर्क समझ सकते हो। कामवासना से भरे व्यक्ति के पास तुम एक तरह की दुर्गंध पाओगे। धर्म से भरे व्यक्ति के पास तुम एक तरह की सुगंध, एक ताजगी, सुबह की ओस की ताजगी, नए ताजे फूलों की गंध पाओगे।

शून्यम, एक बात का ख्याल रखना, जहां समस्याएं हैं वहां समाधान नहीं हैं और जिस तल पर समाधान होता है वहां कोई समस्याएं नहीं होतीं। यह बात तुम्हें विचित्र लगेगी। मैं कोई मैरेज काउंसेलर नहीं हूं कि तुम्हें विवाह के संबंध में सलाह दूं, मेरी सलाह कुछ अलग ही होगी। तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे प्रश्न से हटकर मैं कुछ बात कह रहा हूं, मैं तुमसे कहूंगा ध्यान में, समाधि में डुबकी लगाना सीखो। तुमने तो अपने प्रश्न की शुरुआत ही की है कि मेरा ध्यान, शांति, परमात्मा आदि में कोई रस नहीं है। जो व्यक्ति ध्यान में डूबता है, समाधि का फूल जिसके भीतर खिलता है उसके आसपास समाधि की सुगंध फैलती है। तुम अगर चाहती हो कि जिंदगी में प्रेम आए तो सीधा–सीधा कुछ नहीं किया जा सकता प्रेम के लिए। तुम प्रेम के

नाम पर जो भी करोगी वह अभिनय, ऐक्टिंग और दिखावा ही होगा। कोई व्यक्ति कैसे प्रेम कर सकता है, नहीं प्रेम तो बस नहीं है। लेकिन ध्यान के साथ कुछ किया जा सकता है, समाधि में डूबने की साधना की जा सकती है। जब तुम वास्तव में भीतर से शून्य हो जाओगी, प्यारा नाम भी तुम्हें मिला है शून्यम, जब तुम्हारे भीतर शून्य घटित हो जाएगा तब तुम्हारे चारों तरफ प्रेम की सुवास फैलेगी, तब सच्चा प्रेम पैदा होगा। तो ध्यान–समाधि में गहरे डूबो, तब तुम पाओगी कि तुम्हारे जीवन की यह समस्या समाप्त हो गई। प्रेम छाया की भांति ध्यान के पीछे–पीछे आ जाएगा।

तीसरा प्रश्न– स्वामी प्रेम देवेन्द्र पंजाब से पूछते हैं कि बढ़ते हुए आतंकवाद को देखकर ओशो की दृष्टि के मुताबिक शिक्षा प्रणाली कैसी होनी चाहिए?

शिक्षा प्रणाली के संबंध में ओशो की एक अद्भुत किताब है, उसका नाम है 'शिक्षा में क्रांति' रिवॉल्यूशन इन एजुकेशन। ओशो की बड़ी मौलिक दृष्टि उसमें है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों सारे जगत में ऐसी शिक्षा पद्धति आएगी, उसके बिना दुनिया का गुजारा नहीं है। ओशो कहते हैं तन, मन, हृदय और चेतन इन चारों की शिक्षा हो तब वह शिक्षा संपूर्ण होगी। अभी हम जो शिक्षा दे रहे हैं वह केवल तन की, मन की, विचारों की, गणित की जानकारियां हैं, विज्ञान की शिक्षा है, केवल हम मन को प्रशिक्षित कर रहे हैं, तन को भी भुला दिया गया है, शरीर का भी ख्याल नहीं है। पढ़ाई पर इतना ज्यादा जोर है कि खेल–कूद का समय बच्चों को मिल ही नहीं रहा है, शरीर के व्यायाम का मौका नहीं मिल रहा है। शरीर का भी ख्याल रखना होगा। फिर उससे भी बेहतर हृदय का भी ख्याल रखना होगा, भावनाओं की शिक्षा देनी होगी, सद्भाव और मंगलभाव हृदय में जगाने होंगे, ऐसा माहौल तैयार करना होगा क्योंकि सीधा–सीधा प्रेम तो नहीं सिखाया जा सकता, लेकिन ऐसा वातावरण निर्मित किया जा सकता है जहां भाईचारा उत्पन्न हो।

चौथी और अंतिम बात चेतना की शिक्षा देनी होगी, और ज्यादा जागरूकता, और ज्यादा सजगता, और ज्यादा संवेदनशीलता कैसे विकसित हो? ओशो के सिद्धांत जो कहते हैं वह सिखाना होगा। इन चारों बातों का संतुलन जब बैठे तब एक संपूर्ण और संतुलित शिक्षा होगी। अभी तो बड़ी अपंग, अधूरी, आंशिक शिक्षा है और निश्चित रूप से इसके दुष्परिणाम हैं। केवल मन ही मन की शिक्षा देने से विचारों का दोष तो बहुत बढ़ जाता है, मस्तिष्क पर भारी हो जाता है, चालाक और बेईमान हो जाता है, दूसरों को धोखा देना सीख जाता है। लेकिन इससे जीवन में शांति तो नहीं आ सकती। विज्ञान के विकास से कुल मिलाकर हुआ क्या? पिछली सदी में दो विश्वयुद्ध हुए, इक्कीसवीं सदी में तीसरा और अंतिम विश्वयुद्ध होगा। अगर हम इसी प्रकार से चलते गए तो आतंकवाद खत्म होने वाला नहीं, बढ़ता ही चला जाएगा। आपका सवाल महत्त्वपूर्ण है कि आतंकवाद को देखते हुए शिक्षाप्रणाली कैसी होनी चाहिए? प्रतियोगिता रहित होनी चाहिए। अभी हम सिखा रहे हैं प्रथम होने की दौड़, छोटे से बच्चे को भी कहते हैं कि क्लास में प्रथम आना, सबसे आगे निकल जाना। वह जिन्हें अपना मित्र और सहपाठी कह रहा है वे भी उसके मित्र नहीं दुश्मन हैं क्योंकि इन्हीं के आगे निकलना

है, इनको पीछे छोड़ना है। बचपन से ही हमने उसको राजनीति सिखा दी, चालाकी सिखा दी। फिर ये महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति, प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा से भरा व्यक्ति अंततः आतंकवादी बन ही जाएगा। छोटे–मोटे रूप में हर आदमी आतंकवादी बन गया है। जीसस कहते हैं धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, हमारी सारी शिक्षा कह रही है धन्य हैं वे जो प्रथम हैं। हमें पुनर्विचार करना होगा कि क्या हमारी शिक्षा सही है। अगर हमें दूसरों से आगे निकलना है तो फिर हम दूसरों से प्रेम कैसे कर पाएंगे, वह तो हमारा दुश्मन है, उसी से तो सारी स्पर्धा है, फिर भाईचारा पैदा नहीं हो सकता। ओशो कहते हैं–

दूसरे से तुलना न करो, अगर तुलना करनी है तो अपने ही अतीत से करो। हां, कल तुम जहां थे आज उससे आगे निकलो, दूसरे से आगे बढ़ने का सवाल नहीं है। कल मैं जितना चैतन्य था आज मैं उससे ज्यादा चैतन्य बनूं। कल जैसी समाधि में गहराई मिली थी उससे ज्यादा आज मिले, कल जितना समझदार था आज उससे ज्यादा समझदार और संवेदनशील बनूं। स्वयं के आगे बढ़ना है। इसमें निजता का विकास होगा, ग्रोथ ऑफ इंडीविजुअलिटी, निजता की वृद्धि होगी। दूसरे की नकल नहीं, दूसरे का अनुकरण नहीं, प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय और अनूठा है, ओशो कहते हैं। इसलिए दूसरे के साथ तुलना का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। गुलाब के फूल को गुलाब बनना है, कमल के फूल को कमल बनना है, चंपा के फूल को चंपा बनना है, प्रत्येक को अपनी निजी प्रकृति को देखकर चलना है और उसके अनुसार स्वयं से आगे बढ़ना है, कल हम जहां थे आज हम उससे एक कदम आगे बढ़ें। ऐसी शिक्षा–पद्धति से अहिंसा, प्रेम, भाईचारा अपने आप आएगा और तब आतंकवाद समाप्त हो जाएगा।

मैं आज सुबह एक चुटकुला पढ़ रहा था, एक ढाबे का मालिक तंदूरी रोटी का भाव बढ़ाना चाहता था, एक रुपए से दो रुपए करना चाहता था। वह मोहल्ले के नेताजी के पास गया और उससे पूछा कि मैं दो रुपए दाम करना चाहता हूं लेकिन डर है कि ग्राहक हंगामा न मचा दें, शोरगुल न करने लगें, मारपीट न करने लगें मेरे साथ। नेताजी ने कहा कि जरा भी चिंता की जरूरत नहीं, हम लोग सरकार में जो करते हैं वही तुम भी करो, पहले एक रुपए की रोटी का दाम तीन रुपए कर दो, जब लोग हंगामा मचाएं तो घटाकर दो रुपए कर देना। हमारी सारी शिक्षा राजनीति और चालाकी सिखाती है। यह शिक्षा आतंकवाद पैदा करती है। अगर आतंकवाद को मिटाना है तो शिक्षा की बुनियादी जड़ को ही बदलना होगा।

अंतिम प्रश्न– रामनारायण मूरथल, हरियाणा से पूछ रहे हैं कि सर्वशक्तिमान प्रभु ने मुझे इस जगत में किस महान कार्य के लिए भेजा है?

तुम्हारा प्रश्न अहंकारजन्य है, अंधविश्वासजन्य है। सर्वशक्तिमान प्रभु अगर वास्तव में सर्वशक्तिमान है तो वह खुद ही अपना काम कर लेगा, तुम्हें क्यों भेजेंगे एजेंट बनाकर। नहीं, कोई कार्य करने के लिए नहीं भेजा है, ये हमारा अहंकार है कि कोई बड़ा काम करने के लिए हमें यहां भेजा गया है। अर्जुन कृष्ण की गीता के वचन सुन रहे थे, कृष्ण के जीवन को हम कहते हैं रासलीला। बांसुरी बजाते हुए कृष्ण, नाचते हुए कृष्ण, यह जीवन भी कृष्ण के जीवन

जैसा हो, यह जीवन एक उत्सव है, काम नहीं है। ये काम वाली दृष्टि छोड़ो! नहीं तो फिर तुम महत्त्वाकांक्षी हो जाओगे, फिर तुम्हारे जीवन से प्रेम खो जाएगा। कोई लक्ष्य नहीं है, कोई आदर्श नहीं है, कोई कार्य नहीं है, कोई महान काम आप पूरा करने नहीं आए हैं, जीवन को क्षण–क्षण आनंद से जियो। सुनो यह प्यारा गीत–

जब गम–ए इश्क सताता है तो हंस लेता हूं,
हादसा याद ये आता है तो हंस लेता हूं,
मेरी उजड़ी हुई दुनिया में तमन्ना की चिता,
जब कोई आकर जलाता है तो हंस लेता हूं।
कोई दावा नहीं, फरियाद नहीं, रंज नहीं,
रहम जब अपने पर आता है तो हंस लेता हूं।

रामनारायण, अपने ऊपर हंसो। थोड़े गैर गंभीर बनो, बी नॉन–सीरियस। कृष्ण जैसे उत्सवपूर्ण बनो।

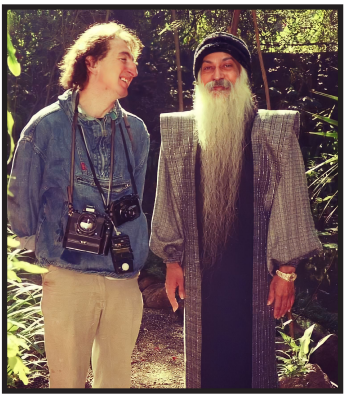

अध्याय–5

हर परिस्थिति का सदुपयोग

आज का पहला प्रश्न पूछा है बोरीवली मुंबई से सरस्वती जी ने, भगवान ने जिंदगी में दुख क्यों दिए? ओशो के नजरिए में क्या कष्टों का उपयोग भी साधना के लिए किया जा सकता है?

ओशो के नजरिए में जीवन के प्रत्येक पल का उपयोग आध्यात्मिक साधना के लिए किया जा सकता है। मुख्य रूप से चार प्रकार की साधनाएं हैं जिन्हें हम कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और सांख्ययोग में विभाजित कर सकते हैं। इन चारों में ही सब प्रकार की परिस्थितियों का उपयोग किया जा सकता है। सच पूछो तो पूरी जिंदगी हमें अध्यात्म का पाठ सिखाने के लिए ही है। कर्मयोगी जो है वह अपने जीवन से कष्टों को दूर करने हेतु कर्म तो करेगा लेकिन उसकी साधना यह होगी कि वह फलाकांक्षारहित होकर निष्काम भाव से, अकर्ताभाव से कर्म करे। भक्त की भावदशा दूसरी होगी, वह मानता है कि उस मालिक प्रभु ने जो कुछ भी दिया है वह हमारे विकास के लिए दिया है। अगर कुछ कांटे या कंकड़ दिए हैं तो हमें समझाने के लिए दिए होंगे। भक्त कहता है, जो भी भगवान देता है वह हमारे लिए हितकारी ही होगा।

तेरे फूलों से भी प्यार, तेरे कांटों से भी प्यार,
जो भी देना चाहे दे दे सरकार, दुनिया के तारणहार।

कल मैं एक बहुत प्यारी कविता पढ़ रहा था–

चोट पर चोट खाए जाते हैं और हम मुस्कुराए जाते हैं।

भक्त की भावदशा ऐसी होती है। वह कहता है कि परमात्मा अगर मुझे दुखों की अग्नि से गुजार रहा है तो वह मुझे शुद्ध सोने से शुद्ध कुंदन बनाने के लिए है।

चोट पर चोट खाए जाते हैं, और हम मुस्कुराए जाते हैं।

दाग दिल के जलाए जाते हैं, यूं अंधेरे मिटाए जाते हैं।

दर्द पर दर्द गम पे गम देकर, राजे–उल्फत सिखाए जाते हैं।

बक्श कर बेबसी–ओ–मजबूरी, इख्तियार आजमाए जाते हैं।

खार फैला के बागे–हस्ती में, गुंचा–ओ–गुल खिलाए जाते हैं।

भक्त दुख को परीक्षा की घड़ी समझता है। ये उसकी भावदशा है, यह भी साधना में सहयोगी है।

बिजलियां गिर रही हैं हम पे इधर, वो उधर मुस्कुराए जाते हैं।

वह दुखों को भी दुख की भांति नहीं देखता। तुम्हारा प्रेमी या तुम्हारी प्रेमिका तुम्हें कोई कष्ट देता है तब वह कष्टदायी नहीं लगता, उसमें भी प्रेम ही नजर आता है, भक्त की ऐसी दृष्टि होती है। फिर सांख्ययोग वाले लोग साक्षीभाव की साधना करते हैं, वे भी दुखों का उपयोग करते हैं। अतीत में दो प्रकार के लोग हुए– एक महावीर के जैसे लोग जो जंगल में जाकर खड़े हो गए, सब प्रकार की कष्टपूर्ण परिस्थितियों में उपवास कर रहे हैं, अपमान सह रहे हैं। आमंत्रित कर रहे हैं दुखों को और दुखों के साक्षी बन रहे हैं, जागरुकता को साध रहे हैं कि मैं इसमें निर्लिप्त रह पाऊं। दूसरे प्रकार के साधक हुए राजा जनक जैसे जो कि राजमहल में सुखों के बीच में रहते हुए साक्षीभाव को साध रहे हैं, सुख में रहते हुए सुख से निर्लिप्त रह पाऊं, सुख मुझे न छुए। तो साक्षीभाव की साधना में सुख और दुख दोनों का ही प्रयोग किया जा सकता है। तपस्या इसी प्रकार से तो विकसित हुई क्योंकि दुख में स्वाभाविक रूप से हम उससे दूर हटना चाहते हैं, उसमें साक्षीभाव साधना आसान है। सुख हमें सुलाता है और दुख हमें जगाता है। रात को अगर कोई सुखद सपना आता है तो संभावना है कि आप गहरी नींद में चले जाएंगे और अगर कोई दुखदायी या डरावना सपना है तो संभावना है कि आप चीख मारकर जाग जाएं और नींद टूट जाए। तो दुख का उपयोग साक्षीभाव साधने के लिए भी किया जा सकता है। तुम पूछते हो ओशो का नजरिया क्या है? ओशो कहेंगे न तो सुख के पीछे दीवाने बनो, न दुखों को आमंत्रित करते फिरो कि आ बैल मुझे मार, ओशो कहेंगे जीवन में अपने आप ही दोनों आ रहे हैं रात और दिन की भांति, स्वास्थ्य और बीमारी की भांति, जब जो आए उसी में साक्षी हो जाओ। ये आग्रह क्यों करना कि सुख हो, ये जिद क्यों करना कि मैं दुखों और कष्टों में रहूंगा, कष्ट तो अपने आप आ ही रहे हैं, अपने आप सुख आ ही रहा है और जा रहा है। तुम दोनों में साक्षीभाव साधो क्योंकि मूल साधना तो साक्षीभाव की ही है। इस प्रकार हर परिस्थिति का उपयोग किया जा सकता है।

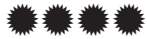

दूसरा प्रश्न डॉक्टर कमल किशोर सिन्हा पटना से पूछते हैं, बचपन में मैं

भगवान पर भरोसा करता था। साइंस में पी.एच.डी. पूरी करने के बाद श्रद्धा करने की पूरी कोशिश करता हूं, मगर आस्था टूट–टूट जाती है। आस्तिकता व नास्तिकता के बीच में डोलते हुए अपराध बोध का अनुभव होता है। मेरे जैसे और भी अनेक लोग परंपरा तथा आधुनिकता की बातों में पिस रहे होंगे, हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए ओशो का क्या संदेश है?

तुम्हारे जैसे व्यक्ति धीरे–धीरे दुनिया में बढ़ते जा रहे हैं। कर्मयोगियों की संख्या कम होती जा रही है, सांख्ययोगियों की गिनती छोटी पड़ती जा रही है और भक्त तो धीरे–धीरे बिल्कुल ही खोते जा रहे हैं। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आस्था और भरोसा तथा श्रद्धा करना मुश्किल होता जा रहा है। खासकर शिक्षा के प्रचार–प्रसार के बाद, विज्ञान की उन्नति के बाद और मुश्किल हो गया है, भविष्य में और भी मुश्किल होता जाएगा। भविष्य के लिए जो मार्ग होगा वह ज्ञानयोग का मार्ग होगा।

अभी–अभी मैंने चार योगों की बात की थी, ज्ञानमार्ग बुद्धि से होकर जाता है, उसमें संदेह की स्वीकृति है। अपने मन का पूरा उपयोग करो। विचारों का, बुद्धि का पूरा–पूरा उपयोग करो, श्रद्धा करने की कोई जरूरत नहीं। श्रद्धा भक्ति का मार्ग है। याद रखना, सभी मार्ग पहुंचा देते हैं। जैसे चार रास्ते हैं पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तो सब रास्तों से मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। हिमालय के एवरेस्ट शिखर पर अगर भारत की तरफ से चढ़ना हो तो उत्तर की तरफ मुंह करके चढ़ना होगा, चीन से अगर एवरेस्ट पर चढ़ना हो तो दक्षिण की तरफ मुंह करके चढ़ना होगा, बिल्कुल विपरीत मार्ग होंगे। ऐसे ही पूरब और पश्चिम से भी चढ़ा जा सकता है लेकिन अंत में एवरेस्ट पर पहुंच जाओगे, मंजिल सबकी एक ही है। ठीक इसी प्रकार ये चार मार्ग जो मैंने बताए, डॉक्टर कमल किशोर सिन्हा तुम्हारे लिए ज्ञानयोग का मार्ग होगा। गौतम बुद्ध का मार्ग तुम्हारे लिए उचित होगा। तुम आस्था करने की चिंता छोड़ो, कोई जरूरत नहीं है आस्था करने की, कोई जरूरत नहीं है विश्वास करने की, तुम तो अपने संदेह का उपयोग करो, अपनी विचारशीलता का उपयोग करो, अपने विवेक को जगाओ। भगवान बुद्ध की वाणी धम्मपद पर प्रवचन देते हुए परमगुरु ओशो कहते हैं–

बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूं, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।

दुनिया के सारे धर्मों ने भरोसे को पहले रखा है, सिर्फ बुद्ध को छोड़कर। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है, फिर ही कदम उठेगा। बुद्ध ने कहा, अनुभव प्राथमिक है, श्रद्धा आनुषांगिक है। अनुभव होगा, तो श्रद्धा होगी। अनुभव होगा, तो आस्था होगी।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, आस्था की कोई जरूरत नहीं है; अनुभव के साथ स्वयं आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी लायी हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लायी आस्था के पीछे भी छिपे होंगे तुम्हारे संदेह।

तुम आरोपित भी कर लोगे विश्वास को, तो भी विश्वास के पीछे अविश्वास खड़ा होगा। तुम कितनी ही दृढ़ता से भरोसा करना चाहो, लेकिन तुम्हारी दृढ़ता कंपती रहेगी और तुम जानते रहोगे कि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं उतरा है, उसे तुम चाहो भी तो कैसे मान सकते हो? मान भी लो, तो भी कैसे मान सकते हो? तुम्हारा ईश्वर कोरा शब्दजाल होगा, जब तक अनुभव की किरण न उतरी हो। तुम्हारे मोक्ष की धारणा मात्र शाब्दिक होगी, जब तक मुक्ति का थोड़ा स्वाद तुम्हें न लगा हो।

बुद्ध ने कहा– मुझ पर भरोसा मत करना। मैं जो कहता हूं, उस पर इसलिए भरोसा मत करना कि मैं कहता हूं। सोचना, विचारना, जीना। तुम्हारे अनुभव की कसौटी पर सही हो जाए, तो ही सही है। मेरे कहने से क्या सही होगा!

बुद्ध के अंतिम वचन हैं– अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनना। और तुम्हारी रोशनी में तुम्हें जो दिखायी पड़ेगा, फिर तुम करोगे भी क्या... आस्था न करोगे तो करोगे क्या? आस्था सहज होगी। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है।

बुद्ध का धर्म विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता वहां। समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

आने वाले दिन गौतम बुद्ध के दिन होंगे, बुद्ध अपने समय से ढाई हजार वर्ष पहले आ गए थे। उस समय लोग उनको उतना नहीं समझ पाए जितना आज समझ पाएंगे, शायद भविष्य में और ज्यादा समझ पाएंगे। पुराने दिनों में भक्ति आसान थी, लोग ज्यादा हृदयपूर्ण थे, उनके मस्तिष्क उतने विकसित न थे लेकिन हृदय की भावनाएं ज्यादा प्रगाढ़ थीं। भाव में डूबना, आस्था में डूबना, श्रद्धा करना ज्यादा आसान था। अब वह दिनों–दिन कठिन होता जा रहा है और होता जाएगा। किन्तु अध्यात्म का गौतम बुद्ध वाला मार्ग भविष्य में राजमार्ग बन जाएगा।

अगला प्रश्न पूछते हैं छोटेलाल पाण्डेय गुलाबपुर, छत्तीसगढ़ से, परमगुरु ओशो अहंकार को प्रभुमिलन में बाधा क्यों मानते हैं?

क्योंकि अहंकार में पृथकता का भाव है, अहंकार कहता है कि मैं सारे अस्तित्व से भिन्न हूं, अलग हूं, मेरी सत्ता इस जगत की सत्ता से अलग है। और जब अलग है तो निश्चित रूप से मुझे संघर्ष करना होगा, मुझे लड़ना होगा, मुझे सारे अस्तित्व के खिलाफ एक युद्ध में जाना होगा। अहंकार हमेशा भयभीत रहेगा, इस विराट अस्तित्व से तुम कैसे लड़ोगे। अहंकार स्वयं को भिन्न मानता है इसलिए वह परमात्मा से, अस्तित्व से टूट जाता है। अगर तुम वैज्ञानिक बुद्धि के हो और परमात्मा शब्द तुम्हें पसंद नहीं आता तो छोड़ो, बुद्ध ने भी उसका उपयोग नहीं किया, अस्तित्व शब्द का प्रयोग करो, हम इस विराट अस्तित्व के हिस्से हैं, सब भांति इससे जुड़े हुए हैं। जो श्वांस हम ले रहे हैं वह इस विराट वायुमण्डल से ही आती–जाती है, ये वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ते हैं तब हम प्राण वायु ले पाते हैं, हम कार्बनडाइऑक्साइड छोड़ते हैं उन्हें पेड़ ले लेते हैं, वह उनके लिए जीवनदायी है। क्या हमारा अस्तित्व पेड़ों से अलग हो सकता है?

अगर दुनिया में वृक्ष न रहें तो हम भी न बचेंगे। दस करोड़ मील दूर है सूरज, आज सुबह अगर सूरज न उगता तो कोई न उठता, हम सब भी ठण्डे हो जाते। कितना भी दूर हो, फिर भी सूरज दूर नहीं है। उसकी रोशनी, उसकी ऊष्मा, उसका ताप हमारे भीतर जीवनऊर्जा पैदा कर रहा है। हम भांति–भांति से पूरे अस्तित्व से जुड़े हुए हैं, हजारों तरीकों से जुड़े हुए हैं। अहंकार कहता है कि मेरी सत्ता अलग है इसलिए अहंकार टूटने का भाव पैदा कर देता है। निश्चित रूप से यह विषाद में ले जाएगा। जब मैं कहता हूं योग तो योग का शाब्दिक अर्थ होता है जुड़ना। हम कहते हैं न दो और तीन का योग पांच हुआ, योग यानी जोड़। ये टूटने का भाव, भ्रम मिट जाए उसी का नाम योग है। अभी मैंने चार प्रकार के योगों की बात कही, अंततः उन सबका एक ही परिणाम है, अस्तित्व के साथ अद्वैत की फीलिंग पैदा हो जाती है, सत्य का पता चलता है कि वास्तव में मैं इस अस्तित्व से भिन्न नहीं हूं।

तुम पूछते हो कि ओशो अहंकार को प्रभु मिलन में बाधा क्यों कहते हैं?

क्योंकि अहंकार हमारे चारों तरफ एक झूठी रेखा खींच देता है, वह कहता है कि मैं सबसे पृथक और भिन्न हूं और मुझे संघर्ष करना होगा। यह दीवार असत्य है और इसलिए सत्य से मिलन में बाधक है।

सुनो ये कहानी मुल्ला नसरुद्दीन की, अपनी युवावस्था में पहला–पहला इश्क हुआ गुलजान नाम की एक लड़की से। गुलजान बीमार थी और अस्पताल में भर्ती थी तो मुल्ला को पता चला। वह मिलने के लिए गया। अस्पताल में पूछताछ करता हुआ उस कमरे के सामने पहुंचा जहां गुलजान भर्ती थी। एक महिला वहां खड़ी थी, मुल्ला ने पूछा कि मैडम क्या गुलजान नाम की लड़की इसी कमरे में है? उस मैडम ने कहा हां। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं उससे मिलना चाहता हूं। वह महिला बोली कि क्षमा करें, वह सख्त बीमार है और केवल निकट के रिश्तेदारों से ही मिलने दिया जा रहा है। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तो उसका भाई हूं, वह महिला बोली कि आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई, मैं उसकी मां हूं। इतने सालों से तुम कहां खोए थे।

अगर हम झूठ में जिएंगे, असत्य में जिएंगे तो सत्य से मिलन नहीं हो पाएगा। गुलजान की मां ने फिर नसरुद्दीन को गुलजान से नहीं मिलने दिया। असत्य का सत्य से मिलन नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार अहंकार की वजह से हम परमात्मा से नहीं मिल सकते।

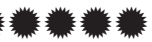

अंतिम प्रश्न यशवंत गोयल दिल्ली से पूछते हैं, क्या दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, विष्णु, शिव आदि देवी–देवताओं का धरती पर शारीरिक अस्तित्व था या केवल ऋषिमुनियों की कल्पनाएं हैं? मैं सत्य की खोज करना चाहता हूं, कृपया मार्गदर्शन करें?

इतिहास में मेरी कोई रुचि नहीं है गोयल जी, ये देवी–देवता हुए कि नहीं या कल्पनाएं हैं, यह इतिहास का विषय है। इसको इतिहासविदों पर ही छोड़ो। बाहर की दुनिया में क्या होता है वह विज्ञान का क्षेत्र है, अध्यात्म का विषय नहीं है। तुम कह रहे हो सत्य की खोज करना चाहते हो, अपने भीतर ध्यान–समाधि में डूबो और स्वयं को पहचानो। यह परमसत्य है। तुम्हें क्या करना है विष्णु हुए कि नहीं, लक्ष्मी हुई कि नहीं, शिव–पार्वती हुए कि नहीं, गणेश

जी हुए कि नहीं, इसको जानकर करोगे क्या? बाहर के सत्य की खोज विज्ञान का क्षेत्र है, आंतरिक सत्य की खोज अध्यात्म का क्षेत्र है इसलिए व्यर्थ के सवाल मत उठाओ, इसका धर्म से कोई लेना–देना नहीं है। तुम तो अपने भीतर डूबो। तुम कौन हो... अपने आपको जानो, वह आत्मज्ञान ही अध्यात्म है। पीछे मैंने जिन चार योगों की बात कही उन चार मार्गों से भीतर जाया जा सकता है। जैसे चार दिशाएं बाहर ले जाने वाली हैं ठीक ऐसे ही चार दिशाएं अंतर्यात्रा की ओर ले जाने वाली हैं। स्वयं को जानो, वही धर्म का लक्ष्य है।

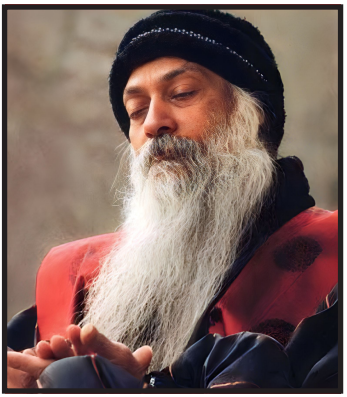

अध्याय–6

असंतोष का कारण

आज का पहला प्रश्न पूछा है संतोष सिंह लखनऊ से, मेरे पूज्य माता–पिता ने बचपन से ही मेरे मन में कुछ आदर्श स्थापित कर दिए, अच्छे शिक्षकों की कृपा से श्रेष्ठ शिक्षा की नदी पार की, सौभाग्य एवं प्रियजनों की कृपा से दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया किन्तु समाज की नजरों में आज सफलता के शिखर पर पहुंचकर भी मन में चैन नहीं है, शांति किस चिड़िया का नाम है पैंसठ साल में भी पता न चल सका, मैं परेशान क्यों रहता हूं खुद नहीं जानता, क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?

संतोष कुमार, तुम्हारे असंतोष का कारण है तुम्हारा अहंकार, तुम्हारे लक्ष्य, तुम्हारी महत्वाकांक्षाएं, तुम्हारी ईर्ष्या की भावना, दूसरों से आगे निकलने की दौड़ और पैंसठ साल में तुम्हारी आदत पड़ गई है। पैंसठ साल से तुम दौड़ रहे हो, आज तुम बैठना भी चाहोगे तो अचानक बैठ न पाओगे। जैसे कोई व्यक्ति साइकिल चला रहा हो तो वह पैडल मारता है, आज अगर वह पैडल मारना भी बंद कर दे तो भी साइकिल चलती ही चली जाएगी, साइकिल अचानक रुक नहीं जाएगी। ठीक उसी प्रकार तुम जिसको सौभाग्य कह रहे हो मेरी दृष्टि में वह वरदान नहीं, अभिशाप था। तुम जिन्हें उच्च आदर्श कह रहे हो वे ही तुम्हारी बेचैनी और तनाव के कारण हैं। जितना बड़ा गैप तुम्हारे आदर्श और तुम्हारे बीच होगा, जितनी दूरी होगी, जितना ऊंचा आदर्श होगा उतना ही ज्यादा तनाव होगा। तुम जो हो और जो तुम होना चाहते

हो इन दोनों के बीच का अंतराल बेचैनी और तनाव पैदा करता है। तुम कह रहे हो कि श्रेष्ठ एंबीशन की नौका में सवार हुए, क्षमा करना, कोई एंबीशन श्रेष्ठ नहीं होता, जैसे कोई श्रेष्ठ बीमारी नहीं होती। महत्त्वाकांक्षा एक बीमारी है, एक रोग है मन का। हीनता की ग्रंथि से पीड़ित लोग दूसरों से आगे निकलना चाहते हैं, ये इन्फीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स एक रोग है। रोग श्रेष्ठ नहीं होता, सभी रोग निकृष्ट होते हैं। इसलिए तुम्हारी बात से राजी नहीं हूं, अच्छी महत्त्वाकांक्षाएं तुम्हें पकड़ा दी गईं, आदर्श तुम्हारे सामने स्थापित कर दिए गए, उन्हीं की वजह से तुम परेशान हो। और यही मुश्किल है, अगर तुम बीमारी को स्वास्थ्य समझने लगो तो फिर इलाज कैसे करवाओगे, तुम्हें एक बार अपनी जिंदगी पर पुनर्विचार करना पड़ेगा। तुम जिसे सफलता कह रहे हो, मेरी नजर में वह सुफलता शायद हो, किन्तु सफलता नहीं है। सफलता और सुफलता में भेद है। फल तो आ गए लेकिन बड़े कड़वे आए, मीठे फल भी आ सकते थे लेकिन उसके लिए तो एक दूसरी ही यात्रा पर जाना होगा, ध्यान और समाधि की यात्रा पर। अपने भीतर मुड़ना होगा, महत्त्वाकांक्षाएं छोड़नी होंगी, दूसरों के साथ ईर्ष्या और प्रतियोगिता छोड़नी होगी। 'एस धम्मो सनंतनो' नामक प्रवचनमाला में भगवान बुद्ध की देशना को समझाते हुए ईर्ष्या पर बोलते हुए ओशो ने अपने जीवन का संस्मरण सुनाया है। सुनो–

मैं कलकत्ता में एक मित्र के घर मेहमान होता था। उनके पास सबसे बढ़िया कोठी है कलकत्ते में। थी कहना चाहिए, अब नहीं है। अब एक दूसरी कोठी खड़ी हो गयी, पड़ोस में ही खड़ी हो गयी। जब मैं उनके घर मेहमान होता था, तो वे हमेशा अपने मकान में मुझे ले जाते थे। कई बार दिखा चुके थे, मगर फिर–फिर दिखाते।

उनका रस खतम नहीं होता था। स्विमिंग–पूल, बगीचा–सब दिखाते। उनकी आदत थी, यह मानकर, जब भी वे दिखाते फिर इस तरह उत्सुकता लेता जैसे कभी नहीं देखा है। मगर आखिरी बार जब उनके घर गया, तो उन्होंने मकान न दिखाया। मैं थोड़ा हैरान हुआ, क्या यह आदमी बदल गया है। मैंने पूछा कि क्या मामला है, मकान नहीं दिखलाइएगा? कहने लगे, क्या खाक दिखलाएं! देखते नहीं कि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया है? जब तक इससे बड़ी कोठी न कर लूं तब तक अब चैन नहीं। अब क्या दिखाना है!

इनका मकान वैसे का वैसा ही है, क्योंकि बगल के मकान ने इनके मकान में कुछ फर्क नहीं किया है। इनका मकान ठीक उतना ही सुंदर है जैसा था। लेकिन बगल में एक मकान खड़ा हो गया! बड़ी लकीर किसी ने खींच दी, इनकी लकीर छोटी हो गयी, बिना छुए। किसी ने छुआ नहीं, हाथ नहीं लगाया, मगर बगल में एक लकीर खड़ी हो गयी।

उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि कुछ समझाइए इनको; न सोते हैं, न चैन है! इनकी छाती पर बोझ हो गया है वह बगल का मकान। बगल के मकान वाले को शायद पता भी न हो कि कोई जला–भुना जा रहा है, कि कोई मरा जा रहा है। मगर इस आदमी ने अपने भीतर एक बीज बो लिया। यह उस मकान से नहीं आया है, क्योंकि इसकी पत्नी को कोई तकलीफ नहीं है। इसकी पत्नी भी वहीं है, उसे कोई तकलीफ नहीं है। मकान से नहीं आया है; इसके अपने मन का रोग है। एक ईर्ष्या जगी है। अहंकार को चोट लगी है।

मैंने उनसे कहा कि मैं सदा जानता था, कभी न कभी यह झंझट होगी। आप अपने मन में अपने मकान का इतना रस लेते हैं कि कोई भी मकान अगर खड़ा हो गया, तो आप जी न सकेंगे। क्योंकि सदा आपको देखकर मुझे ऐसा लगा है कि यह मकान आपके लिए नहीं है, आप मकान के लिए हैं। आप मालिक नहीं हैं, यह मकान मालिक है। आपने वस्तुओं को अपनी मालकियत दे दी है। आप गुलाम हो गए हैं। मुझे डर था कि कभी न कभी यह होगा, कोई बड़ा मकान बगल में खड़ा हो जाएगा, तो आप झेल न पाएंगे।

वे रुग्ण रहने लगे जब से वह मकान बन गया। मन में सारा खेल है।

यही ज़िंदगी मुसीबत यही ज़िंदगी मसर्रत
यही ज़िंदगी हकीकत यही ज़िंदगी फसाना

कैसे मन की व्याख्या है, कैसे तुम देखते हो, कैसे तुम सोचते तुम व्याख्या करते हो जीवन की –सब उस पर निर्भर है।

संतोष कुमार, तुम लखनऊ के रहने वाले हो, अंग्रेजों की कृपा से लखनऊ की स्पेलिंग बदल दी गई है। अगर तुम उसको ठीक से पढ़ो तो वो है लक नाऊ, मैं तुमसे वही कहता हूं तुम अभी सौभाग्य को प्राप्त हो सकते हो अगर तुम अपनी नासमझी को, अपनी मूर्छा को, अपनी ईर्ष्या को देख पाओ, यह ईर्ष्या ही तुम्हारे रोग का कारण है। तुम्हारी अचेतन आदत पड़ गई है दौड़ते रहने की। आज तुम्हारे पास सब सुख–सुविधाएं हैं मगर फिर भी तुम चैन से नहीं बैठ सकते। एक और विचित्र तर्क हमारे मन में होता है। जब हम किसी को शांत बैठे देखते हैं, हम सोचते हैं कि जिस दिन हमें शांति मिल जाएगी हम भी आराम से बैठेंगे। जब हम किसी कृष्ण को बांसुरी बजाते देखते हैं तो हमारे मन में तर्क आता है कि जिस दिन हमको चैन होगा हम भी चैन की बांसुरी बजाएंगे। जबकि स्थिति उल्टी है, बुद्ध चूंकि बैठ गए हैं, उन्होंने दौड़ना बंद कर दिया है इसलिए शांत हो गए हैं। और कृष्ण चूंकि बांसुरी बजा रहे हैं इसलिए उन्हें चैन आ गया है, करार आ गया है। अपने इस गलत तर्क को देखना। सामान्यतः लोग सोचते हैं कि अभी तो दौड़–भाग कर लें। जब हमें शांति मिल जाएगी फिर हम भी चैन से बैठेंगे। वैसा दिन कभी नहीं आएगा। जिसको बैठना है उसको अभी ही बैठना पड़ेगा। लक नाऊ, अभी ही वह सौभाग्य घटित हो सकता है। जीसस क्राइस्ट ने कहा है– धन्य हैं वे जो अंतिम हैं। प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा। वह प्रभु का राज्य कहीं बाहर नहीं, किसी परलोक में नहीं, तुम्हारे भीतर है। चीन के संत लाओत्से ने कहा है कि मेरे तीन खजाने हैं; ओशो ने अपनी किताब का नाम उसी वचन पर रखा है, 'ताओ द थ्री ट्रेजर्स'। उन तीन खजानों में एक यह भी है, प्रथम होने की दौड़ में न पड़ना। थोड़े जागो, पैंसठ साल के हो गए हो, अब न जागोगे तो कब जागोगे।

दूसरा प्रश्न मंजू वाही दिल्ली से पूछती हैं, ओशो शून्य में डूबने पर इतना जोर क्यों देते हैं? शून्य का तो अर्थ है जो कुछ भी नहीं है। कुछ नहीं में डूबने से क्या मिलेगा?

अभी तुमने पहले सुन लिया संतोष कुमार का सवाल, वे पूर्ण होने की कोशिश करते रहे, महत्त्वाकांक्षाओं से भरे रहे, उन्हें क्या मिला? अशांति, बेचैनी, परेशानी की आदत। मंजू

वाही, तुम ओशो की बात मानकर तो देखो, शून्य होकर और मिटकर तो देखो, इस अहंकार को डुबाकर तो देखो। सूफी फकीर जिसे कहते हैं फना हो जाना, बुद्ध उसी को कहते हैं शून्य हो जाना, मिट जाना, निर्वाण। निर्वाण का अर्थ है दीपक का बुझ जाना। ये तुम्हारे अहंकार का दीपक बुझ जाए तब तुम जानोगी कि क्या होगा। उस शून्य में पूर्ण का अवतरण होता है। वह शून्य रिक्तता नहीं है, वह भरा हुआ है, पूर्ण भराव उसमें मौजूद है, और एक आयामी नहीं, बहुआयामी भराव है। उस शून्य में अद्भुत संगीत गूंज रहा है ओंकार का, उस शून्य में प्रकाश फैला है परमात्मा का, वह शून्य खालीपन नहीं है। ओशो की एक किताब का नाम है 'शून्य की नाव', एक दूसरी किताब का शीर्षक है 'शून्य समाधि', एक तीसरी किताब का शीर्षक है 'शून्य के पार'। अंग्रेजी में एक किताब का नाम है 'जीरो एक्सपीरिएंस' शून्य का अनुभव, एक अन्य किताब है 'सिन सिन मिन, द बुक ऑफ नथिंग' शून्यता की किताब। काश, तुम शून्य होना सीख जाओ फिर तुम पाओगी कि एक नए प्रकार की पूर्णता आ गई। एक जिंदगी जीकर तुमने देख ली पूर्ण होने की कोशिश, भरने की कोशिश और हाथ खाली के खाली हैं। सिकंदर और हिटलर के हाथ भी खाली रहते हैं। अब एक दूसरा प्रयास और करके देखो, मिटने का प्रयास, स्वयं को समाप्त करने का प्रयास और तब पाओगी कि एक अद्भुत भराव तुम्हारे जीवन में आ गया।

मैंने सुना है एक चुटकुला, नौसेना जहाज के कप्तान ने अभिमान सिंह नामक फौजी को बुलाकर कहा कि अभिमान सिंह, तुमने मुझे समुद्र में डूबने से बचाया इसके लिए कल सुबह परेड के दौरान मैं सबके सामने तुम्हें शुक्रिया अदा करूंगा। भयभीत फौजी अभिमान सिंह ने गिड़गिड़ाते हुए कहा– सर, प्लीज ऐसा मत कीजिएगा। अगर दूसरे फौजियों को पता चल गया कि मैंने कप्तान को बचाया है तो सब मिलकर मुझे समुद्र में डुबा देंगे। काश ये अभिमान सिंह, ये अहंकार हमारा डूब जाए। अद्भुत घटना घटती है... तुम एक तरफ मिटते हो और दूसरी तरफ परमात्मा हो जाते हो। एक तरफ शून्यता आती है और दूसरी तरफ पूर्णता आ जाती है। लेकिन बुद्ध पूर्णता की बात नहीं करते, वे तो शून्यता की बात करते हैं, ताकि लोभी लोग आकर्षित न हों। वे आनंद की बात नहीं करते, आनंद की बात सुनकर फिर महत्वाकांक्षी लोग, लोभी लोग चले आएंगे कि हमको भी आनंद पाना है। वे बात ही नहीं करते कि मिलेगा क्या, बस इतना ही कहते हैं कि मिट जाओ, डूब जाओ... अधूरी बात कहते हैं। उसके पीछे भी एक कारण है कि लोभी, महत्वाकांक्षी, वासना से भरे लोग आकर्षित न हों।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बेटे फजलू और बेटी फातिमा, जो स्कूल से अपना सर्टीफिकेट लेकर लौटकर आए थे, उनसे पूछा कि बच्चों तुम्हें कितने–कितने नंबर मिले? फजलू ने मुस्कुरा कर कहा कि डैडी, मुझे दीदी से सिर्फ दो परसेंट नंबर कम मिले हैं। नसरुद्दीन बहुत खुश हुआ। उसने फातिमा से पूछा कि तुम्हें कितने नंबर मिले? फातिमा ने कहा कि मुझे कुल दो परसेंट मिले। फजलू को शून्य मिला हुआ था। मुल्ला नसरुद्दीन ने फजलू के टीचर को फोन करके पूछा कि आपने मेरे बेटे को शून्य अंक क्यों दिया? टीचर ने कहा कि क्या करूं जनाब, मुझे इससे और कम नंबरों का पता ही नहीं है।

काश तुम्हें भी शून्य का पता चल जाए, अद्भुत घटना घटेगी, तुम्हारे भीतर पूर्ण अवतरित हो जाएगा।

अगला प्रश्न पूछा है सुशील कुमार ने सोनीपत हरियाणा से, सुख–दुख व शांति–अशांति में क्या भेद है?

एक त्रिकोण की तरह समझो, नीचे के दो कोण सुख–दुख हैं, दोनों ही उत्तेजनाएं हैं और जो शीर्ष कोण है वह अनुत्तेजना है, उसका नाम है शांति। अशांति दो प्रकार की होती है– एक प्रीतिकर अशांति, एक ऐसी उत्तेजना जिसे हम चाहते हैं उसे कहते हैं सुख और एक ऐसी उत्तेजना जिसे हम चाहते हैं कि न हो, अप्रीतिकर है उसे हम कहते हैं दुख। जो लोग नकारात्मक दृष्टिकोण से जीते हैं, जो कहते हैं कि दो घनी अंधेरी रातों के बीच एक छोटा सा दिन और सैकड़ों कांटों के बीच मुश्किल से दो–चार फूल खिलते हैं, ऐसा निगेटिव दृष्टिकोण जिनका है उनके जीवन में दुख घटित होता है। सुनो डॉक्टर सफदर 'आह' की यह गजल, इनका नाम भी ध्यान रखना, इन्होंने अपना उपनाम 'आह' रखा है। बड़ा निगेटिव दृष्टिकोण होगा। लिखते हैं–

दमभर का था दौर खुशी का, जिसको मुकद्दर लूट गया,
जैसे चमका एक सितारा, और चमक कर टूट गया. . .
खून मिले ये आंसू मेरे, तुमको दुआएं देते हैं,
ठेस लगाकर चले हो ऐसी, दिल का छाला फूट गया. . .
खत्म हुए जल–जल के पतंगे, तारे डूबे शमां बुझी,
रात के महफिल का हर साथी, धीरे–धीरे छूट गया. . .
जैसे चमका एक सितारा, और चमक कर टूट गया. . .
दमभर का था दौर खुशी का, जिसको मुकद्दर लूट गया।

ये थी आह साहब की गजल। इसके ठीक विपरीत पॉजिटिव दृष्टिकोण वाला व्यक्ति होता है वह कहता है कि दो उजाले दिनों के बीच में एक छोटी सी रात होती है और फूलों के चारों तरफ जो सैकड़ों कांटे उगे हैं, बड़े प्यारे हैं, फूल की रक्षा के लिए उगे हैं, वरना इन नाजुक फूलों की रक्षा कौन करेगा। सुनो हसरत जयपुरी का यह गीत। इनका भी नाम ख्याल में रखने जैसा है, हसरत, आशा से भरे हुए हैं, उम्मीद से भरे हुए हैं, विधायक दृष्टिकोण है–

तुम आज मेरे संग हँस लो, तुम आज मेरे संग गा लो
और हँसते–गाते इस जीवन की उलझी राह संवारो. . .
शाम का सूरज बिंदिया बनकर सागर में खो जाए
सुबह सवेरे वो ही सूरज आशा लेकर आए
नई उमंगे नई तरंगें आस की ज्योति जगाए. . .
दुःख में जो गाए मल्हार वह इंसान कहलाए
जैसे बंसी के सीने में छेद हैं फिर भी गाए

गाते–गाते रोये मयूरा फिर भी नाच दिखाए. . .

ये एक उदाहरण है विधायक दृष्टिकोण का। लेकिन याद रखना सुख और दुख, आशा और निराशा, विधायक और नकारात्मक ये दोनों ही उत्तेजनाएं हैं, दोनों ही अशांतियां हैं। शांति बिल्कुल ही अतिक्रमण करने वाला बिन्दु है, वह त्रिकोण का ऊपरी कोण है। शांति का अर्थ है– अनुत्तेजित चेतना की अवस्था, वहां न सुख है और न ही दुख है। सुख–दुख दोनों के पार, उस शांति की तरफ चलो, समाधि में डूबना उसकी विधि है, उसकी तैयारी है।

अध्याय–7

कृष्ण के नजरिये से

गुरुदेव प्रणाम। आज पहला प्रश्न पूछते हैं लोधीपुर पंजाब से शोभनाथ जी, सभी धर्मगुरु अपने–अपने संप्रदाय को श्रेष्ठ बतलाते हैं। ईश्वर तक पहुंचने के एकमात्र सच्चे मार्ग के रूप में निरूपित करते हैं, इससे लोग भ्रमित होते हैं। इसके बारे में ओशो का नजरिया क्या है?

ओशो का नजरिया भगवान कृष्ण की दृष्टि के बिल्कुल समान है। गीता अध्याय 18 के प्रथम तीन श्लोकों में भगवान कृष्ण अर्जुन को संन्यास के, त्याग के सभी मार्गों के बारे में बताते हैं किन्तु अपना दृष्टिकोण भी स्पष्ट करते हैं कि उन्हें स्वयं क्या पसंद है। वे कर्मफल के त्याग को असली संन्यास कहते हैं। ठीक इसी प्रकार जो अन्य गुरु हैं, वे भी भिन्न–भिन्न मार्ग बताते हैं। हर मार्ग का एक फायदा है तो एक नुकसान भी है। हर चीज की लाभ और हानि बराबर होती है। यदि कोई कहे कि सिर्फ यही मार्ग सच है बाकी सब झूठ हैं तो उसके शिष्यों को एक फायदा होगा कि वे उस मार्ग पर निष्ठापूर्वक, लगनपूर्वक चल पाएंगे। अगर कोई कहे कि सभी मार्ग सच हैं, सभी मार्गों द्वारा मंजिल तक पहुंचा जा सकता है तो शिष्यों को भ्रम पैदा होगा। जैसे यदि एवरेस्ट पर चढ़ना है तो भारत की तरफ से चढ़ो तो उत्तर की दिशा की तरफ मुंह करके चढ़ना होगा, चीन से चढ़ना है तो दक्षिण की तरफ मुंह करके चढ़ना होगा। दोनों मार्ग सच हैं। लेकिन दोनों मार्गों को सच कहने से शिष्यों को भ्रम पैदा होता है कि वे क्या

करें, किस मार्ग से चढ़ें। तो आपका प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। जो गुरु कहते हैं कि सभी मार्ग सच हैं उनके शिष्यों के भ्रमित होने की संभावना है, जो गुरु कहते हैं कि सिर्फ यही मार्ग सच है और शेष सब झूठ है उनके शिष्यों के कट्टरपंथी होने की संभावना है। नासमझ आदमी को हर जगह नुकसान ही मिलता है, समझदार आदमी हर चीज का फायदा उठा लेता है। आधुनिक युग में सारी पृथ्वी एक ग्लोबल विलेज हो गई है, हमें अन्य सभी मार्गों का पता चल गया है। अब ज्यादा बेहतर यही होगा कि हम सब मार्गों को समझें और जो मार्ग अपनी प्रकृति के अनुकूल है उसको चुनें।

अतीत में भगवान श्रीकृष्ण का नजरिया ओशो के नजरिए से बिल्कुल मिलता–जुलता था। सुनो गीता की व्याख्या करते हुए ओशो किस प्रकार कृष्ण के वचन को समझाते हैं–

'गीता भारत की खोजी गई सभी औषधियों का संग्रह है। उसमें से तुम चुन लेना; उसमें तुम्हें जो मौजूं लगे, उसमें तुम्हें जो सत्यरूप लगे। सभी सत्यरूप हैं, पर तुम्हें जो सत्यरूप लगे, तुम उसे आत्मसात कर लेना। तुम उससे यात्रा पर निकल जाना। और सभी मार्ग वहीं पहुंचा देते हैं।

मंजिल तो एक है, मार्ग अनेक हैं। दृष्टि साफ हो, तो किसी भी मार्ग से चलकर आदमी वहीं पहुंच जाता है। तुम बैलगाड़ी से चलो, थोड़ी ज्यादा देर लगेगी। तुम ट्रेन से चलो, थोड़ी जल्दी आ जाओगे। ट्रेन के कुछ लाभ हैं, बैलगाड़ी के भी कुछ लाभ हैं; कुछ हानियां बैलगाड़ी की हैं, कुछ हानियां ट्रेन की हैं।

बैलगाड़ी से चलोगे, तो गति तो नहीं होगी, लेकिन अनुभव ज्यादा होगा। गति तो बहुत धीमी होगी, लेकिन पहाड़–पर्वत, नदी–नाले सभी को तुम देखते, जीते हुए आओगे। ट्रेन से चलोगे, जल्दी पहुंच जाओगे। लेकिन इतनी तेजी से निकलती रहेगी ट्रेन कि बस झलक मिलेगी पहाड़ की, नदी की, नालों की।

हवाई जहाज से आओगे, कोई झलक भी नहीं मिलेगी। यहां बैठे नहीं कि उतरने का समय आ जाएगा। ज्यादा से ज्यादा चाय पी पाओगे। और अब और द्रुत वेग के यान बनते जा रहे हैं, जिनमें तुम पट्टी बांध पाओगे और खोल पाओगे। और पहुंच जाओगे। अनुभव से वंचित हो जाओगे।

राह का भी बड़ा आनंद है।

मेरे एक मित्र हैं, वे हमेशा पैसेंजर गाड़ी से ही चलते हैं। धनी हैं, पर बड़े समझदार हैं। दिल्ली पहुंच सकते हैं घंटे भर में; जहां रहते हैं, वहां से हवाई जहाज की भी सुविधा है। मगर वे जाते हैं ट्रेन में और वह भी पैसेंजर में! कई जगह गाड़ी बदलते हैं। तीन दिन लग जाते हैं दिल्ली पहुंचने में।

एक दफा उन्होंने मुझे अपने साथ ले लिया। मैंने कहा, यह मामला क्या है? चलो मैं भी चलूं! निश्चित, वे आनंद लेते हैं राह का। उनको एक–एक स्टेशन की गतिविधि पता है। कहां रसगुल्ले अच्छे बनते हैं! कहां भजिए अच्छे बनते हैं! बड़ा भोगते हैं मार्ग को। वे दुख पाते ही नहीं पैसेंजर में। हर स्टेशन पर उतरते हैं; स्टेशन मास्टर से मिल आते हैं; कुलियों से पहचान . . .

। जिंदगी भर वे उसी रास्ते पर तीन–तीन दिन यात्रा करते हैं अनेक बार। वे कहते हैं–इतनी जल्दी भी क्या है? जाना कहां है?

वे भी ठीक कहते हैं। राह का भी अपना आनंद है। फिर राहें भी अलग–अलग हैं। मंजिल एक है।

तुम अपना रस पहचानना, अपना भाव समझना और राह चुन लेना।

कृष्ण सभी राहें बता देते हैं। फिर वे अपना भाव भी बता देंगे कि उनका भाव क्या है? उनकी क्या दृष्टि है? ऐसे तो उन्होंने अपनी दृष्टि बता ही दी। जैसे ही उन्होंने कहा कि कुछ विचक्षण पुरुष, वहीं उन्होंने अपना रस भी बता दिया। जब उन्होंने कहा कि कुछ विचक्षण पुरुष, कुछ अद्भुत पुरुष। बस, उन्होंने चुनाव भी कर दिया। बाकी को कहा, पंडित हैं, ज्ञानी हैं, समझदार हैं, विद्वान हैं; पर एक को कहा, विचक्षण, अनूठी दृष्टि वाले लोग। वहीं उन्होंने अपना झुकाव दिखा दिया।

कृष्ण स्वयं ही वे विचक्षण दृष्टि वाले पुरुष हैं। अगर उनकी बात तुम्हें जंच जाए, तो बड़ी अनूठी है। क्योंकि कुछ छोड़ना नहीं पड़ता और सब छूट जाता है; कुछ करना नहीं पड़ता और सब हो जाता है।

सार में उस विचक्षण दृष्टि की बात इतनी ही है कि तुम परमात्मा के उपकरण हो जाते हो, निमित्त मात्र। वह कराता है, तुम करते हो। वह देता है, तुम लेते हो। वह छीनता है, तुम छिन जाने देते हो। तुम बीच से हट जाते हो।

तुम कहते हो, जो तेरी मर्जी। बाजार में रखेगा, बाजार में रहेंगे। मगर वहां भी तेरा ही आनंद है, तूने ही रखा है। और तुझसे हम ज्यादा समझदार नहीं हैं। पहाड़ पर भेज देगा, पहाड़ पर चले जाएंगे। तू हमारी खुशी है। तेरे काम से जा रहे हैं, यह हमारा आनंद है। तू हमसे कुछ उपयोग ले रहा है, हम धन्यभागी हैं।

तो सत्य तक पहुंचने के अनेक मार्ग हैं, अपनी प्रकृति के अनुकूल चुन लेना। ओशो का एक वचन याद रखना 'द इजी इज राइट'। जो आपके लिए सरल, सहज है वही आपके लिए उचित है।

अगला प्रश्न है भारत में दिव्य आत्माओं जैसे श्रीकृष्ण, श्रीराम, भगवान शिव एवं मां काली, इन सबको गहरे काले रंग में चित्रित करने का क्या अभिप्राय है? इस बारे में ओशो का नजरिया हमें बताएं। पूछती हैं झारखंड से मां प्रांजलि।

प्रांजलि, सफेद रंग उथला होता है, काले रंग में गहराई होती है। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि हमने अपने देवी–देवताओं को गहरे रंग में चित्रित किया है, उनकी मूर्ति को हमने श्यामल रंग में बनाया है। भगवान कृष्ण का एक नाम है श्याम, कृष्ण का अर्थ होता है काला, श्याम का भी वही अर्थ है। श्याम जैसे धुंधलके का रंग। भगवान शिव को भी हमने नीले रंग में रंगा, मां काली को काले रंग में रंगा क्योंकि काले रंग में एक गहराई होती है, एक गहन सौंदर्य होता है, सफेद रंग तो छिछला–छिछला होता है। तुमने कभी देखा पहाड़ी नदियां सफेद दिखाई देती हैं, पानी बड़ी उथल–पुथल मचाता है और जब वही नदी गहरी हो जाती है, कोई

झील जब शांत हो जाती है, प्रशांत महासागर जैसी गहराई और नीलिमा तब कालिमा उसमें आ जाती है। भारत में सफेद रंग को कभी भी सौंदर्य का प्रतीक नहीं समझा गया।

और आश्चर्य, पिछले करीब सौ सालों में पश्चिम के लोग भी श्यामल रंग को सुंदर मानने लगे हैं। भारत में अभी गोरे होने की औषधियां, क्रीमें और पाउडर बिका करते हैं, लेकिन आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पश्चिम के मुल्कों में जहां गोरे लोग रहते हैं वहां काले होने की क्रीम सबसे मंहगी बिका करती है। अखबार और टी.वी. उसी के विज्ञापन से भरे होते हैं। लोग वह क्रीम लगाकर सूरज की तेज धूप में पड़े रहते हैं अपना रंग काला करने के लिए। काले रंग में एक गहराई है।

लाओत्से महान संत हुए चीन के, वे अपनी प्रसिद्ध किताब 'ताओ तेह किंग मे' कहते हैं कि ताओ का प्रकाश धुंधलके जैसा है, मिस्ट जैसा, कोहरे जैसा है। ये मिस्ट शब्द से ही मिस्टीरियस शब्द बना है, मिस्टिक शब्द बना है। संत को, रहस्यदर्शी को हम मिस्टिक कहते हैं, रहस्यदर्शी जिसने कि उस कोहरे जैसे, धुंधलके रंग को देखा।

जब आप लोग ओशोधारा में निरति समाधि कार्यक्रम करने आएंगे तब आप भीतर के इस श्यामल रंग को पहचानेंगे। और तब आप जानेंगे कि क्यों भगवानों की, अवतारों की मूर्तियों को हमने श्यामल रंग का बनाया। उसके पीछे गहन कारण है, वह दिव्य रंग है, डिवाइन कलर। बांसुरी बजाते हुए कृष्ण प्रतीक हैं। उनका दिव्य रंग भीतर के नूर का, भीतर के आलोक का प्रतीक है और उनकी बांसुरी अनाहत नाद का प्रतीक है। तो हमारे देश के ऋषियों ने, कलाकारों ने, मूर्तिकारों ने दिव्य चेतनाओं को गहन श्यामल रंग में रंगा। भक्त गाते हैं– दर्शन दो घनश्याम नाथ मेरी अंखियां प्यासी रे!

तीसरा सवाल– क्या ओशो लगन मुहूर्त एवं शुभ घड़ी आदि में भरोसा करते हैं? पूछा है यू.पी. से गोवर्धन दास राठी ने।

निश्चित रूप से करते हैं, पूर्ण–पूर्ण भरोसा है कि लगन–मुहूर्त एवं शुभ घड़ियों को देखकर काम करने वालों के काम बिगड़ जाते हैं। उन्होंने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा है 'लगन मुहूरत झूठ सब'। संत पलटू साहब का पूरा वचन है–

लगन मुहूरत झूठ सब और बिगाड़े काम,
पलटू शुभ दिन शुभ घड़ी याद पड़े जब नाम।

जब परमात्मा का नाम, ओंकार रूपी सतनाम याद आ जाता है, वही एकमात्र शुभ घड़ी है, इसके अलावा तो सब अशुभ ही अशुभ है।

मैंने सुना है न्यायाधीश ने एक अपराधी को फांसी की सजा सुनाई। उससे पूछा गया कि क्या तुम्हारी कोई अंतिम इच्छा है?उस आदमी ने कहा कि मिलॉड, कृपया सोमवार की जगह मुझे दो दिन पहले शनिवार को ही फांसी दे दीजिए। न्यायाधीश ने पूछा क्यों? उसने कहा कि मैं नहीं चाहता कि हफ्ते की शुरुआत एक खराब दुर्घटना से हो।

आखिरी सवाल गोंदिया से रवि अग्रवाल जी पूछते हैं जीवन में सब सुविधाएं, शिक्षा, प्रेम आदि पाकर भी मुझ बदकिस्मत को खालीपन सा क्यों महसूस होता रहता है? कभी–कभी आत्महत्या के विचार भी मन में कौंध जाते हैं।

रवि, संसार के सारे प्रेम असफल होने को बाध्य हैं। संसार की सारी सफलताएं इंद्रधनुष की भांति हैं। दूर से बड़ी सुंदर भासती हैं लेकिन पास जाकर पकड़ोगे तो हाथ कुछ भी न आएगा। वह इन्द्रधनुष बस दिखाई देता है, वास्तव में कहीं है नहीं। संसार की सारी सफलताएं बस ऐसी ही हैं। लेकिन इसको बदकिस्मती न कहो, तुम सौभाग्यशाली हो, महावीर के जीवन में और बुद्ध के जीवन में भी यही घटना घटी थी। सब कुछ उनके पास था और पता चला कि हाथ खाली के खाली ही हैं। इस खालीपन का सदुपयोग कर लो, बिना परमात्मा के जीवन में कोई भराव नहीं आ सकता। अगर चाहते हो भीतर एक भराव हो, पूर्णता हो, संतोष घटे, जीवन में तृप्ति और आनंद हो तो बाहर की शिक्षा काम न आएगी, भीतर आत्मविद्या सीखनी पड़ेगी। बाहर का प्रेम काम न आएगा, भक्ति की गहराइयों में डूबना होगा, बाहर के कार, मकान और वाहन काम न आएंगे, भीतर के साधन और साधनाएं काम आएंगी। अच्छा हुआ तुम्हें असंतोष का अनुभव हो रहा है, खालीपन का एहसास हो रहा है। सुनो यह गीत–

मेरा सुंदर सपना टूट गया, टूट गया, हां टूट गया।
जीवनसाथी रूठ गया, रूठ गया, हां रूठ गया।
जाने वाला जाते–जाते दिल की दुनिया लूट गया
जिसको अपना घर माना था वह मुकाम भी छूट गया।
प्रेम नगरिया बड़ी कठिन है, कोई साथ न आये
दिल भी आधे रस्ते आकर, आंसू बन बह जाये
इस रस्ते पर हाय! रे किस्मत, साया भी अपना छूट गया।
मेरा सुंदर सपना टूट गया, टूट गया, हां टूट गया।

अच्छा है सपना टूटा। सपना न टूटे तो फिर सत्य की तरफ यात्रा कैसे होगी। शुभ हुआ, सुंदर हुआ, इसको बदकिस्मती न कहो, यह खालीपन तुम्हें प्रेरित कर रहा है किसी नए भराव के लिए। एक बात स्पष्ट है संसार के भराव काम न आए। किसी और चीज से भरना होगा। वह धन नहीं, वह पद नहीं, वह शिक्षा और ज्ञान नहीं, वह प्रेम के संबंध नहीं कुछ और।

वह कुछ और क्या है? उसी का नाम है अध्यात्म। जब सारी शारीरिक और मानसिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं तभी आध्यात्मिक जरूरत पैदा होती है। जिन लोगों की शारीरिक जरूरतें पूरी नहीं हुईं उन्हें आत्मा की जरूरत का पता ही नहीं चलता। इसलिए सौभाग्यशाली हैं वे लोग जिन्होंने बाहर की धन–संपदा जुटा ली, जिन्होंने बाहर की सुख–सुविधाएं एकत्रित कर लीं, अब उनके पास मौका है, अवसर है, अभी भी उन्हें लग रहा है कि समथिंग इज मिसिंग, किसी चीज की कमी है। वह कमी उन्हें प्रेरित करेगी, वह कमी उन्हें धक्का देगी कि जाओ और खोजो। और फिर वह खोजकर पाएगा, जिन खोजा तिन पाइयां। आंतरिक भराव निश्चित रूप से घटित होगा। बुद्ध को मिला, महावीर को मिला लेकिन राजमहल में न

मिला। सुंदर पत्नी थी उससे न मिला, खूब धन–वैभव था, पद–प्रतिष्ठा थी उससे न मिला, अपने भीतर खोजा तब मिला। एक आंतरिक भराव हमारे भीतर है लेकिन उस आंतरिक खालीपन के दौर से गुजरना होता है। ईसाई संत कहते हैं– इसके पहले कि हम उजाले को जानें एक अंधेरी रात से गुजरना होता है। लेकिन याद रखना, हर रात बीत जाएगी।

प्रतीक्षा करो, भोर होने को है, और एक आध्यात्मिक भराव शीघ्र होने को है। इसलिए जैसे ही यह खालीपन किसी को एहसास में आता है, यहां पर दो रास्ते हैं, एक है आत्महत्या। और दूसरा रास्ता है आत्मरूपांतरण। या तो इस खालीपन से त्रस्त होकर अपने आपको मिटा दो या फिर स्वयं को बदलो। लेकिन मिटाने से कुछ न होगा, वह आत्महत्या वास्तव में आत्महत्या नहीं है, केवल देह हत्या है। फिर नए शरीर में पुनर्जन्म हो जाएगा, आत्मरूपांतरण से गुजरो, अपने आपको बदलो। साधना में लगो, समाधि की खोज में लगो।

अध्याय–8

तपश्चर्या का महत्त्व

आज का पहला प्रश्न पूछते हैं ललितपुर से श्री वर्धमान जैन। जैन धर्म में तपस्चर्या को अति महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस संबंध में हमें ओशो के दृष्टिकोण से अवगत कराने की अनुकंपा करें।

ओशो की जीवन दृष्टि में तपस्या का अर्थ है ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन और शक्ति का रूपांतरण। वह जो लाइफ एनर्जी है उसकी दिशा में परिवर्तन। सामान्यतः वह अधोगामी है, बहिर्मुखी है। वह ऊर्ध्वगामी और अंतर्मुखी बने उसका नाम है तप। तप यानी तपिश। वह जो जीवन की गर्मी है उसका चढ़ाव हो ऊपर की तरफ। प्रकृति से हम संस्कृति की तरफ चलें। लेकिन सामान्यतः तप के संबंध में बड़ी भूलें हुई हैं। ओशो कहते हैं धर्म की आत्मा अहिंसा है, धर्म की श्वास है संयम और धर्म का बाह्य रूप है तप। 'महावीर वाणी' नामक प्रवचनमाला में बारह प्रकार के तपों की उन्होंने विस्तार से व्याख्या की है। लेकिन हम चीजों को बाहर से देखते हैं इसलिए अहिंसा तो हमें पता ही नहीं चलती, संयम का सिर्फ अनुमान लगाते हैं, तप ही हमारी नजरों में दिखाई पड़ता है। तो अहिंसा और संयम के संबंध में भी भूलें हुई हैं, वे अपरिचय की भूलें हैं। लेकिन सर्वाधिक भ्रांति तप के संबंध में हुई है। आत्महिंसा को हम तप समझ बैठे। जिस चीज से हम परिचित हैं, जो स्थूल है, हमारी पकड़ में आती है, उसके संबंध में सर्वाधिक भ्रांति उत्पन्न हुई है। गलत धारणाओं से सावधान! तप का अर्थ स्वयं को तपाना

नहीं, जलाना नहीं, शरीर को गलाना नहीं है। ये भूल क्यों पैदा हुई उसका भी कारण समझना। सामान्यतः हम अपने जीवन में देखते हैं कि हम सुख की आकांक्षा से भरे हैं, सुख की मांग करते हैं और अंततः दुख हाथ आता है। इससे हमारे भीतर एक विपरीत तर्क उत्पन्न होता है। क्या ऐसा हो सकता है कि हम दुख की कामना करें और उससे सुख की प्राप्ति हो! जब सुख के पीछे दौड़े और दुख मिला तो क्या यह संभव है कि दुख के पीछे हम जाएं और सुख हाथ में आए! बस यहीं से सारी गलती की शुरुआत होती है। यह गलत तर्क हमें बिल्कुल भ्रांत आवेश में प्रवेश करा देता है। लेकिन ख्याल रखना, वह आदमी जो आनंद प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहा है वह भी वास्तव में सुखवादी ही है। तो तप के नाम पर जो दुखवाद प्रचलित हुआ वह असंभव है। दुख की कोई कामना हो ही नहीं सकती।

अगर कोई व्यक्ति दुख पा भी रहा है जानबूझकर तो जरूर किसी गहरे सुख की आशा में है। हो सकता है यहां वह उपवास कर रहा हो ताकि स्वर्ग में छप्पन प्रकार के व्यंजन मिल सकें, हो सकता है यहां वह ब्रह्मचर्य साध रहा हो ताकि स्वर्ग में जाकर उर्वशी और मेनका उसको प्राप्त हो सकें। हो सकता है यहां उसने अपनी छोटी सी झोपड़ी छोड़ दी हो ताकि स्वर्ग में महल मिले और कल्पवृक्ष के नीचे वह विश्राम करे।

तो वास्तव में दुख चाहा ही नहीं जा सकता है, इस बात को खूब अच्छे से समझ लो। तो तपस्या के नाम पर दुख पाने के जो उपाय चल रहे हैं उनको जरा गौर से देखना। उसमें बड़ी चूक नजर आएगी। एक आदमी सुंदर वस्त्र पहने हुए है और वह इंतजार करता है कि कोई वहां से गुजरे और उसे देखे, नहीं तो सुंदर वस्त्रों का फिर मजा ही क्या! कभी कुंभ के मेले में जाकर देखना... वहां नागा बाबा हैं, अब उन्होंने तो वस्त्र छोड़ दिए मगर वे भी उतना ही इंतजार कर रहे हैं कि कोई देखे। वह जो राख लपेटकर, अपने आपको कुरूप बनाकर साधु बैठा है वह भी अपने बटुए में छोटा सा आइना रखता है।

अब कोई पाउडर क्रीम लगाकर आइना देखता तो समझ में आता, जब तुमको राख ही लपेटना है, सिर ही घुटाना है और अपने आपको कुरूप ही बनाना है तो अब आइने की क्या जरूरत है! लेकिन ये भी शरीर का दूसरे ढंग का श्रृंगार ही है। कुछ खास बात न हुई, बात तो वही की वही है। भोगी भी शरीर केन्द्रित है और तथाकथित त्यागी और संन्यासी भी शरीर केन्द्रित है। अगर आप भोगी से पूछो कि आपका शरीर छीन लिया जाए तो फिर कैसा लगेगा? वह कहेगा नहीं, वही तो मेरे सुख का साधन है, उसके बिना तो मेरा काम ही नहीं चलेगा, मुझे तो शरीर चाहिए ही चाहिए। लेकिन जरा अपने तपस्वी से यही सवाल पूछो कि अगर तुम्हारे पास शरीर न हो तो? उतना ही चिंतित और परेशान वह भी होगा क्योंकि उसकी सारी साधना जिसको वह तपस्या कह रहा है, शरीर से ही संबंधित है। शरीर के बिना उसका भी काम न चलेगा। तो दोनों ही देह केन्द्रित हैं, भोगी भी और त्यागी भी। तो फिर भेद क्या हुआ? कोई भी भेद न हुआ। और कभी–कभी ऐसा भी होता है कि दुख में सुख की भ्रांति होने लगती है।

आपने वैज्ञानिक पाबलव का नाम सुना होगा जिसने कंडीशंड रिफ्लेक्स का सिद्धांत

खोजा। एक आदमी बहुत शराब पीता था, छुड़ाए नहीं छूटती थी। उसको पाबलव के पास भेजा गया। पाबलव ने अपने शिष्यों से कहा कि ऐसा करो कि जब भी ये शराब का पैग उठाता है उसी समय इसको इलेक्ट्रिक शॉक लगाओ। धीरे–धीरे शराब का और शॉक का एसोसिएशन हो जाएगा तब शॉक के डर की वजह से यह शराब पीना छोड़ देगा। 'लॉ ऑफ एसोसिएशन' के अनुसार एक नई कंडीशंड रिफ्लेक्स इसके भीतर बन जाएगी। तो ये प्रयोग महीनों भर चला और जानते हो इसका परिणाम क्या हुआ? वह शॉक का इतना अभ्यस्त हो गया कि बिना शॉक के उसे शराब पीने का मजा ही नहीं आता था। फिर तो घर में जाकर उसने गिलास में दारू डाली और एक अंगुली बिजली के सॉकेट में डाली, जब करेंट लगे उसे तब झनझना जाए वह और तब फिर शराब का असली मजा आए। उल्टा भी हो सकता है, जिंदगी बड़ी उलझाव वाली है। दुख में भी सुख की भ्रांति हो सकती है कि जो आदमी सिगरेट पीता है उसको क्या सुख मिलता होगा?

आंखें लाल हो जाती हैं, खांसी आती है, फेफड़ों में कैंसर हो जाता है लेकिन एसोसिएशन हो गया। उसे लगता है कि धुआं भीतर–बाहर करने से उसको कुछ सुख मिल रहा है। भ्रांति हो सकती है क्योंकि एक प्रकार का तपस्वी तो है ही। शुद्ध हवा मौजूद थी मगर वह तो कह रहा है नहीं, हम तो धुआं ही भीतर ले जाएंगे। खांसेंगे, छींकेंगे और गला खराब करेंगे। नहीं, दुख में भी सुख की भ्रांति हो सकती है। और ये सारे तपस्वी बस सुख के खिलाफ नजर आते हैं, जो दूसरों को नरक भेजने की योजना में लगे रहते हैं। वे तो यहां जानबूझकर दुख पा रहे हैं, खुद के लिए उन्होंने स्वर्ग का इंतजाम किया हुआ है, बाद में वे सुख भोगेंगे और यहां वे जिनकी निंदा कर रहे हैं कि तुम भोगी, संसारी तुम सब नरक में सड़ोगे, कड़ाह में तले जाओगे, इस तपस्वी का सारा मजा इसी में है कि वह दूसरों को नरक में और दुख में भेजेगा। ये बड़ी रुग्ण चित्त की अवस्था है, ये तप नहीं है, ओशो इसको तप नहीं कहते।

तीन शब्दों को समझना– एक विकृति, एक प्रकृति और एक संस्कृति। प्रकृति है बीच में। अगर तुम प्रकृति से लड़े तो तुम विकृति में गिर जाओगे, लेकिन असली बात गिरना नहीं है, ऊपर उठना है, पार जाना है। बुद्ध ने जिसको पारमिता कहा। तो प्रकृति से लड़ना नहीं है लेकिन प्रकृति के पार जाना है। सुनो इस संबंध में ओशो की अमृतवाणी–

'अतिक्रमण तप है, विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है वह शब्द है 'पारमिता'। वो कहते हैं कि लड़ो मत, इस किनारे से उस किनारे चले जाओ, पार चले जाओ, पारमिता। इस किनारे से जहां तुम खड़े हो लड़ो मत क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो उसके पास ही रहना पड़ेगा, जिससे लड़ना हो उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने–सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं जैसे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बॉर्डर में खड़े रहते हैं सैनिक। दुश्मनों से दूर जाना खतरनाक है, दुश्मन के सामने संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। बुद्ध ने कहा है– अगर भोग के तट से लड़ोगे तो उस तट पर पहुंचोगे कैसे? लड़ो मत, उस तट पर पहुंच जाओ तो ये तट

अपने आप छूट जाएगा, विलीन हो जाएगा। तपस्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंट है, द्वंद्व नहीं, संघर्ष नहीं। तो इस अतिक्रमण के रूप पर हम थोड़े गहरे जाएंगे तो बहुत सी बातें ख्याल में आएंगी। एक तो पहले याद कर लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है। आप एक घाटी में खड़े हैं जहां अंधेरा बहुत है, आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं हैं, आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी ही देर में आप पाते हैं कि सूर्य के मंडित शिखर पर आप पहुंचने लगे, वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, आप घाटी में खड़े ही न रहे, आपने सूर्य मंडित शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया, आपने धूप से नहाए हुए शिखर की ओर बढ़ना शुरू कर दिया और आप प्रकाश में पहुंच गए। अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं। जहां आप हैं वहां दो चीजें हैं– आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं तो आपको घाटी में ही रहना पड़ेगा, अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं हैं, अपने भीतर जो आप हैं उसे ऊपर उठाते हैं, उर्ध्वगमन पर चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की ही जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं भोग की, वे भी हैं आप भी हैं। गलत त्यागियों का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि इस वृत्ति को मैं कैसे मिटाऊं, सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि इस वृत्ति के ऊपर मैं कैसे उठ जाऊं।'

आज का अगला प्रश्न है– गुरुदेव टीवी पर आपका प्रवचन सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे आप मेरे ही प्रश्नों के जवाब दे रहे हों। ठीक इसी तरह ओशो की किताब कहीं से भी खोलकर पढ़ता हूं तो लगता है कि इसी पेज पर मेरी आज की समस्या का समाधान लिखा है, ये कैसा रहस्य है? जो बात अभी मेरे जेहन में है हैरां हूं तू उसे जान गया कैसे, न कही होठों से, न आंखों स, तू राजे गम पहचान गया कैसे। पूछते हैं इन्दौर से प्रेम प्रकाश।

रहस्य कुछ भी नहीं है प्रेम प्रकाश, सारी समस्याओं की जड़ एक ही है। मूर्च्छा, अहंकार, विचारों की भीड़, सोए–सोए जीना और एक ही समाधान और इलाज है उसका, वह है जागृति, समाधि और ध्यान। इसलिए तुम कहीं से भी सुनो या पढ़ो, तुम्हें यही लगेगा कि तुम्हारी ही समस्याओं का हल हो रहा है। इसमें कोई रहस्य नहीं है क्योंकि सभी मनुष्यों की समस्याएं एक ही हैं और एक ही जड़ से आ रही हैं। और उनका इलाज भी एक है। हां, लोग अपनी समस्याएं बताते नहीं, इसलिए नहीं बताते कि फायदा क्या। दूसरों को बताएंगे तो लोग मजाक उड़ाएंगे। किसी शायर ने लिखा है–

जख्मे जिस्म दिखाने का तो फायदा है
जख्मे दिल की मरहम पट्टी होती ही नहीं।

अपने दिल के घाव लोग छुपाए चल रहे हैं, लेकिन घाव एक ही है और वह है अहंकार का घाव। और मूर्च्छा में हमने खुद ही खुद को मारा है और उसकी मरहम पट्टी दूसरों को दिखाने से होती नहीं इसलिए हम दिखाते भी नहीं। इसी शायर की आगे की एक पंक्ति सुनो–

क्यों बांधने चले हो आसमां को मुट्ठी में,
तुम्हें मालूम नहीं मिल जाना है मिट्टी में,
'कैसे हो' का जवाब 'ठीक हूं' देते हो,

हैरां हूं कि कितना बड़ा झूठ बोल लेते हो,
अजीब इंसां हो हंसते हो खाते–पीते हो,
इतने गमों में भी आखिर जी ही लेते हो,
और फिर ऊपर से यह भी कहते हो,
कि कड़वे घूंट अब और पिए जाते नहीं,
इम्तहां पर इम्तहां और दिए जाते नहीं,
हादसों के सफर में हम रह गए अकेले,
जख्में जिंदगी अब और सिए जाते नहीं।

भीतर बहुत जख्म हैं लेकिन उनका कारण एक ही है, आध्यात्मिक मूर्च्छा। और इसलिए उसका उपाय भी एक ही है, आत्मिक जागरण, स्वयं में स्थित होना।

तीसरा सवाल है– मां ओशो प्रिया जी के गीत सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई 'ओशो के दीवाने हम आनंद मनाते हैं, हंसते नचते गाते हम ध्यान में जाते हैं'। पुराने धर्मों ने त्याग, तपस्या पर इतना बल क्यों दिया जबकि प्रभु को सहज तरीके से पाया जा सकता है? पूछती हैं श्रीमती सरोज बाला दिल्ली से।

सरोज बाला तुम्हारा सवाल बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अतीत में तपस्या के बारे में, त्याग के बारे में बड़ी भ्रांतियां उत्पन्न हुईं, आज भी हैं, अभी खत्म कहां हुई हैं यद्यपि ओशो ने बड़ी कोशिश की। जागो, चेतो, हंसो, गाओ किसी बुद्धपुरुष ने हमें गंभीर होने के लिए नहीं कहा था क्योंकि गंभीरता, दुख, उदासी ये हमारे अहंकार को और मजबूत करते हैं। परमसाधु गोरखनाथ कहते हैं– हंसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्। हंसो, खेलो और ध्यान में जियो। चाहे बुद्ध हों कि महावीर, कृष्ण हों कि कबीर, नानक हों कि चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई हों कि सहजो बाई, सब गैर गंभीर लोग थे। माना कि महावीर कभी नाचे नहीं मीराबाई की तरह लेकिन उनके आसपास हवाओं में एक नृत्य है, एक जीवन ऊर्जा ज्योति की भांति ऊपर की ओर भागी जा रही है नृत्य करती हुई। सभी संत गैर गंभीर होते हैं, गंभीरता अहंकार का लक्षण है। सरोज बाला तुम्हारे लिए एक गीत–

गंभीरता एक रोग है, दवा हास्य योग है।
गंभीरता सिकोड़ती है तोड़ती है, हंसी हमें आपस में जोड़ती है।
जो तोड़े वह विकृत रोग है, जो जोड़े वह प्राकृतिक योग है।
अतः गंभीरता आध्यात्मिक रोग है और हास्य सहज योग है।
गंभीरता दुख देती उबाती है, जबकि हंसी निर्भारता लाती है।
उदासी सुलाती है, प्रसन्नता जगाती है और वर्तमान में लाती है।
अहंकार की कैद में गंभीरता बंद है क्योंकि उसमें अंतर्द्वंद्व है।
परमात्मा सच्चिदानंद है और उसे पाने का मार्ग भी आनंद है।

अगर वह परमानंद है तो उसे पाने का मार्ग दुख कैसे होगा। जरा सोचो ये तपस्वी, त्यागी भूखे रह रहे हैं, नग्न रह रहे हैं तो तुम सोचते हो कि परमात्मा इनसे प्रसन्न होगा? जरा तुम्हारा बेटा ऐसा करे खाना न खाए और नंगा खड़ा हो जाए और अपने आपको कोड़े मारे तो तुम उससे प्रसन्न होओगे कि और दो–चार झापड़ लगाओगे। अगर कहीं कोई नरक है तो इन तपस्वी की जरूर वहां पिटाई होगी कि तुमको इतना सुंदर जीवन दिया था जीने के लिए, भोजन का इंतजाम किया था और तुम भूखो मर रहे हो नालायक, बेवकूफ! परमात्मा परमानंद है और उसको पाने का नाम भी आनंद है। त्याग तपस्या के नाम पर जो चल रहा है वह त्याग–तपस्या नहीं, मैं तो एक ही त्याग सिखाता हूं वह है अहंकार का त्याग, गंभीरता का त्याग, उदासी का त्याग। प्रसन्न बनो और प्रफुल्लित बनो और एक ही तपस्या सिखाता हूं वह है जीवन ऊर्जा का दिशा परिवर्तन, बाहर से भीतर की ओर और नीचे से ऊपर की ओर।

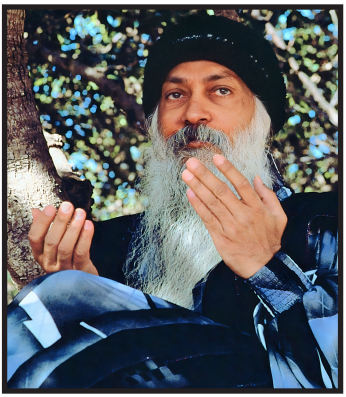

अध्याय–9

धार्मिक इलाज: असफल?

पहला प्रश्न पूछा है उत्तर प्रदेश से राकेश बत्रा जी ने कि इतने अवतारी पुरुष, तीर्थंकर, पैगम्बर, संत, महात्मागण धरती पर आते हैं किन्तु आदमी की हालत सुधरती नहीं। धर्म के नाम पर चल रहा इलाज मनुष्यता की बीमारी को ठीक क्यों नहीं कर पा रहा?

हम ठीक होने दें तब न...! बुद्धपुरुष हमें जगाने आते हैं किन्तु हमारी मूर्च्छा बड़ी गहरी है, हम जागने को तैयार ही नहीं। बहुत से कारण हैं, समझना। सबसे पहला कारण बुद्धपुरुषों का प्रयास हमारे अहंकार से विपरीत है, वे हमारे अहंकार को तोड़ना चाहते हैं और हम अहंकार को बचाना चाहते हैं। हमारे सहयोग के बिना वे हमें जगा न सकेंगे। हमारे मन में एक सिम्पैथी का भाव हो, हम जागने को तैयार हों, हम सर्जन से ऑपरेशन कराने को तैयार हों तभी सर्जन हमारा ऑपरेशन कर पाएगा, हमारा कंसेंट जरूरी है। चूंकि जागने में हमारा कंसेंट नहीं है, सपनों में हमारा इंटरेस्ट है इसलिए हम नहीं जागते। दूसरा, हम हर चीज की अपनी व्याख्या कर लेते हैं, बुद्धपुरुष कुछ कहते हैं और हम उसका कुछ और ही अर्थ निकाल लेते हैं, हम अपने आपको बड़ा बुद्धिमान समझते हैं। यही बुद्धि ही हमारी बीमारी है और इसलिए हमारा इलाज नहीं हो पाता। तीसरी चीज, हमारे पास हर चीज के लिए तर्क हैं, और विचित्र तर्क हैं, और हमें बिल्कुल राजी करने वाले तर्क लगते हैं।

मैंने सुना है भूगोल के शिक्षक ने फजलू से कहा कि मैंने तुमसे कहा था कि दुनिया का मानचित्र खरीदो। अभी तक तुमने क्यों नहीं खरीदा? फजलू ने कहा कि सर, आपने ही तो कहा था कि दुनिया रोज बदल रही है, मैं सोच रहा हूं कि जब दुनिया पूरी स्थिर हो जाए तब खरीदूंगा। अब बदलती हुई दुनिया का नक्शा खरीदकर क्या करना है। बात बिल्कुल तर्कपूर्ण लगती है लेकिन व्यर्थ है!

मैंने सुना है चंदूलाल अपने बेटे से पूछ रहा था कि बड़े होकर तुम किससे शादी करोगे? बेटे ने कहा कि मैं अपनी दादी अम्मा से शादी करूंगा। चंदूलाल को बहुत गुस्सा आया, उसने एक झापड़ मारा, शर्म नहीं आती, दादी से शादी करोगे? बेटे ने कहा इसमें शर्म की क्या बात है, जब आपने मेरी मम्मी से शादी की तो मैं आपकी मम्मी से शादी क्यों नहीं कर सकता! तर्क बिल्कुल ठीक लगता है लेकिन फिर भी बिल्कुल व्यर्थ है। हमारा ये तर्कशील मन हमें जागने नहीं देता इसलिए हम बुद्धपुरुषों की बातों का गलत तर्क निकाल लेते हैं।

चौथा बिन्दु, हम मानकर ही चलते हैं कि हम जन्म से ही धार्मिक हैं। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई सिक्ख है, कोई ईसाई है और हम अपनी मान्यताओं से, धारणाओं से तृप्त हैं। हमें लगता है कि जरूरत क्या है, ये बुद्धपुरुष हमें क्यों जगाने की कोशिश कर रहे हैं, हम तो पहले से ही जागे हुए हैं। हम जागने का सपना देख रहे हैं, हमें धार्मिक होने का ख्याल है। मैं ओशो के प्रवचन 'एस धम्मो सनंतनों' में पढ़ रहा था, वे बता रहे हैं कि एक आदमी मेरे पास आया और कहने लगा कि मैं ध्यान करने की कोशिश करता हूं लेकिन मेरी कोशिश में बेईमानी है इसलिए मैं बुद्धत्व को प्राप्त नहीं कर पा रहा हूं।

बड़ी मुश्किल है, मैं पूरी–पूरी ईमानदारी से कोशिश नहीं करता मैं क्या करूं? ओशो ने उसकी पूरी बात सुनी और कहा कि तुम ऐसा करो अब कोशिश करना छोड़ दो, कर्ताभाव छोड़ दो, सब प्रभु पर छोड़ दो जो कुछ भी हो रहा है उसकी मर्जी से हो रहा है, इस तथाता भाव में जियो। वह कहने लगा कि नहीं, ऐसे कैसे छोड़ सकता हूं, मैं जो बेईमानी कर रहा हूं। क्या वह भी परमात्मा कर रहा है? उसकी बात सुनकर लगेगा कि बड़ा धार्मिक आदमी है, कह रहा है अच्छे–अच्छे काम सब ईश्वर कर रहा है, लेकिन ध्यान में बेईमानी... क्या यह भी ईश्वर कर रहा है? ये तो मैं नहीं छोड़ सकता ईश्वर के ऊपर, बेईमानी तो मैं ही कर रहा हूं। प्रकारांतर से इसने 'मैं' भाव को फिर बचा लिया। सुनने में लगेगा कि बड़े तर्क की बात है, बड़ा धार्मिक आदमी है, आस्तिक आदमी है, लेकिन यह बड़ा अहंकारी आदमी है।

पांचवा बिन्दु, हमें भ्रम है कि हम स्वस्थ हैं, तो फिर हम इलाज कैसे कराएंगे। हम दवा लेने को तैयार ही नहीं होते, हम मानते ही नहीं कि हम बीमार हैं।

छठवां बिन्दु, हमारे ज्ञान, हमारे शास्त्र, हमारे ग्रंथ, हम सबको ख्याल है कि हम जानते ही हैं। बड़े–बड़े पंडित–पुरोहितों की बात छोड़ो, सड़क के किनारे जो पनवाड़ी की दुकान है अगर तुम उससे भी जाकर पूछो तो वह भी ब्रह्म के उपदेश तुम्हें दे देगा। हमारे देश में तो हर व्यक्ति ज्ञानी है, कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसको ईश्वर के बारे में मालूम नहीं हो, जब

मालूम ही है तो और क्या ख़ाक मालूम करोगे। अपना पता नहीं है और स्वर्ग के नक्शे टांगे बैठे हैं लोग... कि स्वर्ग में क्या होता है, सारा दूर-दूर का ज्ञान है।

मैंने सुना है एक आदमी विश्व भ्रमण पर जा रहा था तो वर्ल्ड मैप लेने के लिए वह एक दुकान पर गया। उसने सारी दुनिया का नक्शा खरीदा, नक्शे के साथ एक छोटा सा आइना भी दुकानदार ने उसे गिफ्ट किया। उस आदमी ने पूछा कि ये आइना किसलिए है, मुझे साज-श्रृंगार थोड़े ही करना है, मैं तो विश्व भ्रमण पर जा रहा हूं? दुकानदार ने कहा कि ये आइना इसलिए है कि अगर कहीं भटक जाओ तो बीच-बीच में देख लो कि कौन भटक गया है, अपनी शक्ल देख लेना। कहां भटक गए हो यह तो ठीक है लेकिन कौन भटक गया है। हम सबको भ्रम है कि हम अपने आपको तो जानते ही हैं और यही मुश्किल है कि हमें सिवाय आत्मज्ञान के और दुनिया भर का ज्ञान है। और उस ज्ञान में हम बुरी तरह से भ्रमित हो गए हैं, भटक गए हैं।

सातवां बिन्दु हमारे सपने हैं। हम बुद्धपुरुषों के ऊपर भी सपने आरोपित कर देते हैं, उनके साथ हम और नए सपने जोड़ देते हैं। बुद्धपुरुष कह रहे हैं कि अशांति को छोड़ दो और हम कुछ और सुन लेते हैं, हम सोचते हैं कि शांति को पाना है, हम एक नई वासना से भर जाते हैं। बुद्धपुरुष समझाते हैं कि अशांति का कारण वासना है, कामना है, कामना दुष्पूर है उसे छोड़ दो। हम कहते हैं कि ठीक, फिर हम शांत होने के लिए क्या करें? हमने एक नई कामना पैदा कर ली। पुरानी कामनाओं की लिस्ट तो वहीं की वहीं रही, एक और नई कामना शुरू हो गई कि अब मुझे शांत होना है। पुरानी अशांतियां जहां की तहां रह गईं, एक और अशांति और बेचैनी आकर खड़ी हो गई कि शांति को पाकर रहूंगा। पहले धन को पाना था तो वह तो पाना ही है, अब साथ में ध्यान को भी पाना है। अब समाधि को पाए बगैर तसल्ली न होगी हमारी। वासनाओं की लिस्ट और लंबी हो गई। हमसे क्या कहा गया था और हमने क्या समझा, हमने नए सपने खड़े कर लिए... बुद्धत्व को पाना है, मोक्ष को पाना है, निर्वाण प्राप्त करना है, आवागमन से मुक्ति चाहिए... हमने नए-नए सपने खड़े कर लिए। जागरण कैसे होगा? हमने तो नींद को और गहरा कर लिया। 'एस धम्मो सनंतनो' प्रवचनमाला में भगवान बुद्ध की वाणी 'धम्मपद' को समझाते हुए ओशो कहते हैं-

'लेकिन कितने ही लोगों ने जगाने की कोशिश की है, तुम जागते नहीं। आदमी का झूठ को पैदा करने का अभ्यास इतना गहरा है कि वह बुद्ध के आसपास भी... बुद्ध भी मौजूद हों जगाने को तो उनके आसपास भी... अपनी नींद की सुविधा जुटा लेता है। बुद्ध जगाते हैं, तुम उनके जगाने की चेष्टा को भी नशा बना लेते हो। तुम हर चीज में से शराब निकाल लेते हो। ऐसी कोई चीज नहीं है जिसमें से तुम शराब न निकाल लो। इसलिए तो बुद्ध आते हैं, चल जाते हैं; बुद्धपुरुष पैदा होते हैं, विदा हो जाते हैं; तुम अपनी जगह अडिग खड़े रहते हो, तुम अपने झूठ से हटते नहीं। शायद बुद्धपुरुषों ने जो कहा उसे भी तुम अपने झूठ में सम्मिलित कर लेते हो।

इसलिए बुद्धपुरुष आते हैं। उनके तीर ठीक तरकश से तुम्हारे हृदय की तरफ निकलते हैं। पर तुम बचा जाते हो।

हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की

आदमी ने कितने बुद्धपुरुष पैदा किए। हजारों खिज्र –पैगंबर, तीर्थंकर!

हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की

ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है

यह सब तस्लीम, यह सब स्वीकार कि हजारों बुद्धपुरुष हुए हैं। पर इससे क्या फर्क पड़ता है? आदमी अब तक भटकता है। आदमी भटकना चाहता है। कहता तो आदमी यही है कि भटकना नहीं चाहता। कहते तो मेरे पास यही हो, शांत होना चाहते हैं, सत्य होना चाहते हैं, सरल होना चाहते हैं। लेकिन क्या सच में तुम ऐसा होना चाहते हो? या कि सरलता के नाम पर तुम अशांत होने को उत्सुक हुए हो? या सत्य के नाम पर तुमने नए झूठों की तलाश शुरू की है? या शांति के नाम पर अब तुमने एक नया रोग पाला है? अब तुम शांति के नाम पर अशांत होने को उत्सुक हुए हो? साधारण आदमी तो सिर्फ अशांत होता है; उसे शांति की तो कम से कम चिंता नहीं होती। अब तुम शांति के लिए भी चिंतित हुए। पुरानी अशांति तो बरकरार, अब तुम और धन करोगे उसमें, गुणनफल करोगे। अब तुम कहोगे कि शांति भी चाहिए। अब एक नयी अशांति जुड़ी, कि शांति नहीं है। झूठ तो तुम थे, अब तुम कहते हो सत्य खोजेंगे। अब तुम सत्य के नाम पर कुछ नए झूठ ईजाद करोगे– स्वर्ग के, मोक्ष के, नर्क के, परमात्मा के, आकाश के।

मंदिरों में जाओ, स्वर्गों के नक्शे टंगे हैं –पहला स्वर्ग, दूसरा स्वर्ग; पहला खंड, दूसरा खंड, तीसरा खंड, सच खंड तक; नक्शे टंगे हुए हैं। आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा है, कोई अंत है! अपने घर का नक्शा भी तुमसे बनेगा नहीं। अपना भी नक्शा तुम बना न सकोगे कि तुम क्या हो, कहां हो, कौन हो, तुमने स्वर्ग के नक्शे बना लिए!

अपना पता नहीं है, स्वर्ग के नक्शे बना दिए हैं! विवाद चल रहे हैं लोगों के –कितने नर्क होते हैं? हिंदू कहते हैं, तीन। जैन कहते हैं, सात। बुद्ध ने बड़ा मजाक किया है। उन्होंने कहा, सात सौ। यह मजाक किया है, क्योंकि बुद्ध को जरा भी उत्सुकता नहीं है इस तरह की मूढ़ताओं में। लेकिन मजाक भी नहीं समझ पाते लोग! बुद्ध के मानने वाले हैं जो कहते हैं कि नहीं, सात सौ ही होते हैं, इसलिए कहे। मैं तुमसे कहता हूं, सात हजार।

आदमी सत्य से भी झूठ खोज लेता है। इसलिए आदमी भटकता है।'

जो सात कारण मैंने आपको गिनाए उनके प्रति होश साधना, जागरण घटित हो सकता है, बुद्धपुरुषों की मेहनत सफल हो सकती है।

दूसरा एवं आज का अंतिम प्रश्न– मोहाली पंजाब से स्वामी अमृत कीर्ति जी पूछते हैं आपकी प्रवचन माला के शीर्षक से कुछ अपने ही मित्र नाराजगी प्रकट कर रहे हैं। वे कहते हैं कि ओशो ने स्वयं अपनी दृष्टि से 650 किताबों में समझाया है, आपको समझाने की जरूरत क्या है?

ओशो की एक किताब है 'कृष्ण मेरी दृष्टि में', दूसरी किताब है 'महावीर मेरी दृष्टि में', तुमने ओशो से क्यों नहीं पूछा कि कृष्ण अपनी बात खुद विस्तार से 18 अध्यायों में कह गए हैं, ओशो को समझाने की जरूरत क्या थी और महावीर तो अपनी बात अति विस्तार से कह गए हैं फिर ओशो को समझाने की जरूरत क्या थी, मुझपर ही ऐसा नियम क्यों लागू कर रहे हो? फिर तुम्हारा वही रवैया, वही तर्क नहीं जागने का। न तुम ओशो की बात सुनकर जागे, न तुम महावीर और कृष्ण की बात सुनकर जागे और न ही तुम मेरी बात सुनकर जागोगे। नहीं, किसी जरूरत की वजह से नहीं समझा रहा हूं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, ये आनंद अतिरेक है। तुम किसी फूल से नहीं कहते कि सुगंध क्यों उड़ा रहे हो, तुम किसी झरने से नहीं कहते कि पानी क्यों बहा रहे हो? पहाड़ में बहुत पानी है इसलिए झरना बह रहा है। यह कोई आवश्यकता नहीं है, न ही झरना किसी को पानी पिलाने के लिए बह रहा है। यह ओवर फ्लोइंग एनर्जी है, बस ऐसा ही समझना। यह आनंद है, यह मौज है, यह मस्ती है, अपने गुरु के गुणगान करना, उनके वचनों को फिर-फिर दोहराना, उनकी बात को लोगों तक पहुंचाना इसमें मजा है और मस्ती है। पहुंचेगी कि नहीं पहुंचेगी इसकी फिक्र कौन करता है।

कबीर साहब ने कहा है-

अगर सारी धरती को कागज बना दूं, दुनिया के सारे वृक्षों को कलम बना दूं, और सारे महासागरों की स्याही बना दूं तो भी जमीन छोटी पड़ जाएगी लेकिन गुरु के गुणगान न लिख पाऊंगा।

हर शिष्य की मस्ती मौज और आनंद होता है कि वह अपने गुरु की बात कहे। फिर-फिर जगाने की कोशिश करे, भली-भांति जानते हुए कि यह काम दुष्पूर है, लोग जागने को तैयार नहीं हैं। निश्चित रूप से जो लोग मुझसे नाराज हो रहे हैं उनकी नाराजगी स्पष्ट प्रमाण है कि वे जागने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्होंने फिर तर्क खोज लिया कि ओशो तो अपनी बात कह गए, अब मुझे कहने की क्या जरूरत है। न तुमने ओशो की सुनी और अब न तुम मेरी सुन रहे हो।

जहां वालों का क्या है, वो तो दीवाना समझते हैं,
कुछ अक्लमंद अपने भी, मुझे बेगाना समझते हैं।

दूसरे लोग तो दूसरा समझें समझ में आता है लेकिन जो अपने लोग हैं, जो गुरुभाई, गुरुबहन हैं, वे भी बेगाना समझते हैं।

जहां वालों का क्या है वो तो दीवाना समझते हैं,
कुछ अक्लमंद अपने भी, मुझे बेगाना समझते हैं।
अजब अंदाज से ये लोग सारे मुझ पे हंसते हैं,
जो सच्ची बात कहता हूं तो अफसाना समझते हैं।
बहारे-जाविदां इसमें, जमाले-दोजहां इसमें,
मेरी दुनिया को फिर भी लोग सपना समझते हैं।
तुम्हारी मौज है समझो हमें अपना या न समझो,

ओशो के हर दीवाने को हम अपना समझते हैं।

बहारें जाविदां, शाश्वत बसंत, सनातन बसंत है इसमें। बहारें जाविदां इसमें, जमाले दो जहां इसमें, लोक–परलोक दोनों का सौंदर्य इसमें समाहित है। मैं जो कह रहा हूं फिर भी लोग इसको एक सपना समझते हैं। और वे अपने सपनों की दुनिया को सत्य समझते हैं, बड़ा मजा है। सपनों को सच समझने वाला व्यक्ति सत्य को सपना समझेगा।

बहारें जाविदां इसमें, जमाले दो जहां इसमें,
मेरी दुनिया को फिर भी लोग सपना समझते हैं।
तुम्हारी मौज है समझो हमें अपना या न समझो,
ओशो के हर दीवाने को हम तो अपना समझते हैं।

तुम न समझो अपना मुझे कोई बात नहीं, मैं तो तुम्हें अपना समझता हूं और मैं तो जगाने की कोशिश जारी रखूंगा, तुम जागो या न जागो, तुम्हारी मौज। मेरी मौज है, मैं तुम्हें झकझोरता रहूंगा, हिलाता रहूंगा, शायद जाग जाओ... इस आशा में मैं अपनी आशा छोड़ूंगा नहीं। आगे भी लोग आते रहेंगे इसी आशा से जगाते रहेंगे, भली–भांति अतीत की पूरी कहानी जानते हुए कि लोग जागते नहीं। वे सपने नहीं, नींद में हैं बेचारे, उनकी भी मजबूरी नहीं, वे दया के पात्र हैं। स्वामी अमृत कीर्ति उन लोगों पर नाराज न होना जो मुझ पर नाराज हो रहे हैं, उनकी मजबूरी समझो, वे गहन अहंकार की नींद में हैं, गहरे सपनों में सोए हुए हैं, उनके प्रति करुणा का भाव रखना।

अध्याय–10

गुरु बिन होय न ज्ञान

आज का पहला प्रश्न है जयेश मुखर्जी जी का कोलकाता से, कहते हैं कि गुरु बिन होय न प्रभु का ज्ञान, मुझे समझ में नहीं आता कि बीच में गुरु की क्या जरूरत है? सर्वशक्तिमान प्रभु सीधे ही हमें ज्ञान क्यों नहीं दे देता?

जयेश मुखर्जी, अगर प्रभु तुम्हें सीधा ज्ञान दे सकता होता तो दे ही चुका होता। नहीं दिया है इससे स्पष्ट है कि नहीं दे सकता। संत कबीर साहब ने कहा है–

तीन लोक नौ खण्ड में गुरु से बड़ा न कोय,
कर्ता करे न कर सके, गुरु करे सो होय।

वह सर्वशक्तिमान नहीं है, ओमनीपोटेंट नहीं है, एक काम वह नहीं कर सकता, परमात्मा स्वयं परमात्मा का ज्ञान हमें नहीं दे सकता, गुरु ही वह कार्य कर सकता है। इसलिए जयेश मुखर्जी, इस भ्रम में नहीं रहना कि तुम्हें सीधा ज्ञान मिल जाएगा, बिना गुरु के हरि का ज्ञान नहीं हो सकता। यह कहावत ठीक ही है कि गुरु बिन होय न ज्ञान।

मुझे याद आता है बचपन में जब हम पढ़ते थे तो कुछ मित्र होली का चंदा मांगने के लिए निकले थे। सभी प्राइमरी स्कूल के बच्चे थे, एक मुखर्जी बाबू हमारे मोहल्ले में रहते थे। उनके यहां जब चंदा मांगने गए तो उन्होंने खुशी–खुशी पचास रुपए दिए। लेकिन जिस बच्चे ने उन्हें पचास रुपए की रसीद काटकर दी उसने स्पेलिंग मिस्टेक कर दी। मुखर्जी की जगह उसने

मूरख जी लिख दिया। मुखर्जी बाबू बहुत नाराज हुए और पचास रुपए वापस ले लिए। जयेश मुखर्जी, मैं संकोचवश कह नहीं रहा हूं लेकिन हो तुम भी वही। परमात्मा सर्वशक्तिमान नहीं है, एक काम वह नहीं कर सकता, मूरख जी को मुखर्जी नहीं बना सकता। परमात्मा बड़ा शरीफ है, बड़ा सज्जन है, गुरु थोड़ा दुष्ट किस्म का होता है। वह लोगों को परिवर्तित करता है, बदलता है, सिखाता है। परमात्मा नहीं सिखाता।

मैं पढ़ रहा था शरीफ आदमी की परिभाषा, शरीफ आदमी वह है जो हारमोनियम बजाना जानता है किंतु बजाता नहीं। श्रेष्ठ कवि वह है जो कविता तो लिखता है मगर सुनाता नहीं, अच्छा गायक वह है जो गा सकता है मगर चुप रहता है और अच्छा वक्ता वह है जो घंटों बोल सकता है मगर मौन साधे रहता है और सज्जन पुरुष वह है जो सलाह तो दे सकता है किन्तु देता नहीं, असली धनवान वही है जो अपने धन को उछालता नहीं फिरता और वास्तविक पहलवान वही है जो अपनी ताकत का प्रदर्शन नहीं करता। वह सर्वशक्तिमान प्रभु अपनी ताकत का प्रदर्शन नहीं करेगा। वह बहुत शरीफ है, सद्गुरु इतना शरीफ नहीं होता। इसलिए सद्गुरु वह गुह्य ज्ञान देता है और परमात्मा के ओंकार स्वरूप से लोगों का परिचय कराता है। इसलिए गुरु की जरूरत है, थी और रहेगी।

दूसरा प्रश्न है प्रशांत रस्तोगी जी का हैदराबाद से, यह सोचकर कि अशुभ से लड़ने के लिए हिंसा अनिवार्य है मैं दर्जनों केस–मुकदमों में फंस गया हूं, मैं जानता हूं कि इस प्रक्रिया के दौरान मुझमें भी अनेक बुराइयां पनप गई हैं, खुद अपनी जीवनशैली से थक गया हूं। प्रायः सोचता हूं कि सज्जनता और साधुता की जिंदगी जिऊं किन्तु परिस्थितियां अनुमति नहीं देती हैं। हे प्रभु, मेरे लिए बस एक बात ऐसी कह दें कि मैं इस जंजाल से छलांग लगा सकूं?

प्रशांत रस्तोगी, गौर से सुनना वह एक बात... वह एक बात है मृत्यु। काश तुम्हें मृत्यु का स्मरण आ जाए कि एक दिन तुम मरोगे, फिर जीवन के सारे उपद्रव समाप्त हो जाएंगे, तब तुम्हारा नाम प्रशांत वास्तव में सार्थक हो सकेगा, तब तुम्हारे जीवन में शांति आ सकेगी।

मैंने सुना है महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत एकनाथ के बारे में, एक युवक रहा होगा तुम्हारी ही तरह प्रशांत... बार–बार एकनाथ के पास आता था और पूछता था कि मैं भी आपके समान ही पुण्य से भरा जीवन जीना चाहता हूं, सद्भाव से भरा, मंगलभाव से भरा किन्तु मैं क्या करूं? मैं बहुत ही दुर्भावनाओं से ग्रस्त हूं, हिंसक प्रवृत्ति का हूं, दर्जनों केस–मुकदमे चला रखे हैं मैंने, बड़ा लड़ाई–झगड़ा है सबसे। एकनाथ उसे बारंबार समझाते किन्तु वह कहता कि बात कुछ जमती नहीं, मेरे भीतर का बैरभाव छूटता ही नहीं। कई बार जब ऐसा हो चुका तब एक दिन एकनाथ ने एक छोटी सी तरकीब निकाली। उन्होंने कहा कि अरे! आज संयोग से मेरा ध्यान तुम्हारी हथेली पर गया, मैं देख रहा हूं कि तुम्हारी आयु की हस्तरेखा कट गई है, दिखाना जरा हाथ। गौर से देखा उसका हाथ और कहा कि आज रात को तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी, सूरज ढलने के साथ तुम भी विदा हो जाओगे। वह युवक उठकर घर जाने लगा। एकनाथ ने कहा कि कहां चले, आज तुमने वह सवाल नहीं पूछा जो रोज पूछते हो कि कैसे शांति हो, कैसे जीवन में प्रेम आए, कैसे सद्भाव आए? उस युवक ने कहा कि अब क्या ख़ाक

पूछना, आज आख़िरी दिन है। वह अपने घर पहुंचा और बिस्तर पर लेट गया, घर वालों को बताया तो घर वाले रोने लगे, मोहल्ले परिवार के सभी लोग उदास हो गए कि आज आख़िरी दिन है। शाम को सूरज ढलने के पहले संत एकनाथ उसके घर पहुंचे और उससे पूछा कि बता मेरे भाई कि क्या आज दिन भर तेरे मन में कोई दुर्भावनाएं आईं, किसी से लड़ाई-झगड़ा किया? वह युवक कहने लगा कि आप कैसी बात करते हैं! जब मर ही जाना है तो क्या लड़ाई-झगड़ा करना! मैंने तो उल्टा किया, जिनसे मेरे लड़ाई झगड़े थे वे भी मैंने समाप्त कर दिए, जिनसे दुश्मनी थी क्षमा मांग ली, केस-मुकदमे मैंने वापस कर लिए, भाइयों से जमीन-जायदाद के बारे में झगड़ा था तो उनसे मैंने कहा कि अब तो मैं जा रहा हूं अब तुम्हें जो करना हो करो, अब मेरी कौन सी जमीन मैं तो खुद ही जमीन में मिल जाऊंगा। एकनाथ ने कहा उठ कर बैठ, आज तेरी मृत्यु नहीं है, यह तो एक तरकीब थी तुझे समझाने की। अब बस इसी भाव में जी। तू मुझसे बार-बार पूछता है कि मैं कैसे इतना शांत और पुण्य से भरा जीवन जीता हूं... क्योंकि मैं सदा अपनी मृत्यु के स्मरण से जीता हूं। क्या फर्क पड़ता है आज मृत्यु आएगी कि चार दिन बाद कि चालीस दिन बाद, किसी दिन तो आ ही जाएगी। ये लड़ाई-झगड़े और झंझट इसलिए हैं क्योंकि हम इस मूर्च्छा में जीते हैं कि हमें यहां सदा-सदा रहना है, काश हमें अपनी मौत की याद आ जाए। भगवान बुद्ध की वाणी 'धम्मपद' पर प्रवचन देते हुए परमगुरु ओशो ने समझाया-

'हम इस संसार में नहीं रहेंगे, सामान्यजन यह नहीं जानते। और जो इसे जानते हैं, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।

बड़ी थोड़ी देर का बसेरा है, रैन बसेरा! सुबह हुई और चल पड़ेंगे यात्री। यह कारवां यहीं ठहरा न रहेगा। ये तंबू हैं, जिनको तुमने घर समझा है। ये अभी-अभी लगाए हैं, अभी-अभी उखाड़ने का वक्त आ जाएगा। और कितने कारवां तुमसे पहले निकल चुके हैं। उनके पदचिह्न भी नहीं रह गए। खो गए हैं बिल्कुल। दूर उनके पैरों की, घुड़सवारों की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती। सिकंदर की फौजों की उड़ती धूल भी अब दिखायी नहीं पड़ती।

यहां क्षणभर हम हैं। हम जैसे बहुत लोग पहले थे। वैज्ञानिक कहते हैं कि एक-एक आदमी के नीचे कम से कम दस-दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। तुम जहां बैठे हो वहां दस आदमी मर चुके हैं। हर आदमी मरघट पर बैठा है, लाशों के ढेर पर बैठा है। कितनी देर तुम जिंदा रहोगे? थोड़ी देर। जल्दी ही तुम भी ग्यारहवीं लाश बन जाओगे और बारहवां आदमी तुम्हारे ऊपर बैठा होगा। कारवां की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती, कारवां खुद ही धूल हो गए।

इस संसार में सदा नहीं रहेंगे... ऐसा जिसे समझ में आ गया, उसी को इस संसार में रहने का ढंग आ गया। जिसको समझ में आ गया कि ओस की बूंद है, अब गिरी, तब गिरी; भोर की तरैया है, अब डूबी, तब डूबी। क्षणभर का खेल है। फिर क्या चिंता है? फिर किसको दुख देना है, किसको पीड़ा देनी है, किससे शत्रुता लेनी है? शत्रुता हम ले पाते हैं इसी आधार पर कि जैसे सदा रहना है।

तुम थोड़ा सोचो, अगर इसी वक्त खबर आ जाए कि आज सांझ तुम्हारी मौत हो जाएगी... पक्की खबर आ जाए... क्या तुम अपने दुश्मनों से क्षमा नहीं मांग आओगे? क्या तुम उनसे जिनको मिटाने को तत्पर थे, क्षमायाचना नहीं कर लोगे? क्या बैर समाप्त नहीं हो जाएगा? जाते आदमी का क्या, कौन सा बैर! किससे शत्रुता! कैसी शत्रुता! जब विदा होने का क्षण आ जाएगा, तुम सभी से क्षमा मांग लोगे। लेकिन पक्का नहीं कि वह क्षण कब आएगा। अभी भी आ सकता है। लेकिन एक बात पक्की है कि कभी न कभी आएगा। ज्यादा देर नहीं है। जब कली खिल गयी, तो फूल के कुम्हलाने में ज्यादा समय नहीं है। सुबह हो गयी, सूरज चढ़ आया– सांझ को कितनी देर है? प्रतिपल सांझ हुई जाती है। सुबह के साथ ही सांझ हो गयी।

जिसको ऐसा दिखायी पड़ जाता है, वह फिर इस जगत में बैर के बीज नहीं बोता। फिर वह कल्याणमित्र हो जाता है। फिर वह मैत्री बोता है। वह अपने चारों तरफ स्वर्ग की फसल काटता है।

हम इस संसार में नहीं रहेंगे, समान्यजन यह नहीं जानते हैं।

ऐसे जीते हैं जैसे सदा यहां रहना है। उसी से सारी भूल हो जाती है।

और जो इसे जानते हैं, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।

क्षणभंगुर है जीवन। आंख झपी, क्षणभंगुर है जीवन। इस पर बहुत भरोसा मत कर लेना। इस पर तुमने जितना ज्यादा भरोसा किया, उतने ही भटक जाओगे। इसमें सो मत जाना। इसमें खो मत जाना। जागे रहना।

तीसरा सवाल– दिल्ली से पिंकी पूछती हैं कि मेरी मौसी ने समाधि शिविर करके मुझे बताया कि वे भारहीनता अनुभव करती हैं एवं निरंतर एक ध्वनि सुनती हैं। कोई आवाज सदा कैसे हो सकती है? मैं एम.एस.सी. फिज़िक्स की छात्रा यह मान ही नहीं सकती। सिद्ध करके बताएं कि गुरुत्वाकर्षण के विपरीत निर्भारता कैसे हो सकती है?

तुम विज्ञान की छात्रा हो, कम से कम एक बात तो समझो कि बिना प्रयोग किए किसी निष्कर्ष पर न पहुंचो। अभी तुमने तो समाधि शिविर किया ही नहीं, तुम कैसे कह सकती हो कि निर्भारता नहीं हो सकती! प्रयोग करो, उसके बाद निर्णय पर पहुंचना। अभी तुम कैसे कह सकती हो कि कोई ध्वनि निरंतर नहीं हो सकती। आओ छः दिन के लिए समाधि शिविर करो, अगर तुम भी उस ध्वनि को सुनने लगो तब तुमने उस ध्वनि को जान लिया, मानने की कोई जरूरत नहीं। अगर तुम न सुन पाओ तब निर्णय पर पहुंचना कि निरंतर कोई ध्वनि नहीं हो सकती। संतों ने उसी को अनाहत नाद कहा है। तो मैं तुम्हें आमंत्रण देता हूं, मैं तुम्हें अंधविश्वास नहीं देता, मैं नहीं कहता कि तुम अपनी मौसी जी की बात मानो या मेरी बात मानो या किसी की भी बात मानो। कुछ भी मानने की जरूरत नहीं है।

परमगुरु ओशो ने जो शिक्षा हमें दी है वह बहुत वैज्ञानिक दृष्टिकोण की है। संदेह सहित तुम्हारा स्वागत है, आओ। बल्कि मुझे तो खुशी होती है जब कोई वैज्ञानिक चित्त के लोग,

संदेहशील लोग मेरे पास आते हैं। प्रयोग करो। जब कोई व्यक्ति सत्य की बात कहता है, सत्य को समझाता है, सत्य के प्रयोग कराता है तब वह प्रयोग से नहीं डरता। जो गुरु तुम्हारे संदेहों से, प्रश्नों से डरते हैं, जानना कि वे गुरु ही नहीं हैं। उन्हें खुद ही अपनी बात पर भरोसा नहीं है क्योंकि शायद उन्होंने स्वयं सत्य को नहीं जाना है। सत्य किसी संदेह से नहीं डरता, सत्य संदेह की अग्नि से गुजर जाता है, उस अग्नि-परीक्षा से वह और भी सुंदर, खूबसूरत और निखर कर आता है।

तुम्हारा स्वागत है, आओ। फिर तुम स्वयं जानोगी कि यह ध्वनि संभव है, तुम खुद सुन सकोगी। मैं कोई लंबी साधना करने के लिए नहीं कह रहा हूं, सिर्फ छः दिन के लिए तुम्हें बुला रहा हूं, छः दिन कुछ भी नहीं। पुराने जमाने में लोग नब्बे-नब्बे साल साधना किया करते थे तब भी उस ओंकार रूपी ब्रह्म को नहीं जान पाते थे। परमगुरु ओशो की कृपा से सारी सुख-सुविधाओं में रहते हुए, बिना कोई त्याग किए, बिना संसार परिवार से भागे, इस एयर कंडीशंड ओशो मंदिर में बैठकर तुम भी उस निरंतर ध्वनि को सुन सकोगी जिसके लिए कबीर साहब कहते हैं-

शबद निरंतर से मन लागा मलिन वासना त्यागी,
उठत बैठत कबहूं न छूटे ऐसी ताड़ी लागी,
साधो सहज समाधि भली।

पिंकी, आओ और उस समाधि में डूबो। तुम्हारे भीतर भी वह नाद गूंज रहा है। और एक अद्भुत घटना घटेगी.. जैसे-जैसे उस नाद से तुम्हारा तादात्म्य बनता जाएगा वैसे-वैसे तुम्हें भारहीनता का एहसास होगा। अभी पिछली सदी में सोवियत रूस में एक अद्भुत नर्तक हुआ। उसका नाम था निझिंसकी। कभी-कभी नाचते-नाचते वह छलांग लगाता था, बड़ी ऊंची छलांग जो कि मानवीय रूप से संभव नहीं थी। और उससे भी अद्भुत घटना... जब वह ऊपर से नीचे उतरता था तो फिज़िक्स का नियम उस पर लागू नहीं होता था।

सामान्य नियम है कि कोई भी चीज ऊपर से नीचे गिरेगी, लगभग बत्तीस फुट प्रति सेकेंड की गति से, और हर एक सेकेंड के बाद उसकी गति बत्तीस फुट प्रति सेकेंड बढ़ती जाएगी। लेकिन निझिंसकी यूं नीचे उतरता था जैसे हवा में लहराता हुआ कोई सूखा पत्ता नीचे उतर रहा हो। बड़ा चमत्कार लगता था और चूंकि सोवियत रूस में वह पैदा हुआ था, वैज्ञानिकों ने बड़े परीक्षण किए लेकिन किसी निष्कर्ष पर न पहुंच सके कि ये कैसे होता है। वे निझिंसकी से पूछते कि तुम क्या करते हो? वह कहता कि मैं कुछ भी नहीं करता हूं, सच पूछो तो जब मैं होता ही नहीं, मैं कुछ करता ही नहीं तब यह घटना घटती है। नाचते हुए जब वह ओंकार में डूब जाता था, निराकार में लीन हो जाता था, तब यह सुंदर घटना घटती थी।

निर्भारता का एहसास तो प्रत्येक समाधि के साधक को हो जाता है, यदा-कदा ऐसी विचित्र घटना भी घटती है कि सचमुच में स्थूल शरीर का वजन समाप्त हो जाता है, समाप्त अगर नहीं होता तो कम तो हो ही जाता है... थोड़ी देर के लिए ही सही। तुम इसकी जांच-परख कर सकती हो, स्वयं इस अनुभव से गुजर सकती हो। क्योंकि उस नाद का,

उस ओंकार का, उस निरंतर ध्वनि का कोई वेट नहीं है, वेटलेसनेस है वहां पर, शरीर का भार है लेकिन ओंकार का भार नहीं है, वह बिल्कुल निर्भार है। चूंकि हमारा देह से तादात्म्य बन गया है इसलिए हम अपने आप को भारी समझते हैं। चेतना से तादात्म्य हो जाए तो निर्भारता का एहसास हो जाता है। सुनो यह प्यारा गीत–

किसने छेड़ा मन का तार, किसने छेड़ा मन का तार
आज सुनाई देती है क्यूं मीठी–सी झंकार. . .
छुप के करता कौन इशारे, किसके दो नैना मतवारे
देख रहे मुझको छिप–छिप कर, भरा नजर में प्यार. . .
बाज उठी जब पायल छम–छम, मन ने ली अंगड़ाई उस दम
घुंघरू के उस रुनझुन सुर में झूम उठा संसार. . .
गूंज रहे अब मेरे मन में, मस्ती भरे रसीले नग्मे
उड़ता जैसे मुक्त गगन में, पंछी कोई निर्भार. . .
किसने छेड़ा मन का तार, किसने छेड़ा मन का तार, आज सुनाई...
हरि ने छेड़ा हृदय सितार, प्रभु ने छेड़ा मन का तार,
गूंज रही इक ध्वनि निरंतर, यही तो है ओंकार, सब धर्मों का सार।

उड़ता जैसे मुक्त गगन में... ठीक ऐसी ही अवस्था समाधि साधक की हो जाती है। ये गीत तो किसी साधारण गीतकार ने लिखा है, अपने प्रेमपात्र के बारे में लिखा है। जरा सोचो कि जब परमात्मा के परम प्रेम में तुम डूबोगी तो क्या होगा।तब तुम कहोगी प्रभु ने छेड़ा मन का तार, हरि ने छेड़ा हृदय सितार, गूंज रही एक ध्वनि निरंतर, यही तो है ओंकार। यही तो है ओंकार, सब धर्मों का सार। उस ओंकार में डूबने के लिए तुम्हें निमंत्रित करता हूं, अपनी वैज्ञानिक दृष्टि सहित आओ। तुम्हारा स्वागत है।

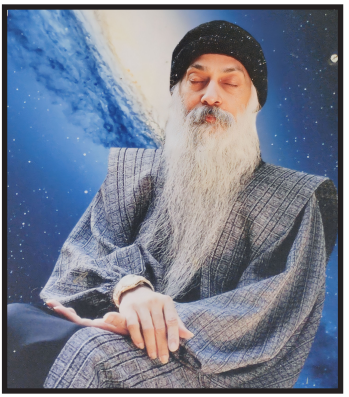

अध्याय–11

श्रेष्ठ आत्माओं का जन्म

प्रणाम प्रभुजी। आज का पहला प्रश्न पूछा है शिवपुरा हरियाणा से स्वामी रामनारायण ने, परमगुरु ओशो कहते हैं कि श्रेष्ठ आत्माओं से ही श्रेष्ठ आत्माओं का जन्म होता है। फिर अतीत के अवतारों, तीर्थंकरों, बुद्धपुरुषों और पैगम्बरों की संतान प्रतिभाशाली पैदा क्यों नहीं हुई? जेनेटिक्स के हिसाब से भी ऐसा ही होना चाहिए था।

इस बात को थोड़ी गहराई से समझना, पीपल के वृक्ष के नीचे पीपल का वृक्ष पैदा नहीं होता और बरगद के नीचे बरगद नहीं पनप सकता। राम और कृष्ण इतनी बड़ी ऊंचाइयां हैं कि उनके पुत्र उनके सम्मुख बौने लगेंगे। यद्यपि बौने हैं नहीं, सामान्यजन से वे भी बहुत ऊंचे हैं। जैसे आल्प्स पर्वत बहुत ऊंचा है, विंध्याचल और सतपुड़ा बहुत ऊंचे हैं किन्तु एवरेस्ट के सामने तो छोटे हो जाएंगे और फीके हो जाएंगे। ठीक इसी प्रकार लव और कुश, भगवान राम की संतान, कोई कम प्रतिभाशाली नहीं थे, किन्तु राम के सम्मुख वे फीके पड़ जाएंगे। ठीक इसी प्रकार गौतम बुद्ध की इकलौती संतान राहुल उनसे कम प्रतिभाशाली न था, वह भी जीनियस था, उतना ही महान जितना कि गौतम बुद्ध, किन्तु गौतम बुद्ध इतनी बड़ी छाप छोड़ गए कि उसके सामने राहुल फीका पड़ जाएगा। रिलेटिविटी के सिद्धांत को समझना, चीजें सापेक्ष हैं। और जब हम इतिहास पर पीछे नजर फेरते हैं तो जो लोग पहले आए और जिन्होंने

बहुत बड़ा बैकग्राउंड और पृष्ठभूमि निर्मित कर दी, उनके बाद आने वाले लोग उनके सामने फीके नजर आएंगे, यद्यपि वे फीके हैं नहीं।

अगला प्रश्न है उल्हासनगर महाराष्ट्र के स्वामी अमृत आनंद का। भारत में ज्ञानीजन बारंबार पुराने ग्रंथों पर टीका क्यों करते हैं। क्रांतिकारी सद्गुरु कहलाने वाले ओशो ने भी इस परंपरा को क्यों निभाया?

मैं मेडिकल कॉलेज में पढ़ता था। प्रथम वर्ष में एनाटॉमी विषय होता है। उसकी पहली ही किताब जो मैंने देखी वह थी ग्रे की एनाटॉमी। बहुत मोटी किताब थी वह, कोई चार-पांच किलो वजन की। मैंने उसकी हिस्ट्री देखी, डॉक्टर ग्रे हुए करीब पौने दो सौ साल पहले। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह किताब जो ग्रे के नाम से चल रही है इसके कितने संस्करण निकल चुके इन डेढ़ दो सौ सालों में। नई-नई बातें जुड़तीं चली गईं, नए-नए अर्थ जुड़ते चले गए। बहुत सी पुरानी बातें हटा दी गईं, नई-नई खोजें जो हुईं उससे पुराना ज्ञान जो गलत सिद्ध हो गया उसे निकाल दिया गया, जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ वह जोड़ दिया गया, लेकिन नाम ग्रे का ही चल रहा है। उसमें कंट्रीब्यूटर्स की लिस्ट पढ़ो तो अभी लेटेस्ट एडीशन में कोई तीन सौ से ज्यादा डॉक्टरों के नाम मिलेंगे और पिछले डेढ़ सौ सालों में कितने डॉक्टरों ने उसमें योगदान दिया होगा सोचो?

अभी थोड़े दिन पहले मैंने मेडिसिन की एक किताब निकाली, मर्क मैनुअल नाम है उसका। सौ साल हो गए उस किताब को प्रकाशित होते-होते तो इस साल प्रकाशक ने गिफ्ट में फर्स्ट एडीशन की एक कॉपी भी साथ में दी है। मैं देखकर हैरान हुआ कि इस मोटी सी किताब के साथ एक छोटी सी पुस्तिका उसका फर्स्ट एडीशन है। मैं मिला रहा था उसमें आज से सौ साल पहले कितनी दवाइयां थीं जो आज भी चल रही हैं। आपको जानकर हैरानी होगी कि हजारों-हजारों दवाइयों में से केवल दो दवाइयां एस्प्रिन और डिजॉक्सिन आज भी चल रही हैं। बाकी सारी दवाएं समाप्त हो गईं लेकिन किताब का नाम वही है मर्क मैनुअल। जिस व्यक्ति ने शुरुआत की थी उसके प्रति सम्मान का भाव है, यद्यपि हजारों लोगों ने इस किताब में योगदान दिया है। ठीक इसी प्रकार हमारे देश में एक परंपरा रही है प्राचीन ग्रंथों की पुनः-पुनः व्याख्या की जाए। भाषा पुरानी पड़ जाती है, शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं, युग के साथ फिर नए अर्थ की जरूरत पड़ती है। सुनो इस संबंध में ओशो की अमृत वाणी-

कृष्ण ने जो कहा था, अगर और कृष्णों ने उस पर बार-बार नए अर्थों के कलम न लगाए होते, तो वह अर्थहीन हो गई होती; बासी पड़ गई होती; सड़ गई होती; उसे समझने का फिर कोई उपाय न रह जाता। लेकिन इन हजारों वर्षों में, और बहुत कृष्णों ने गीता को फिर-फिर पुनर्जीवित किया, फिर-फिर कहा। हर बार गीता को फिर नया जीवन मिल गया। जब शंकर ने गीता को पुनर्जीवित किया, तब कृष्ण दुबारा बोले।

कृष्ण कोई व्यक्ति की बात नहीं है; कृष्ण तो चैतन्य की एक घड़ी है, चैतन्य की एक दशा है, परम भाव है। जब भी कोई व्यक्ति परम भाव को उपलब्ध हुआ, उसने फिर गीता पर कुछ कहा। गीता से पुरानी राख झड़ गई, फिर गीता नया अंगारा हो गई।

ऐसे हमने गीता को जीवित रखा है। समय बदलता गया, शब्दों के अर्थ बदलते गए, लेकिन गीता को हम नया जीवन देते चले गए। गीता आज भी जिंदा है।

कुरान कभी मर जाएगा, क्योंकि कुरान पर व्याख्या की आज्ञा नहीं है। गीता कभी भी न मरेगी, क्योंकि गीता को फिर से जीवन देने की सुविधा है। कुरान, जैसा मोहम्मद ने कहा था, उसे वैसा ही बचाने की चेष्टा की गई है। उस पर कोई दूसरा मोहम्मद कुछ जोड़ न दे, कुछ बदल न दे!

भारत ने अपने शास्त्रों को सदा जीवित रखने की एक कला खोज ली है। वह है, उनकी पुनः-पुनः व्याख्या। फिर-फिर हम विचार करते हैं। फिर-फिर कृष्ण की चेतना से उत्तर मिल जाता है। अर्थ बदलते जाते हैं, लेकिन गीता अर्थहीन नहीं हो पाती। हर युग के अनुकूल अर्थ हम फिर खोज लेते हैं। गीता युग से जितना पीछे रह जाती है, हम उसे फिर खींच लेते हैं।

जो मैंने गीता पर इधर इन पांच वर्षों में कहा है, उससे गीता अत्याधुनिक हो जाती है; बीसवीं सदी की घटना हो जाती है। अब पिछले पांच हजार साल को हम भूल सकते हैं। जो मैंने कहा है, उसने गीता के पुराने पड़ते रूप को एकदम अत्याधुनिक कर दिया। इन पांच हजार सालों में जो भी घटा है, मनुष्य की चेतना ने जो नई-नई करवटें ली हैं, नई-नई विधाएं खोजी हैं, मनुष्य की चेतना ने जो नए अनुभव किए हैं, उन सबको मैंने समाविष्ट कर दिया है। अब गीता को नया खून मिल गया।

शब्दों पर अगर अर्थों की कलम लगती चली जाए, युग के अनुकूल अगर नए अर्थों की अभिव्यंजना होती रहे, तो किसी शास्त्र को पुराना पड़ने की जरूरत नहीं है। शास्त्र पुराना पड़ता है मतांधता से; अगर लोग लकीर के फकीर हो जाते हैं, तो शास्त्र पुराना पड़ जाता है।

हम शास्त्र के लिए थोड़े ही हैं, शास्त्र हमारे लिए है। इसलिए जब हम बदल जाते हैं, हम शास्त्र को बदल लेते हैं। ऐसे ही जैसे कि हजारों साल पहले घर में दीया जलता था, अब बिजली जलती है। अब भी तुम दीया जलाने की कोशिश करोगे, तो नासमझ हो। लेकिन दीया जलने से जो प्रकाश मिलता था, वही प्रकाश और भी प्रगाढ़ होकर बिजली से मिल जाता है।

जो शब्द कृष्ण ने अर्जुन से कहे थे, उनपर तो बहुत धूल जम गई है, उसे हमें रोज बुहारना पड़ता है। और जितनी पुरानी चीज हो, उतना ही श्रम करना पड़ता है, ताकि वह नई बनी रहे।

इसलिए समय का प्रवाह तो किसी को भी माफ नहीं करता, पर अगर हम पुराने शास्त्र को हमेशा समय के करीब खींच लाएं, तो शास्त्र पुनः-पुनः नया हो जाता है। उसमें फिर नए अर्थ जीवित हो उठते हैं, नए पत्ते लग जाते हैं, नए फूल खिलने लगते हैं।

गीता मरेगी नहीं, क्योंकि हम किसी एक कृष्ण से बंधे नहीं हैं। हमारी धारणा में कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं है, सतत आवर्तित होने वाली चेतना की परम घटना है। इसलिए कृष्ण कह पाते हैं कि जब-जब होगा अंधेरा, होगी धर्म की ग्लानि, तब-तब मैं वापस आ जाऊंगा... संभवामि युगे-युगे। हर युग में वापस आ जाऊंगा।

तुम यह मत सोचना कि मोर–मुकुट वाले कृष्ण हर युग में वापस आ जाएंगे। जो गया, वह गया। अब मोर–मुकुट की कोई संगति न बैठेगी। और मोर–मुकट लगाए अगर कृष्ण को तुमने खड़ा कर दिया बाजार में, तो तुम उनका माखौल उड़वा दोगे; तुम उनका मजाक करवा दोगे। वे नाटकीय मालूम पड़ेंगे, स्वाभाविक न मालूम पड़ेंगे अब। जो उस दिन स्वाभाविक था, आज बिल्कुल नाटक हो जाएगा।

उन दिनों कृष्ण के समय में, पुरुष आभूषण पहनते थे, स्त्रियां नहीं। वह स्वाभाविक था, ज्यादा प्राकृतिक था। प्रकृति में भी तुम जाओ, तो वहीं पाओगे।

मोर नाचता है। जो मोर नाचता है और जिस मोर के पास इंद्रधनुष जैसे रंगे हुए पंख हैं, वह पुरुष है। मादा के पास कोई इंद्रधनुषी रंग नहीं है। कोयल पुकारती है। वह कोयल जो पुकारती है, वह पुरुष है; मादा चुप है। मुर्गे की कलगी देखी है! और जिस शान से वह अकड़कर चलता है! मुर्गी के पास वैसी कलगी नहीं है।

सारी प्रकृति में मादा चुप है, अपने सौंदर्य का प्रचार नहीं करती; पुरुष करता है। होना भी यही चाहिए। क्योंकि मादा के होने में ही सौंदर्य है, कुछ अतिरिक्त होने की जरूरत नहीं है। मादा के होने में ही माधुर्य है, अब और आभूषण नहीं चाहिए। जो कमी है, वह पुरुष को पूरी करनी पड़ती है।

मादा कोयल का तो चुप होना ही मधुर है; लेकिन पुरुष कोयल को गीत गाना पड़ेगा, तभी थोड़ा सा माधुर्य आ सकेगा। इसलिए प्रकृति में खोजने पर तुम पाओगे कि पुरुष सजा–धजा है, मादा बिल्कुल सादी है। उसका सादा होना ही सौंदर्य है।

उन पुराने दिनों में मनुष्य भी प्रकृति के अनुकूल था। तो कृष्ण मोर–मुकुट बांधे खड़े हैं। स्वाभाविक था। आज हालत बिल्कुल उलटी हो गई है। आज पुरुष कोई आभूषण नहीं पहनता; पहने तो तुम समझोगे, कुछ दिमाग खराब है। स्त्रियां पहनती हैं। प्रकृति अस्त–व्यस्त हो गई है। जो नहीं होना चाहिए, वह हो रहा है; जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। सभ्यता ने सब डांवाडोल कर दिया है। शिक्षण ने तुम्हारे मन की स्वाभाविकता को डिगा दिया है।

स्त्री तो अपने आप में सुंदर है, उसे निमंत्रण भी भेजने की जरूरत नहीं है। उसे पुकारने की भी आवश्यकता नहीं है। प्रेमी उसे खोजता आएगा।

और ध्यान रखना, जब भी स्त्री आभूषण सजा लेती है... पुराने दिनों में भी स्त्रियां सजती थीं, लेकिन वे सिर्फ वेश्याएं थीं, नगरवधुएं थीं, जिनको बाजार में खड़ा होना था। स्त्री जब आभूषण से सज जाती है और निमंत्रण भेजती है, तो उसने स्त्रैण तत्व खो दिया। उसने अपने भीतर के मादापन का माधुर्य खो दिया। उसे याद ही न रहा कि उसका तो होना ही काफी है। अब सोने से लदने से उसके सौंदर्य में कुछ बढ़ेगा नहीं, घट सकता है।

तो आज कृष्ण को अगर उनकी ही रूप–रेखा में खड़ा करा दो, जैसे वे थे, तो ठीक है, कोई नौटंकी, कोई नाटक में चलेगा, जीवन में नहीं चलेगा। जीवन में वे बड़े बेतुके लगेंगे। जो उनके इस बाहरी रूप–रेखा के संबंध में सच है, वही उनकी भीतरी रूप–रेखा के संबंध में भी सच है। सब बदला है।

जब कृष्ण बार-बार लौटेंगे, तो हर बार नए ही होकर लौटेंगे। और हर बार कृष्ण अपनी नई-नई संभावनाओं में, उद्भावनाओं में गीता पर फिर से बोल देंगे। गीता फिर पुनर्जीवित हो जाएगी।

अगर तुम्हें बहुत कठिनाई न हो समझने में, तो मैं ऐसा कहना चाहूंगा कि कृष्ण ही बार-बार लौटकर अपनी गीता की पुनः-पुनः व्याख्या करते रहे हैं, इसलिए वह मर नहीं पाई है।

स्वामी अमृत आनंद, एक-दो उदाहरण से और तुम्हें समझाऊं कि शब्दों के अर्थ कैसे बदल जाते हैं। आज जब हम कहते हैं मृग तो हमारा अर्थ होता है हिरण नाम का जानवर, आज से दो हजार साल पहले मृग का अर्थ होता था कोई भी जानवर, सभी जानवरों को मृग कहा जाता था। अर्थ बदल गया। आज हम कहते हैं अछूत शूद्र जाति के लोगों को। क्या आपको पता है पहली बार किसके लिए अछूत प्रयोग किया गया था? परमात्मा के लिए। परमात्मा अदृश्य है, उसे देखा नहीं जा सकता; परमात्मा अश्रव्य है, उसे सुना नहीं जा सकता; परमात्मा अछूत है, उसे छुआ नहीं जा सकता, अर्थात् वह हमारी इंद्रियों के पार है। अब देखो कहां से कहां यात्रा हो गई! कहां ईश्वर के लिए कहा गया था अछूत... जिसे छुआ न जा सके... अगम और अगोचर, और आज शूद्रों के लिए उसका प्रयोग किया जा रहा है। ठीक इसी प्रकार एक शब्द है हरिजन। हरिजन कहा जाता था संतों को, बुद्धपुरुषों को, ज्ञानीजनों को, हरि के लोग, परमात्मा के जन, जो अध्यात्म की बात हमें सिखा रहे हैं उन्हें हरिजन कहा जाता था। महात्मा गांधी ने हरिजन का अर्थ कर दिया शूद्र। समय-समय पर शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं और इसलिए बार-बार नए अर्थ उन्हें देने पड़ते हैं ताकि वह ग्रंथ जीवित रहे।

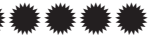

तीसरा प्रश्न– गोपालगंज नेपाल से मां प्रेमलता पूछती हैं, सुदामा के तीन मुट्ठी चावल के बदले कृष्ण उसे त्रिलोक का वैभव दे डालते हैं, इस अतर्कयुक्त दान के बारे में ओशो क्या कहते हैं?

ओशो की एक बहुत अद्भुत किताब है 'कृष्ण मेरी दृष्टि में'। उसका नया संस्करण प्रकाशित हुआ है नए नाम से 'कृष्ण स्मृति'। उसमें ओशो सुदामा और कृष्ण के बीच हुई इस प्रेमपूर्ण घटना की बड़ी ही खूबसूरत व्याख्या करते हैं। ओशो कहते हैं– गरीब आदमी हमेशा मांगने जाता है। आश्चर्य की बात, सुदामा इतना दीन-दरिद्र है लेकिन वह मांगने नहीं गया, वह देने गया है, अपने साथ भेंट लेकर गया है। माना कि उस बेचारे के पास कुछ ज्यादा है नहीं, केवल तीन मुट्ठी चावल छोटी सी पोटली में बांधकर ले गया है, लेकिन गरीब की तरफ से भेंट... यह बात ही अद्भुत है। जैसे बुद्ध और महावीर राजकुमार थे और उनका भिक्षा मांगना अद्भुत और महिमापूर्ण है, ठीक इसी प्रकार सुदामा जैसे दरिद्र का कुछ भेंट ले जाना अद्भुत और अनूठा है। उसके हृदय के प्रेम को समझो, देने को कुछ है नहीं फिर भी सबकुछ दे देना चाहता है। और कृष्ण कहते हैं कि तुम क्या लेकर आए हो, बताओ; और सुदामा छिपाता है। प्रेम हमेशा छिपाना चाहता है। इस कहानी के प्रतीक को समझना। किसी मां से तुम पूछो तो कि तुमने अपने बेटे के लिए क्या-क्या किया? अगर मां ने सचमुच में ही अपने बच्चे को प्रेम किया

है तो वह हमेशा ही कहेगी कि मैं तो कुछ कर ही नहीं पाई, जो मैंने चाहा था वैसा तो कुछ कर ही नहीं पाई, मेरी क्षमता कहां, मेरी योग्यता कहां। किसी नर्स से पूछो कि तुमने इस बालक के लिए क्या–क्या किया? नर्स अपनी पूरी लिस्ट बता देगी कि मैंने कितनी ड्यूटी निभाई है, मैंने कितनी सेवा की है, क्योंकि नर्स को उस बच्चे से प्रेम नहीं, सिर्फ कर्तव्य निभाया है। मां का सचमुच में प्रेम है, मां ने कोई ड्यूटी नहीं निभाई है, वह गिनती नहीं गिना सकती कि क्या–क्या किया है, वह हमेशा कहेगी कि मैंने कुछ भी नहीं किया। मैं तो पता नहीं क्या–क्या करना चाहती थी। सुदामा का वह तीन मुट्ठी चावल छिपाना, पोटली का पीछे कर लेना इस बात का प्रतीक है कि प्रेम बहुत गहन है, कैसे बताए कि मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूं। लेकिन कृष्ण कहते हैं नहीं, जरूर तुम मेरे लिए कुछ लाए हो। कृष्ण खोजते हैं, ढूंढ़ते हैं और अंत में खोज ही लेते हैं वह तीन मुट्ठी चावल... और कृष्ण उसे तीन लोक का वैभव दान दे डालते हैं। याद रखना, कृष्ण के पास बहुत है। ईश्वर शब्द का अर्थ ही होता है ऐश्वर्यवान, महाऐश्वर्यवान। तीन लोक की संपदा भी दान दे दे तो भी कुछ खास नहीं है। लेकिन सुदामा के लिए तो एक–एक दाना महत्त्वपूर्ण है, तीन मुट्ठी चावल तो बामुश्किल जुटा पाया है

तुम पूछते हो कि इस अतर्कयुक्त दान के बारे में ओशो क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि यह अतर्कयुक्त नहीं है, बिल्कुल ठीक सहज प्रेम की घटना है। होना ही चाहिए। जब सुदामा जैसा व्यक्ति तीन मुट्ठी चावल इकट्ठे करके लाया है, बामुश्किल एक–एक दाने उसने जोड़े होंगे; इसके बदले में तीन लोक की संपदा दे देना अतर्कयुक्त नहीं है, बिल्कुल सहज है। दोनों तरफ से सहज प्रेम की घटना है यह। प्रसिद्ध फिल्मी संगीतकार शैलेन्द्र का यह गीत सुनो–

किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार, जीना इसी का नाम है
माना अपनी जेब से फकीर हैं
फिर भी यारों दिल से हम अमीर हैं
मिले जो प्यार के लिए वो जिन्दगी
जले बहार के लिए वो जिन्दगी
किसी को हो न हो हमें है ऐतबार, जीना इसी का नाम है
रिश्ता दिल–से–दिल के ऐतबार का
जिन्दा है हमीं से नाम प्यार का
कि मर के भी किसी को याद आएंगे
किसी के आंसुओं में मुस्कुरायेंगे
कहेगा फूल हर कली से बार–बार, जीना इसी का नाम है

कृष्ण और सुदामा के बीच जो घटा वह बिल्कुल एक सहज प्यार की घटना थी। मित्रता की घटना थी।

अंतिम सवाल– भोपाल मध्यप्रदेश से मां अमृता पूछती हैं, अमृत समाधि में जिस हारा केन्द्र पर स्थिरता व अशांति का एहसास किया था, आनंद समाधि में उसी सेंटर से प्रफुल्लता की तरंगें फैलती हुई महसूस करती हूं। आश्चर्य कि थिर होना और लहराना एक ही बिन्दु पर कैसे संभव है!

देखती नहीं हो, फूल स्थिर होता है और उसकी सुवास चारों ओर फैल जाती है, देखती नहीं हिमालय स्थिर है और कितनी ही सैकड़ों नदियां और झरने उससे निकलकर बहते चले जाते हैं, दूर–दूर सागर तक पहुंच जाते हैं। बीच में स्थिर बिंदु हो तभी उसके आसपास लहराना संभव हो पाता है। तुम्हें बिल्कुल ठीक अनुभव हुआ है, अमृत समाधि में जिस हारा केन्द्र पर नाभि से दो इंच नीचे स्थिरता का एहसास किया था, आनंद समाधि में आकर वहीं से आनंद की, प्रेम की तरंगें फैलती हुई महसूस हो रही हैं। कोई व्यक्ति शांत हो तो ही प्रफुल्लित हो सकता है, अशांत व्यक्ति कैसे प्रफुल्लित होगा।

मां अमृता, बिल्कुल ठीक हो रहा है। उस शांत केन्द्र से प्रफुल्लता की तरंगें उड़ रही हैं ऐसे जैसे कोई दीपक स्थिर रखा हो और उससे प्रकाश की तरंगे चारों ओर फैल रही हों, दूर–दूर तक जा रही हों... इसमें कहां कोई विरोधाभास है! जैसे बैलगाड़ी का चाक घूमता है और बीच में कील, उसकी धुरी स्थिर रहती है। उस स्थिर धुरी पर ही चाक की गति संभव हो पाती है। ठीक इसी प्रकार जीवन में जो स्थिर प्राण केन्द्र है, जापान के झेन फकीर उसको हारा केन्द्र कहते हैं। चीन में उसे तांदेन कहा जाता है, भारत में उसके लिए कोई अलग से केन्द्र नहीं है किन्तु मणिपुर चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र के बीच में उसकी स्थिति से उसे पहचानना, वह स्वयं स्थिर है और इसलिए वहां से प्रफुल्लता की और आनंद की तरंगें सारी चेतना में फैलती हैं और न केवल स्वयं में, स्वयं से बाहर भी फैल सकती हैं। उस बाहर फैलते हुए आनंद का नाम प्रेम है, ओवर फ्लोइंग ब्लिस इज लव।

अध्याय–12

चार पुरुषार्थ

पहला प्रश्न है डॉक्टर प्रभाकर दर्शन जी का बिलासपुर छत्तीसगढ़ से। चार पुरुषार्थों में मोक्ष को सबसे ऊपर क्यों रखा गया है? मुमुक्षु हेतु एकांतवास का क्या महत्त्व है? क्या मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास अनिवार्य है? ईश्वर को न मानने वाले भी संन्यास दीक्षा क्यों देते हैं?

ये चारों प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। चार पुरुषार्थ हैं– अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। अर्थ और काम जिन संस्कृतियों का मूल आधार हैं वे अधार्मिक संस्कृतियां हैं, धर्म और मोक्ष जिन संस्कृतियों का लक्ष्य हैं वे धार्मिक संस्कृतियां हैं। अर्थ और काम में भी अर्थ निम्नतम है। जो केवल धन संग्रह में रस ले रहे हैं, वस्तुओं के परिग्रह में, वह सबसे निम्न कोटि की चेतना है। काम उससे थोड़ा ऊपर, कम से कम दूसरे से संबंध बना, चलो वासना का ही सही, खुद के घेरे से थोड़ा बाहर आए, जगत से थोड़ा नाता जोड़ा। धर्म उससे भी ऊपर है, जब धर्म में रस होगा तब भक्ति का भाव पैदा होगा। तब मंदिर महत्त्वपूर्ण हो जाएगा, प्रकृति महत्त्वपूर्ण हो जाएगी, सारा अस्तित्व जीवंत हो उठेगा। भक्त और भगवान का द्वैत धर्म की आधारशिला है, भक्ति और भावनाएं जन्म लेंगे। मोक्ष सर्वोपरि है क्योंकि वह अद्वैत है, वहां भक्त और भगवान अब दो न रहे, एक हो गए। इसलिए मोक्ष को सर्वोपरि रखा गया है, धर्म से भी ऊपर। वह धर्म और अधर्म दोनों के पार है।

फिर आपने पूछा है मुमुक्षु हेतु एकांतवास का महत्त्व। आरंभ में यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्वयं की ओर जाना है, आत्मा की ओर जाना है, आत्मा के केन्द्र परमात्मा की ओर। तो बेहतर हो भीड़ से मुक्त हो जाएं। इसलिए मौन की साधना के लिए शुरुआत में एकांतवास अच्छा होगा। भाषा के द्वारा हम समाज से जुड़ते हैं और स्वयं से टूटते हैं; मौन के द्वारा, एकांत के द्वारा हम समाज से टूटते हैं और स्वयं से जुड़ते हैं। तो जिस व्यक्ति को खुद की तलाश करनी है, खुद के भीतर खुदा की तलाश करनी है, अच्छा होगा कि वह थोड़ी देर के लिए समाज से टूट जाए। अब उसके लिए एकांतवास जरूरी है, मौन की साधना महत्त्वपूर्ण है।

आगे आप पूछते हैं कि क्या मोक्ष प्राप्ति के लिए संन्यास अनिवार्य है? संन्यास तो सिर्फ एक विधि है, एक तरकीब है, वह तो एक रास्ता है, असली मंजिल तो मोक्ष ही है। मोक्ष तक जो मार्ग जाता है उस मार्ग का नाम ही संन्यास है।

आगे आपने पूछा है कि ईश्वर को न मानने वाले धर्म भी संन्यास दीक्षा क्यों देते हैं? ये सवाल बड़ा महत्त्वपूर्ण है। कुछ धर्मों ने, विशेषकर जैन धर्म ने, बौद्ध धर्म ने और प्रकारांतर से योग की प्रस्तावना रखने वाले मनीषी पतंजलि ने भी ईश्वर को इंकार कर दिया। फिर भी उन्होंने साधना के महत्त्व को माना, संन्यास के महत्त्व को माना। जरा इस बात को गौर से समझना। मोक्ष का अर्थ है मुक्ति अर्थात् दूसरे से मुक्ति, जहां दूसरा नहीं है उसे कैवल्य कहो, निर्वाण कहो, आत्मज्ञान कहो। दूसरे के रूप में अगर ईश्वर भी मौजूद रहेगा तो वह भी परतंत्रता ही होगी। बुद्ध और महावीर कहते हैं कि अगर कोई सर्वोपरि है, हमसे ऊपर दुनिया का कोई संचालक मौजूद है, तब तो द्वैत बना ही रहेगा और तब हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो सकेंगे। मोक्ष का अर्थ है मुक्ति। इसलिए मोक्ष मार्ग पर चलने के लिए, उसकी जो अंतिम मंजिल है, उसका ख्याल रखना। वह है दूसरे से, 'पर' से स्वतंत्रता।

अगर ईश्वर की धारणा दूसरे के रूप में, 'पर' के रूप में है तो उस धारणा को भी गिरा देना। इसलिए जिन लोगों ने ईश्वर शब्द को इंकार कर दिया उन्होंने भी संन्यास दीक्षा के महत्त्व को माना क्योंकि असली लक्ष्य मोक्ष है, न कि ईश्वर। ईश्वर और परमात्मा शब्द में भेद समझ लो। ईश्वर शब्द में हम सृष्टा के रूप में किसी को देख रहे हैं, किसी महाशक्ति को, जबकि परमात्मा का शाब्दिक अर्थ है परम आत्मा यानी द अल्टीमेट सेल्फ, आत्मा का परमरूप, यह ईश्वर का पर्यायवाची नहीं है। महावीर कहते हैं आत्मा ही परमात्मा है, इसलिए नास्तिक धर्मों ने भी संन्यास और साधना को स्वीकारा। गीता अध्याय 18 का नाम भगवान कृष्ण ने रखा है मोक्ष संन्यास योग। परमगुरु ओशो ने इसपर प्रवचन देते हुए कहा–

'जब तक दूसरा है तब तक परतंत्रता रहेगी, दूसरे की मौजूदगी ही परतंत्रता है। जब तक दो हैं तब तक अड़चन रहेगी, अद्वैत चाहिए तभी स्वतंत्र हो पाओगे। जब 'स्व' ही बचे और कुछ नहीं तभी स्वतंत्र हो पाओगे। जब तक दूसरा है तब तक दूसरा तुम्हारी सीमा बनाएगा। तुमने कभी ख्याल किया कि जब तुम बाथरूम में होते हो तब एक प्रकार की स्वतंत्रता होती है, मुस्कराते हो, गीत गाते हो, गुनगुनाते हो। ऐसे लोग जिनको लाख कहो कि जरा लोगों के सामने गुनगुना दो, पर वे बोल भी नहीं पाते, वे भी बाथरूम में मधुर गीत गाते हैं। अगर तुम्हें

पता चल जाए कि कोई चाबी के छेद से झांक रहा है तो तुम वहां भी सिकुड़ जाओगे, वहां भी डर जाओगे, वहां भी तुम्हारी स्वतंत्रता छिन जाएगी। अब तुम परतंत्र हो गए, दूसरे की नजर पड़ी कि तुम परतंत्र हुए। रास्ते में तुम अकेले जा रहे होते हो तो तुम्हारी चाल और ही होती है। फिर अचानक कोई रास्ते पर आ गया तब तुम्हारी चाल बदल जाती है। अकेले में तुम और होते हो, दूसरे के सामने तुम और ही हो जाते हो। तुम्हारा चेहरा झूठा हो जाता है। जिन्होंने खोजा उन्होंने पाया कि जब तक हम अकेले ही न बचें तब तक पूरी स्वतंत्रता नहीं उपलब्ध हो सकती। मोक्ष का अर्थ है कि तुम डूब गए सर्व में और सर्व डूब गया तुममें, बूंद गिरी सागर में और सागर गिरा बूंद में। अब कोई दूसरा न रहा, द्वैत मिट गया।

इसलिए तो कुछ ज्ञानियों ने परमात्मा को भी इंकार कर दिया क्योंकि उससे द्वैत का बोध होता है। महावीर ने कहा कि कौन परमात्मा, कैसा परमात्मा! आत्मा ही परमात्मा है। इसे तुम ठीक से समझना। यह महाज्ञान का शब्द है, नासमझ समझे कि महावीर नास्तिक हैं। बुद्ध ने इंकार ही कर दिया, परमात्मा को ही नहीं, आत्मा को भी। क्योंकि जब भी तुम कुछ कहो, कोई भी शब्द उपयोग करो, हर शब्द दूसरे की मौजूदगी को पैदा करता है। अगर तुम कहो कि आत्मा है तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुम आत्मा को भिन्न कैसे करोगे, अनात्मा भी होगी। जब तुम कहते हो कि प्रकाश है तो तुमने अंधकार स्वीकार कर लिया।

जब तुम कहते हो परमात्मा है तब तुमने संसार स्वीकार कर लिया। जब तुम कहते हो मोक्ष है तो तुमने बंधन स्वीकार कर लिया। इसलिए बुद्ध ने कहा कि न तो कोई आत्मा है और न ही कोई परमात्मा है, न कोई मोक्ष है। यह तो परम मोक्ष की अवस्था है। यह परम मुक्ति है, परम निर्वाण है और यही लक्ष्य है। ठीक ही है कि अठारहवां अध्याय मोक्ष संन्यास योग है। मोक्ष है परम लक्ष्य, संन्यास है मार्ग उस परम लक्ष्य को पाने का। मोक्ष को पाना है तो संन्यास से पाया जा सकता है, और कोई उपाय नहीं है उसे पाने का। इतने अकेले हो जाना है कि सब तुममें समाहित हो जाए। इस यात्रा का प्रस्थान बिन्दु संन्यास है।

अगला सवाल– ओशो की बताई ध्यान विधियां करने पर हमें क्या मिलेगा और कितने समय में मिलेगा? पूछते हैं मुंबई से करण वाडेकर।

मिलेगा वही जो पहले से ही उपलब्ध है। तुम स्वयं अपने आपसे ही मिलोगे। हां, खो जाएगा बहुत कुछ, अहंकार खो जाएगा और ओंकार मिल जाएगा, स्वभाव मिलेगा और प्रभाव समाप्त हो जाएंगे, साकार से निराकार की ओर यात्रा होगी, अशांति खो जाएगी शांति उपलब्ध होगी। उपलब्ध शब्द जब मैं कहता हूं तो उससे एक भ्रांति पैदा होती है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई नई चीज मिलेगी। मैं स्पष्ट कर दूं कि नया कुछ भी न मिलेगा।

अशांति संसार का प्रभाव थी, वह खो जाएगी; शांति तुम्हारा स्वभाव है, वह उजागर हो जाएगी। दूसरे शब्दों में तुम कह सकते हो मिलेगा कुछ भी नहीं, खो जाएगा बहुत कुछ। व्याधि खो जाएगी समाधि उपलब्ध होगी, दुख समाप्त हो जाएगा आनंद मिलेगा या कह लो कि जो मिला ही हुआ है उसका पता चल जाएगा, उसका अनावरण हो जाएगा। ऊपर का आवरण जिससे वह ढका था वह हट जाएगा।

कल मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था, सेठ चंदूलाल के घर लोग पहुंचे। मारवाड़ी सेठ चंदूलाल ने उनका स्वागत करते हुए कहा– आइए आइए! अरे आने से पहले कम से कम फोन तो कर दिया होता। लोगों ने जवाब दिया कि अगर हम फोन कर देते तो सेठजी आप मिलते ही नहीं क्योंकि हम अपनी उधारी वसूलने आए हैं। तुम पूछते हो ध्यान रूपी मेहमान कब आएगा? बिना बताए आएगा, अतिथि। अतिथि का मतलब जो बिना तिथि बताए आ जाए, बिना फोन किए आ जाए। क्योंकि दुख से, अशांति से हमारा गहरा लगाव है, एक गहन दुखाकर्षण हमारे भीतर है, हम उसको पकड़कर रखे हुए हैं और छोड़ना नहीं चाहते।

अगर परमात्मा अचानक न आया, बताकर आया तो हम इंतजाम कर लेंगे अहंकार को कहीं छिपाने का। ध्यान जब तुम्हारे जीवन में आएगा, अनायास ही आएगा। बिना किसी पूर्व सूचना के आएगा। याद रखना, उधारी वसूलने आया है। यह जो अहंकार हमने अर्जित किया है, ये जो दुख हमने इकट्ठे किए हैं, ये सब उधार हैं। ये हमारा स्वभाव नहीं हैं, ये छीन लिए जाएंगे। परमात्मा तुमसे वह सब छीन लेगा जो भी उधार है। ओशो की एक प्रवचनमाला है 'हरि ओम तत्सत्'। उसमें वे समझाते हैं–

हरि शब्द का एक अर्थ तो है परमात्मा और दूसरा अर्थ है चोर, हरण करने वाला। परमात्मा चोर है। वह क्या चुराएगा? वह तुमसे तुम्हीं को चुरा लेगा। ईश्वर से भी ज्यादा प्यारा अर्थ है हरि का, हरण करने वाला। इसलिए वह बिना बताए ही आएगा। तुम पता नहीं क्या सोच रहे होगे, सुन लिए होंगे गुलाल के वचन झरत दसहुं दिश मोती, कि सुन ली होगी मीराबाई की वाणी पायो जी मैंने रामरतन धन पायो। तुमने सोचा होगा कि हो सकता है ध्यान करने से नोटों की वर्षा हो जाएगी, कि हीरे जवाहरात बरसने लगेंगे, ऐसा कुछ भी नहीं होगा। हां, वह रामरतन धन, वह ध्वनि, वह असली मोती तुम स्वयं ही हो। इसलिए उपलब्धि की भाषा में, प्राप्ति की भाषा में न सोचो।

तीसरा प्रश्न– आम धारणा है कि गहराई में जाने वाले लोग गृहस्थ जीवन से पक जाते हैं। अतः परिवार व समाज वाले साधना हेतु प्रेरित नहीं करते। उनके मन में अनजाना सा भय रहता है, कृपया इस पर प्रकाश डालें। पूछती हैं रजौरी जम्मू कश्मीर से कंचन देवी शर्मा।

समाज और परिवार वालों के मन में जो भय है वह भी स्वाभाविक है, पुराने धर्मों के कारण। पुराने धर्मों ने त्याग को बड़ा महत्त्व दिया। परिवार, समाज, संसार छोड़कर भाग जाओ, इसी को संन्यास कहा। याद रखना, भगवान श्रीकृष्ण ने इसको संन्यास नहीं कहा। अभी–अभी हम अठारहवें अध्याय की चर्चा कर रहे थे। उसमें कहीं भी त्याग की वैसी धारणा नहीं आती जैसी कि बाद में प्रचलित हो गई। भगवान श्रीकृष्ण का संन्यास तो ठीक वही है जिसको ओशो नवसंन्यास कह रहे हैं। लेकिन भगवान जाने क्यों किसी दुर्भाग्य से इस देश में त्यागवादी धारणा प्रचलित हो गई। लाखों लोग घर–परिवार छोड़कर भाग गए। उनको आनंद मिला कि नहीं मिला ईश्वर जाने, पर उनके कारण लाखों–करोड़ों लोगों को बहुत दुख मिला, एक–एक आदमी कम से कम बीस–पच्चीस लोगों से गहराई से जुड़ा है, प्रेम के उसके नाते

हैं। एक व्यक्ति के अलग हो जाने से, भाग जाने से कम से कम बीस–पच्चीस लोग दुखी होते हैं। उसकी पत्नी अपने पति के रहते हुए भी अब विधवा जैसी जिंदगी जिएगी, उसके बच्चे अपने बाप के रहते हुए भी अब अनाथ के जैसे जीवन जिएंगे। उसके बूढ़े माता–पिता जिन्होंने अपने बेटे को बुढ़ापे की लाठी समझा था, वह जंगल चला गया तो इन बूढ़े मां–बाप का क्या होगा! इनको कितने कष्ट झेलने पड़ेंगे! इसलिए बहुत लोगों को दुखी होना पड़ा।

संन्यास की यह पुरानी धारणा, त्यागवादी धारणा बिल्कुल ही गलत थी। इसलिए न ही कृष्ण उसके पक्ष में हैं और न ही ओशो उसके पक्ष में हैं। वह त्याग क्यों घटित हुआ इस बात को भी समझना। इसके पीछे भी एक बुनियादी कारण है। संसार के हमारे अनुभव में कीचड़ और कमल दोनों हैं, प्रेम और घृणा दोनों हैं, सुख और दुख दोनों हैं। सोना है लेकिन उसमें अशुद्धियां मिली हुई हैं। इसलिए हम अशुद्धियों से घबराकर, छोड़कर भाग जाते हैं और इस भागने में सोना भी छूट जाता है। संन्यास की असली कला क्या है? सोने को निखारो, अशुद्धियों को निखारो, घृणा को समाप्त करो और प्रेम को बचाओ। तभी तो साधना होगी, भागने में साधना न होगी। वह भागा हुआ व्यक्ति अपने पुराने मन को लेकर चला गया, वही मन जिसमें मोह, राग और आसक्तियां थीं, जिसमें अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष था, जिसमें सांप्रदायिक, कट्टरपंथी धारणाएं थीं। अब वह साधु होकर भी कह रहा है कि मैं जैन साधु हूं, कि मैं हिन्दू संन्यासी हूं, कि मैं मुसलमान फकीर हूं, आश्चर्य! कहता है कि समाज को छोड़ दिया। छोड़ा कहां? समाज ने जो धर्म सिखाया था, जो संप्रदाय सिखाया था वह तो साथ ही आ गया। तो संसार का अनुभव सुख–दुख का मिश्रित अनुभव है।

अब दो उपाय हैं– या तो दुख से बचने के लिए भाग खड़े होओ तब सुख भी छूट जाएगा और इसलिए संन्यासी गृहस्थ से भी ज्यादा उदास और चिंतित हो जाता है, उसका साधारण सुख भी गया। और असली संन्यास वह है जो तुम्हें मोक्ष की तरफ ले जाएगा। वह है साधना, भागना नहीं वरन् जागना। हां, गौर से देखो कौन सी चीज दुख देती है? ये तुम्हारा अहंकार, घृणा का तत्व, तुम्हारा द्वंद्वात्मक मन– उससे दुख मिल रहा है, उससे मुक्त होओ। संसार को छोड़कर नहीं भागना है, इस द्वंद्वात्मक मन के पार जाना है। मैं एक गीत पढ़ रहा था –

हम तुझसे मोहब्बत करके सनम रोते भी रहे हंसते भी रहे,
खुश होकर सहे उल्फत के सितम रोते भी रहे हंसते भी रहे।
ऐ दिल की लगी तुझको क्या खबर इक दर्द उठा थर्रायी नजर,
खामोश थे हम इस गम की कसम, रोते भी रहे हंसते भी रहे।
यह दिल जो जला इक आग लगी आंसू जो बहे बरसात हुई,
बादल की तरह आवारा थे हम, रोते भी रहे हंसते भी रहे।

संसार के अनुभव में हास्य और रुदन इकट्ठा है। भागने वाला दोनों से भाग जाता है और उसकी मुस्कराहट गायब हो जाती है। कृष्ण और ओशो जिस संन्यास की बात कर रहे हैं, जिस मोक्ष की तरफ इशारा कर रहे हैं, उसमें रुदन से छूटना है और मुस्कराहट, प्रफुल्लता और हंसी को बचाना है। वही असली संन्यास है।

अध्याय–13

ध्यान प्रेम और समाधि

आज का पहला प्रश्न है पश्चिम विहार दिल्ली से स्वामी सरबजीत जी का। आदरणीय गुरुदेव जी ध्यान, प्रेम और समाधि से जीवन की सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है... ओशो का यह वचन कितना सत्य है?

सौ प्रतिशत सत्य है। ध्यान और प्रेम जीवन में फल जाए तो समाधि आ जाती है। ऐसा समझना ध्यान और प्रेम दो मार्ग हैं और समाधि मंजिल है। समाधि का अर्थ है जहां सब चीजों का समाधान हो जाता है। यह सवाल ऐसा ही है जैसे कोई जन्मजात अंधा पूछे कि मैं कभी दीवार से टकराता हूं, कभी गड्ढे में गिर जाता हूं, कभी मेरे पैरों में कांटे, कंकड़ चुभ जाते हैं, कभी रास्ता नहीं मिलता, भटक जाता हूं, ठोकरें खाता हूं। क्या सिर्फ आंख का इलाज कराने से ये सारी समस्याएं दूर हो जाएंगी? अंधे को आश्चर्य होता होगा कि ये कैसे ठीक होता होगा! वैसे ही तुम्हारा सवाल है। भीतर ध्यान की आंख खुल जाए, प्रेम की आंख खुल जाए अर्थात् विवेक उत्पन्न हो जाए... इन दोनों का संयुक्त नाम है प्रज्ञा, विवेक, विजडम।

जैसे ही वह विजडम हमारे भीतर पैदा होती है, चीजें स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती हैं जैसी वे हैं। और तब कोई समस्या नहीं रह जाती। ऐसा नहीं है कि प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं, प्रश्न ही व्यर्थ हो जाते हैं। एक निष्प्रश्न दशा उत्पन्न होती है, उसी का नाम है समाधि। तो ध्यान और प्रेम दो मार्ग हैं, समाधि अथवा समाधान उसका परिणाम है... यही मंजिल है। इन

दोनों राहों से चलो।

दो प्रकार के लोग हैं दुनिया में– कुछ स्त्रैण चित्त हैं उनके लिए प्रेम का मार्ग, भक्ति का मार्ग उचित होगा। कुछ पुरुष चित्त हैं उनके लिए ध्यान का, होश का, योग का मार्ग उचित होगा। कुछ लोग जिनमें दोनों गुण मौजूद हैं, जिनका कोई विशेष रुझान और झुकाव नहीं है, वे दोनों पथों पर एक साथ यात्रा कर सकते हैं। बाहर–बाहर प्रेम साधो, भीतर–भीतर ध्यान साधो। जल्दी ही तुम पाओगे कि जीवन में समाधान आ गया। तुम्हारा नाम था सरबजीत सिंह, मैंने जब संन्यास दीक्षा दी तो बदलकर कर दिया आत्मजीत, जानबूझकर।

सर्व को अगर जीतना है, सब समस्याओं को अगर मिटाना है तो पहले आत्मजीत हासिल करो, पहले स्वयं के विजेता बनो। महावीर को हम कहते हैं महावीर। क्यों? बचपन का नाम तो वर्धमान था। उन्होंने किस पर विजय हासिल की जो उन्हें 'जिन' कहा गया... 'जिन' यानी जिसने जीता। उसी से जैन धर्म बना, विजेता का धर्म। महावीर ने स्वयं को जीता। साधना के द्वारा स्वयं को जीतो। तब तुम पाओगे कि तुमने सारी दुनिया जीत ली। परिस्थिति परिवर्तन से नहीं, मनःस्थिति रूपांतरण से समाधान हासिल होते हैं। ओशो ने राजनीति और धर्म की बड़ी सुंदर और संक्षिप्त व्याख्या की है। राजनीति यानी संसार को, परिस्थितियों को, लोगों को बदलने की कोशिश और अध्यात्म यानी आत्मरूपांतरण का प्रयास। स्वयं को बदलो तो सबकुछ बदल जाता है। किसी गीतकार ने लिखा है–

न तो दुनिया ही बदलती है न ये दुनिया वाले
खुदा को देख नजर खुद की बदल जाती है।
बेखुदी में हमीं हो जाते हैं फितरत से बुलंद
ये नहीं होता कि फितरत ही बदल जाती है।
गम के साये जो फैले हैं सो वे फैले रहेंगे
जिंदगी चीर के इन सबको निकल जाती है।

न जमाना बदलता है न जमाने के ये दस्तूर, मोहब्बत से अपनी ही तकदीर बदल जाती है।

बड़ी प्यारी पंक्ति है ये, गम के साए जो फैले हैं सो फैले रहेंगे। जैसे आकाश में बादल हैं, बिजलियां कड़क रहीं हैं, घनघोर वर्षा हो रही है, जमीन पर उसका प्रभाव पड़ रहा है। बारिश हो रही है जिससे कीचड़ हो गया है, गड्ढों में पानी भर गया है। बिजली गिरने से लोगों की मृत्यु हो रही है, बाढ़ आ रही है। अगर तुम बादलों को चीरकर हवाई जहाज से ऊपर निकल जाओ, हवाई जहाज उड़ता है कोई दस–बारह किलोमीटर ऊपर, वहां न बिजली गिरेगी, न पानी गिरेगा, वहां बादलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा यद्यपि बादल अपनी जगह हैं और सबकुछ वैसा ही हो रहा है। ठीक ऐसा ही समाधि के मार्ग पर होता है। तुम ध्यान के हवाई जहाज पर बैठकर बादलों के पार निकल जाते हो। समस्याएं जहां हैं वहीं रहती हैं, लेकिन तुम उनसे अप्रभावित हो जाते हो।

गम के साए जो फैले हैं सो फैले रहेंगे,
जिंदगी चीरकर इन सबको निकल जाती है,

न जमाना बदलता है न जमाने के दस्तूर,
मोहब्बत से अपनी ही तकदीर बदल जाती है।
आत्मजीत, अपने आपको बदलो तो सब समाधान हो जाते हैं।

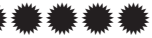

दूसरा प्रश्न– धर्म के नाम पर इतनी दुकानें चल रही हैं। टेलीविजन चैनलों पर गुरुओं की भरमार है। सब अपने–अपने माल को श्रेष्ठ बताते हैं। पिछले पंद्रह वर्षों से इंटरनेट पर परमात्मा की तलाश में संलग्न हूं। ऐसी मुश्किल भरी जिंदगी में मेरे जैसा भोला–भाला इंसान किस गुरु का शिष्य बने समझ में नहीं आता। सच्चे गुरु के लक्षण बताएं। पूछा है मिथिलेश चौधरी ने हिसार हरियाणा से।

मिथिलेश तुम सवाल ही गलत पूछ रहे हो। सच्चे गुरु के लक्षण नहीं, सच्चे शिष्य के लक्षण पूछो। तुम कैसे सद्शिष्य बनो, यह सोचो! अभी तो तुम सद्शिष्य ही नहीं हो, तुम केवल एक विद्यार्थी हो। स्टूडेंट और डिसाइपल का फर्क समझना, डिसाइपल का अर्थ है जो डिसीप्लीन्ड होने को तैयार है। जो एक खास अनुशासन से, साधना से गुजरने को राजी है और विद्यार्थी का अर्थ है जो केवल सूचनाएं ग्रहण कर रहा है। तुम टेलीविजन का चैनल बदल–बदलकर दो–दो मिनट सब कुछ देखते हो। कुछ वचन इस गुरु के सुने, कुछ उसके सुने। इससे परमात्मा नहीं मिलेगा, शायद तुम पागल जरूर हो जाओगे। कह रहे हो कि पंद्रह साल से इंटरनेट पर परमात्मा की तलाश में हूं।

तुमने भी गजब कर दिया मिथिलेश! पुराने जमाने में लोग शास्त्रों में और ग्रंथों में खोजते थे, इंटरनेट आजकल का नया शास्त्र है, ये और भी कठिन है। शास्त्र तो दो–चार घर में होते थे, एक छोटी सी लाइब्रेरी तुम बना सकते थे वह भी काफी थी पागल करने के लिए। इंटरनेट पर तो सारी दुनिया की जानकारी उपलब्ध है, दुनिया के सारे शास्त्र उपलब्ध हैं, पंद्रह साल क्या, तुम पंद्रह जन्म भी लगे रहो तो सारी किताबें न पढ़ पाओगे। रोज इतनी किताबें छप जाती हैं कि एक जिंदगी कम है उनको पढ़ने के लिए... केवल एक दिन की छपी हुई किताबें पढ़ने के लिए। परमात्मा न मिलेगा और तुम अपनी सामान्य बुद्धि भी खो दोगे और विक्षिप्त हो जाओगे। नहीं तुम शिष्य नहीं हो, मत पूछो सद्गुरु के लक्षण, सद्शिष्य के लक्षण समझो। सद्शिष्य साधना करने को तैयार होता है जानकारी में उत्सुक नहीं होता।

आंतरिक ज्ञान का खोजी स्वयं जानना चाहता है, जानकारी हासिल करना नहीं चाहता। वह परमात्मा का स्वाद लेना चाहता है, परमात्मा के विषय में सूचनाएं नहीं इकट्ठी करना चाहता। चैतन्यता का विकास करना होगा, इंटरनेट और टेलीविजन तो यंत्र हैं। उनमें स्वयं ही कोई चेतना नहीं होती तो वे तुम्हारी चेतना को कैसे जगाएंगे। सद्गुरु की तलाश करनी होगी और किसी जीवित व्यक्ति को खोजना होगा। जिन खोजा तिन पाइयां, जो खोजते हैं उन्हें मिल जाता है। लेकिन याद रखना, ठीक दिशा में खोजोगे तभी। कबीरदास जी ने शर्त लगाई है–

जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ,
मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ।

तुम अपना टेलीविजन और इंटरनेट लेकर किनारे पर बैठे हो और समुद्र की गहराई के बारे में पता लगाना चाह रहे हो, यह संभव नहीं है। खोजबीन करनी होगी, साधु–सत्संग करना होगा। माना कि उसमें भी भटकाव है लेकिन सत्संग करते–करते, साधुओं की तलाश में, वे जो बता रहे हैं उस विधि को प्रयोग करते हुए, उसके परिणाम को देखते हुए धीरे–धीरे सद्गुरु से मिलन हो पाएगा। 'एस धम्मो सनंतनो' प्रवचनमाला में बुद्ध की साधना के संबंध में, उनके गुरु के संबंध में बोलते हुए परमगुरु ओशो ने कहा है–

'बुद्ध बड़े शुद्ध खोजी हैं। उनकी खोज बड़ी निर्दोष है। घर छोड़ा तो जितने गुरु उपलब्ध थे, सबके पास गए। गुरु उनसे थक गए; क्योंकि असली शिष्य आ जाए तभी पता चलता है कि गुरु गुरु है या नहीं। झूठे शिष्य हों साथ, तो पता ही नहीं चलता।

मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि असली गुरु का कैसे पता चले? मैं उनको कहता हूं कि तुम फिक्र न करो। अगर तुम असली शिष्य हो, तो असली गुरु का पता चल जाएगा। नकली गुरु तुमसे बचेगा, भागेगा, कि यह चला आ रहा है असली शिष्य, यह झंझट खड़ी करेगा। तुम गुरु की फिक्र ही छोड़ दो। असली शिष्य अगर तुम हो, तो नकली गुरु तुम्हारे पास टिकेगा ही नहीं। तुम टिके रहना, वही भाग जाएगा।

दुनिया में नकली गुरु हैं क्योंकि नकली शिष्यों की बड़ी संख्या है। नकली गुरु तो बाइप्रोडक्ट हैं। वे सीधे पैदा नहीं होते। नकली शिष्य उन्हें पैदा कर लेता है। बुद्ध सभी गुरुओं के पास गए। गुरु घबड़ा गए। क्योंकि यह व्यक्ति निश्चित प्रामाणिक था। जो उन्होंने कहा, वह इसने इतनी पूर्णता से किया कि उनको भी दया आने लगी कि यह तो हमने भी नहीं किया है! कोई करता ही नहीं था, तब तक बात ठीक थी। इस पर दया आने लगी। इससे यह भी न कह सकते थे कि तुमने पूरा नहीं किया, इसलिए उपलब्ध नहीं हो रहे हो। इसने पूरा–पूरा किया। उसमें तो रत्ती भर कमी नहीं रखी। गुरुओं ने हाथ जोड़कर कहा कि बस, हम यहां तक तुम्हें बता सकते थे, इसके आगे हमें खुद भी पता नहीं है।

सारे गुरुओं को बुद्ध ने चुका डाला। एक भी गुरु साबित न हुआ। तब सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि खुद खोजें। और इसलिए बुद्ध की बातों में बड़ी ताजगी है, क्योंकि उन्होंने खुद खोजा। किसी गुरु से नहीं पाया था। किसी से सुनकर नहीं दोहराया था। फिर खुद खोज पर निकले– नितांत अकेले, बिना किसी सहारे के। शास्त्र धोखा दे गए, सब पीछे हट गए, अकेला रह गया खोजी।

ऐसा ही होता है। जब तुम्हारी खोज असली होगी, तुम पाओगे शास्त्र काम नहीं देते। शास्त्र तभी तक काम देते हैं जब तक तुम उनका भजन–पाठ करते हो। बस तभी तक। अगर तुमने यात्रा शुरू की, तुम तत्क्षण पाओगे शास्त्र में हजार गलतियां हैं। होनी ही चाहिए। क्योंकि हजारों साल तक हजारों लोग उसे दोहराते रहे हैं, बनाते रहे हैं। उसमें बहुत कुछ छूट गया है, बहुत कुछ जुड़ गया है। लेकिन यह तो तुम्हें तभी पता चलेगा जब तुम यात्रा करोगे।

तुम एक नक्शा लिए घर में बैठे हो, उसकी तुम पूजा करते हो– तो कैसे पता चलेगा? यात्रा पर निकलो तब तुम्हें पता चलेगा। अरे, इस नक्शे में नदी बतायी है, यहां कोई नदी नहीं

है! इस नक्शे में पहाड़ बताया है, यहां कोई पहाड़ नहीं है! इस नक्शे में कहा है बाएं मुड़ना, बाएं मुड़ो तो गड्ढा है। यात्रा होती नहीं। दाएं मुड़ो तभी हो सकती है।

जब तुम यात्रा पर निकलोगे तभी परीक्षा होती है तुम्हारे नक्शों की। उसके बिना कोई परीक्षा नहीं होती। जो भी यात्रा पर गए, उन्होंने शास्त्र को सदा कम पाया। जो भी यात्रा पर गए, उन्होंने गुरुओं को कम पाया। जो भी यात्रा पर गए, उन्हें एक बात अनिवार्यरूपेण पता चली कि प्रत्येक को अपना मार्ग स्वयं ही खोजना पड़ता है। दूसरे से सहारा मिल जाए, बहुत। पर कोई दूसरा तुम्हें मार्ग नहीं दे सकता। क्योंकि दूसरा जिस मार्ग पर चला था। वह उसके स्वभाव में अनुकूल बैठता था।

और प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है।

बुद्ध ने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। इसलिए एक ही राजपथ पर सभी नहीं जा सकते, सबकी अपनी पगडंडी होगी। इसलिए सद्गुरु तुम्हें रास्ता नहीं देता, केवल रास्ते को समझने की परख देता है। सद्गुरु तुम्हें विस्तार से नक्शे नहीं देता, केवल रोशनी देता है, ताकि तुम खुद विस्तार देख सको, नक्शे तय कर सको। क्योंकि नक्शे रोज बदल रहे हैं।

जिंदगी कोई थिर बात नहीं है, जड़ नहीं है। जिंदगी प्रवाह है। जो कल था वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं होगा।

सद्गुरु तुम्हें प्रकाश देता है, रोशनी देता है, दीया देता है हाथ में कि यह दीया ले लो, अब तुम खुद खोजो और निकल जाओ। और ध्यान रखना, खुद खोजने से जो मिलता है, वही मिलता है। जो दूसरा दे दे, वह मिला हुआ है ही नहीं। दूसरे का दिया छीना जा सकता है। खुद का खोजा भर नहीं छीना जा सकता।'

छोड़ो शास्त्रों और किताबों को मिथिलेश, छोड़ो इंटरनेट और टेलीविजन, जीवित व्यक्ति में तलाशो। आज तक जिसने भी पाया है गुरु के माध्यम से ही पाया है। गुरु के लक्षण नहीं बताए जा सकते, हर गुरु अपने आप में अनूठा और अद्वितीय होता है। गुरुओं का कोई मास प्रोडक्शन नहीं होता कि सब एक से चले आ रहे हैं। महावीर बस एक बार ही हुए, वैसा आदमी फिर दुबारा न हुआ। कृष्ण बस एक बार हुए, दुबारा फिर वैसा इंसान नहीं हुआ। अगर तुम गुरु की परिभाषा बनाओगे तो अतीत के लोगों से ही तो बनाओगे।

तुम सोचोगे कि जो बुद्ध जैसा होना चाहिए, कि जो राम जैसा होना चाहिए, कि जीसस जैसा होना चाहिए, वैसा व्यक्ति अब दुबारा नहीं होगा। और अगर कोई मिल जाए तो जानना कि वह रामलीला का राम है, वह कोई नाटककार है, कोई अभिनेता है। वास्तविक राम दुबारा नहीं होंगे।

हर सद्गुरु बस एक बार होता है इसलिए उसके कोई लक्षण नहीं बताए जा सकते और उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। तुम तो शिष्यत्व के लक्षण पूछो, तुम सीखने वाले बनो।

तीसरा प्रश्न है हनुमानगढ़ राजस्थान से कुसुमलता का। तृतीय विश्वयुद्ध के कगार पर खड़ी मानव जाति को शांति का उपाय चाहिए। ओशो की बताई ध्यान विधियों से तो केवल अहंकार मुक्ति व आत्मशांति मिलेगी, इससे जगत का कल्याण कैसे होगा?

एक यूनिट को बदला जा सकता है, एक आदमी को बदला जा सकता है क्योंकि व्यक्ति की आत्मा है, आत्मा की शांति हो सकती है। समाज की कोई आत्मा नहीं होती, समाज केवल एक शब्द है, व्यक्तियों का समूह है। देश या विश्व केवल एक शब्द है। कभी तुमने कोई विश्व नाम की चीज देखी है? कभी तुम्हारी मुलाकात किसी समाज से हुई है? जब भी मिलेगा व्यक्ति ही मिलेगा। इसलिए व्यक्ति में रूपांतरण किया जा सकता है, समाज में रूपांतरण नहीं किया जा सकता। हां, यह संभव है कि बड़े पैमाने पर व्यक्ति–व्यक्ति बदलते चलें तो समाज भी बदल जाए। ये भी संभव है कि एक दिन बहुत ज्यादा व्यक्ति शांत हो जाएं तो विश्व में भी शांति हो जाए लेकिन सीधा विश्वशांति का उपाय नहीं किया जा सकता। अगर किया गया तो वह स्वयं ही अशांति, राजनीति पैदा करने वाला होगा।

इसलिए अकसर ऐसा होता है कि लोग बड़े नेक इरादे से समाज सुधारक बनने चलते हैं और धीरे–धीरे वे खुद इतना बिगड़ जाते हैं कि बाद में समाज को उन्हें ही व्यक्तिगत रूप से सुधारना पड़ता है। तुम रोज देखते नहीं राजनीति में जो लोग आते हैं, पहले समाज सेवा करने आए थे, फिर वे इतने बिगड़ जाते हैं कि उन्हें ही सुधारना पड़ता हैं। नहीं, गलत दिशा से शुरू नहीं करना, हमेशा स्वयं से शुरू करो। आध्यात्मिक प्रश्न खुद के बारे में होता है, दूसरों के बारे में सवाल न पूछो।

एक पत्नी–पीड़ित कह रहा था, 'परसों मेरी पत्नी को नागिन ने डस लिया।'

'ओह! फिर क्या हुआ?'

'कुछ देर बेचारी तड़पती रही। फिर मर गई'

'बहुत अफसोस हुआ जानकर! अभी चार साल पहले ही तो शादी हुई थी।'

'अरे यार, मेरी पत्नी नहीं, बेचारी नागिन मर गई'।

तुम विश्वशांति की बात कर रहे हो। किसको बचाना है, नाग को कि विश्व को? ये जो अहंकार रूपी नाग है अगर ये मर जाए तो विश्व भी बच जाए। ध्यान से अहंकारमुक्ति होगी, प्रेम से तुम्हारा अहंकार गलेगा, आत्मशांति घटित होगी। हम कल्पना कर सकते हैं कि उसी आत्मशांति का बड़ा रूप कभी भविष्य में विश्वशांति बन सके। लेकिन यह कल्पना छोटी सी ही कल्पना है, मैं नहीं कह रहा हूं कि ऐसा हो ही जाएगा। बड़ा मुश्किल लगता है, आज तक के मनुष्य जाति के इतिहास को देखकर बहुत कम उम्मीद है इस बात की कि बड़े पैमाने पर लोग शांत हो सकेंगे, तुम उनकी चिंता छोड़ो।

तुम तो अपनी चिंता करो, तुम भी तो इसी विश्व का एक हिस्सा हो कुसुमलता, अगर तुम शांत हो गईं तो विश्व का एक छोटा सा अंश तो शांत हुआ। अपने से शुरुआत करो और दूसरों से नजर को हटाओ, यही सच्चा अध्यात्म है। धन्यवाद। जय ओशो।

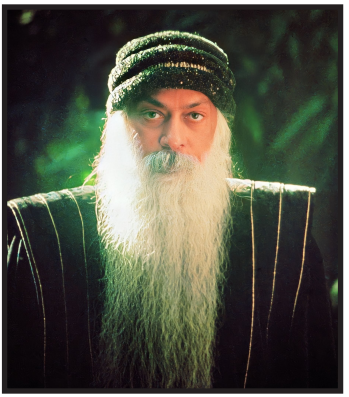

अध्याय–14

विज्ञान एवं नास्तिकता

प्रथम प्रश्न– विज्ञान की प्रगति के साथ ईश्वर में आस्था क्यों समाप्त होती जा रही है? पूछा है नई दिल्ली से जसपाल कुमार ने।

पुराने जमाने में ईश्वर में जो आस्था थी वह माता के रूप में, पिता के रूप में, दुख निवारक के रूप में थी... कोई हमारा सहारा है, कोई हमें देखने वाला है, कोई हमारी देखभाल करने वाला है। कबीर साहब ने कहा है–

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय

अधिकांश लोग जो अपने आपको भक्त समझते हैं, प्रार्थनाएं करते हैं, ईश्वर में विश्वास करते हैं, उनका विश्वास दुख केन्द्रित है, दुख में प्रभु को याद करते हैं। उनका धर्म वास्तविक धर्म नहीं है, आस्तिकता सच्ची नहीं है। चूंकि विज्ञान ने जिंदगी के कष्ट कम कर दिए, दुख मिटा दिए, सुख–सुविधा जुटा दी इसलिए अब उस ईश्वर को याद करने की जरूरत नहीं रही। इस बात को गौर से समझना, लोग दुख में याद कर रहे थे। मंदिर–मस्जिद में जाकर सुन लो कि लोग क्या प्रार्थना कर रहे हैं। उनकी प्रार्थना यही है कि हे प्रभु मेरा यह काम कर दे, मेरा ये दुख दूर कर दे, कि बेटी की शादी करा दे, कि लड़के की नौकरी लगवा दे, कि मुकदमा जितवा दे। किसी कष्ट में हैं इसलिए उन्हें प्रभु की याद आ रही है। वास्तव में परमात्मा से उन्हें कुछ लेना–देना नहीं है और उनकी ईश्वर की यह धारणा बहुत ही बचकानी है। ये तो जैसे छोटे बच्चे अपने माता–पिता को

याद करते हैं, रास्ते पर चलते हुए कांटा लग गया, कि पत्थर से चोट लग गई तो मुंह से निकल जाता है बाप रे! कि डॉक्टर ने इंजेक्शन लगाया अस्पताल में और कोई चिल्ला पड़ता है उई मां! लोग कहते हैं न कि ऐसा सबक सिखाएंगे कि नानी याद आ जाएगी! अब तुम यह नहीं सोच लेना कि सचमुच में इनको माता-पिता या नानी से कोई लगाव या प्रेम है। लेकिन दुख के कारण कोई सहारा हो हमारा, कोई हमारा दुख-दर्द दूर करे। पहले अज्ञान था और विज्ञान ने अज्ञान मिटा दिया। उदाहरण से समझो, जैसे बरसात में बादल गरजते थे, बिजलियां गिरती थीं, लोग मरते थे, नुकसान हो जाता था, आकाश में इन्द्रधनुष निकलता था मालूम नहीं था कि ये क्या हो रहा है लेकिन आदमी डर जाता था, भयभीत हो जाता था। उसने कल्पनाएं कर लीं कि इंद्र देवता हैं कोई जो आकाश में बरसात के देवता हैं और जब वे नाराज होते हैं तो धनुष तान लेते हैं और जो बिजलियां गिरती हैं वे उनके तीर हैं। वे नाराज हैं। लोग जमीन पर पाप कर रहे हैं इसलिए उनको नष्ट करने के लिए बिजली गिरा रहे हैं। इंद्रधनुष उनका धनुष है, अब ये बचकानी धारणा है। आज हमें पता चल गया है कि इंद्रधनुष क्यों निकलता है, आज हमें पता चल गया है कि बिजलियां कैसे गिरती हैं और विज्ञान के आने के बाद वही बिजली हमारी सेविका बन गई है।

उसी बिजली की वजह से आज हम पंखा चला सकते हैं, वही इंद्र देवता आज हमारे घर में गीजर चला रहे हैं, हीटर चला रहे हैं। बेचारे वैक्यूम क्लीनर से घर की सफाई कर रहे हैं, शूद्र कर्मचारी का काम मिल गया उनको। ये वही बिजली के देवता हैं। पहले हम अज्ञानी थे। पहले हमें मालूम नहीं था कि बिजली क्या है तो हमने एक काल्पनिक धारणा बना ली थी, कुछ व्याख्या खोज ली थी कि जगत में जो हो रहा है वह क्यों हो रहा है। वह हमारे दुख पर आधारित था, वह हमारे अज्ञान पर आधारित था। विज्ञान ने मनुष्य जाति का दुख कम किया है, उसका अज्ञान मिटाया है और इसलिए अब पुराने प्रकार के ईश्वर पर आस्था नहीं हो सकती। भविष्य में जो धर्म होंगे वे बुद्ध से सहमत होंगे, वे महावीर से सहमत होंगे, वे चीन के संत लाओत्से के ताओवाद से, जापान के झेन फकीर बोकोजू और लिंची से सहमत होंगे। संक्षिप्त में कहो तो ओशो जिसको धार्मिकता कहते हैं, आध्यात्मिकता कहते हैं, भविष्य में केवल वही बचेंगे। पुराने प्रकार के धर्म, प्रार्थना करने वाले धर्म, व्यक्तिवाची ईश्वर की धारणा करने वाले धर्मों के दिन लद गए।

द्वितीय प्रश्न श्रीमती शालिनी दिल्ली से पूछ रही हैं। श्रेष्ठ वर की तलाश में मेरी ननद पैंतीस वर्ष पार कर गई है। हे प्रभु, योग्य लड़के की प्रतीक्षा हमें और कब तक करनी होगी?

शालिनी, लगता है तुम्हारे परिवार के लोग बहुत अहंकारी हैं। श्रेष्ठ वर की तलाश, कितना श्रेष्ठ! पैंतीस साल की हो गई तुम्हारी ननद और अभी तक तुम उसके लिए एक दूल्हा नहीं खोज पाई। अगर तुम्हारे भीतर परफेक्शनिस्ट आइडिया है तब बड़ी मुश्किल होगी। वैसा कोई व्यक्ति दुनिया में होता नहीं, दुनिया में सारे लोग इंपरफेक्ट होते हैं।

मैंने सुना है एक आदमी अपनी साठवीं वर्षगांठ मना रहा था। कुंवारा था, शादी उसने की नहीं थी। समारोह में किसी ने उससे पूछा कि आप साठ साल के हो गए और आपने विवाह नहीं किया, इसका कोई खास कारण? उसने कहा कि मैं एक परफेक्शनिस्ट व्यक्ति हूं। मैं एक पूर्ण

स्त्री की तलाश में था। लोगों ने पूछा कि साठ साल तो लंबी उम्र होती है, इतने समय में कोई पूर्ण स्त्री नहीं मिली? उसने कहा कि मिली तो थी केवल एक। लोगों ने पूछा कि आपने उससे शादी क्यों नहीं की? तब उस आदमी ने कहा कि वह पूर्ण स्त्री एक पूर्ण पुरुष के तलाश में थी, उसने मुझको रिजेक्ट कर दिया। इसके पहले मैं भूल ही गया था कि मैं खुद पूर्ण नहीं हूं। ये सब पागलपन की बातें हैं, ये पूर्णता की बात छोड़िए।

मैंने सुना है कि चर्च में एक लड़की प्रार्थना कर रही थी कि हे प्रभु, मुझे धन–दौलत नहीं चाहिए, पद–प्रतिष्ठा नहीं चाहिए, मान–सम्मान नहीं चाहिए, बड़ा मकान और कार वाला दूल्हा नहीं चाहिए, बस एक समझदार लड़के से मेरी शादी करा दे। रोज आकर चर्च में वह यही प्रार्थना करे कि एक समझदार लड़के से मेरी शादी करा दे। एक दिन आखिर ईसा मसीह जी की मूर्ति से आवाज आई कि नालायक लड़की, समझदार लड़के शादी करते ही नहीं, देख मुझे! अब ये तो नामुमकिन काम है, समझदार लड़के से कैसे शादी करा दें, यह काम तो परमात्मा भी नहीं करा सकता। समझदार लड़का शादी के लिए तैयार क्यों होगा!

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल एक ज्योतिषी के पास गए और कहने लगे कि पंडित जी मेरी पुत्री के लिए ऐसा लड़का खोजिए जो कुछ खाता–पीता न हो। मैं मांस–मदिरा के सख्त खिलाफ हूं। इसलिए ऐसा लड़का चाहिए जो कुछ खाता–पीता न हो। पंडित जी ने कहा कि तब तो ऐसा लड़का ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीच्यूट के आई.सी.यू. यूनिट में ही मिलेगा जो कुछ खाता–पीता न हो, पर याद रखना, ऐसा लड़का मरणासन्न होगा, जीवित नहीं रहेगा। जब इतना ढूंढ ही रहे हो कि जो खाता–पीता न हो तो फिर ऐसा ढूंढ लो कि जो सांस भी न लेता हो! फिर उसमें कोई भूल–चूक नहीं होगी, कोई गलती नहीं होगी। जिंदगी इंपरफेक्ट है, इसको स्वीकारो। जीवन ऐसा ही है, यहां हम जो भी आए हैं, हम सब सीखने ही आए हैं। यह पृथ्वी एक पाठशाला के समान है। यहां हम विकसित होने आए हैं। अगर हम पूर्ण विकसित हो गए होते तो हम यहां लौटकर आते ही नहीं। इस दृष्टि से तुम पुनः खोजना, तुम्हारी ननद के लिए लड़का जरूर मिलेगा।

तृतीय प्रश्न– मुंबई से पुष्पा गुप्ता पूछती हैं, आध्यात्मिक अनुभूतियों के संबंध में ओशो के प्रवचनों में विरोधाभास नजर आता है, कभी वे कुण्डलिनी शक्ति जगाने के प्रयोग समझाते हैं तो कभी उसका मजाक उड़ाते हैं, कहीं ओंकार संगीत की महिमा गाते हैं तो कहीं इस पड़ाव से गुजर जाने के लिए प्रेरित करते हैं। इसी असमंजस में मैं कोई विधि शुरू नहीं कर पाती हूं क्योंकि वे बार–बार विधि के पार जाने की चर्चा करते हैं। मेरा भी भ्रम दूर कीजिए।

पुष्पा तुम मुंबई में रहती हो और सवाल ऐसा पूछती हो कि जैसे होशियारपुर निवासी लोग पूछते हैं, तुम होशियारपुर में जाकर रहो। मैंने सुना है होशियारपुर के विचित्तर सिंह एक बार हरिद्वार जाने के लिए तैयार हुए। जब प्लेटफार्म पर पहुंचे तो बड़ी मुसीबत हो गई। वे ट्रेन में बैठने को तैयार नहीं हुए। साथ में घर के ही तीन–चार और लोग थे। वे बोले कि क्यों नहीं बैठ रहे हो? विचित्तर सिंह ने कहा कि मैं तार्किक आदमी हूं, मैं कोई विरोधाभासी काम नहीं करता। अगर मैं ट्रेन में बैठ गया तो मुझसे उतरने के लिए तो न कहोगे? उल्टा काम मैं नहीं करूंगा कि पहले बैठो फिर उतरो, पक्का बताओ बैठना है कि उतरना है? लोगों ने सोचा कि ये तो बड़ी मुसीबत हो गई।

अब ऐसे आदमी से कौन तर्क करे! गाड़ी छूटने का समय हो गया तो लोगों ने धक्का मारकर उनको गाड़ी में बैठा दिया कि अभी बैठो फिर देखेंगे। फिर मुसीबत हो गई। जब गाड़ी हरिद्वार पहुंच गई तो विचित्तर सिंह ने अपनी सीट को जोर से पकड़ लिया और कहा कि अब नहीं उतरूंगा, चढ़ गए सो चढ़ गए बस। मैं विरोधाभासी काम नहीं करता। चढ़ना भी होता है और उतरना भी होता है। अब हरिद्वार आ गया, अब भी अगर तुम गाड़ी से न उतरे तो हरिद्वार पहुंच कर भी, हरि के द्वार पर पहुंच कर भी हरि के दर्शन न हो पाएंगे। ठीक इसी प्रकार सारी ध्यान की विधियां हैं। नाव के समान समझो, जब तुम इस पार हो तो नाव में सवार होना, जब नाव उस पार पहुंच जाए तो कृपया नाव से उतर जाना। अब जिद नहीं करना कि जिस नाव ने मुझे नदी पार कराया, उस पार से इस पार तक लाया उसको मैं कैसे छोड़ सकता हूं, मैं तो नाव में ही बैठा रहूंगा। तब तुम उस पार पहुंचकर भी उस पार न पहुंच पाए, नाव में ही रह गए। हरिद्वार पहुंचकर भी तुम ट्रेन में ही बैठे रह गए।

जीवन विरोधाभासी है। क्या किया जा सकता है, जिंदगी ऐसी ही है! कोई व्यक्ति बीमार है तो हम उसको दवाई देते हैं, जब वह ठीक हो जाता है तो दवाई छोड़ देता है। अब अगर कोई जिद करने लगे कि जिस दवा ने मुझे ठीक किया है उसे मैं नहीं छोड़ूंगा, अब तो ये दवाई मैं जिंदगी भर खाता ही रहूंगा। तब यही दवाई प्राणलेवा बन सकती है। जो अमृत के समान जीवन का रक्षक था वही जीवन का भक्षक हो जाएगा। नासमझ आदमी के हाथ में हर चीज गलत हो जाती है। थोड़ा विवेकवान बनो, थोड़ा प्रज्ञावान बनो पुष्पा। सब चीजों का उपयोग करना है और छोड़ना भी है। 'धम्मपद' पर बोलते हुए सुनो ओशो की अमृतवाणी–

'प्रकाश दिखायी पड़े, अभी मंजिल नहीं आयी। कुंडलिनी जाग जाए, अभी मंजिल नहीं आयी। ये भी अनुभव हैं। ये भी शरीर के ही अनुभव हैं, मन के अनुभव हैं। परमात्मा सामने दिखायी पड़ने लगे, याद रखना मंजिल नहीं आयी। क्योंकि परमात्मा तो देखने वाले में छिपा है, कभी दिखायी नहीं पड़ेगा। जो दिखायी पड़ेगा वह तुम्हारा सपना है।

इसको तुम सूत्र समझो; जो दिखायी पड़े, अनुभव में आए, वह सपना। जिस दिन कुछ दिखायी न पड़े, कुछ अनुभव में न आए, केवल तुम्हारा चैतन्य रह जाए, देखने वाला बचे दृश्य खो जाएं, द्रष्टा बचे दृश्य खो जाएं, कुछ दिखायी न पड़े, बस तुम रह जाओ; ना–कुछ तुम्हारे चारों तरफ हो –इसको बुद्ध ने निर्वाण कहा है – शुद्ध चैतन्य रह जाए, दर्पण रह जाए, कोई प्रतिबिंब न बने, तब तुम भोग के बाहर गए। अन्यथा सभी अनुभव भोग हैं। कोई किसी पत्नी को भोग रहा है, कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं–कोई इस दृश्य को भोग रहा है... सब भोग है। जहां तक दूसरा है, वहां तक भोग है। जब तुम बिल्कुल ही अकेले बचो, शुद्धतम कैवल्य रह जाए, होश मात्र बचे –किसका होश, ऐसा नहीं; चैतन्य मात्र बचे –किसकी चेतना, ऐसा नहीं; कुछ जानने को न हो, कुछ देखने को न हो, कुछ अनुभव करने को न हो –उस घड़ी आ गयी मंजिल।'

संक्षेप में फिर से समझ लो एक बार। ध्यान के, समाधि के सब अनुभवों से गुजरना है, गुजरने का मतलब उसके पार जाना है, किसी चीज को पकड़कर मत बैठ जाना। कोई मंत्र जपता है तो मंत्र को ही पकड़कर बैठ जाता है। कोई प्रार्थना कर रहा है तो बस वह प्रार्थना ही

पकड़कर बैठ गया। कोई मंदिर में मूर्तिपूजा कर रहा है, बस वह मूर्तिपूजा पर ही अटक गया। जाना था मूर्त से अमूर्त की ओर, मूर्ति का उपयोग जंपिंग बोर्ड की तरह कर लेना था। तुम स्विमिंग पूल में जाते हो? वहां जंपिंग बोर्ड पर दौड़ते हो और छलांग लगाकर पानी में कूद जाते हो। अब कुछ लोग ऐसे होंगे जो कह रहे हैं कि हम जंपिंग बोर्ड को छोड़ेंगे ही नहीं। फिर तो स्विमिंग पूल में कभी न पहुंच पाओगे। स्विमिंग पूल में जाने के लिए जंपिंग बोर्ड को छोड़ना भी होगा। साहस करो! गाड़ी में चढ़ना भी होगा और उतरना भी होगा। आंतरिक अनुभवों में उतरो, कुंडलिनी को जगाना होगा, ऊर्जा का एहसास करना होगा। हां, इसको मंजिल मत मान लेना क्योंकि यही सबकुछ नहीं है। भीतर ओंकार सुनाई देने लगे कि भीतर आलोक दिखाई देने लगे तो बहुत अच्छा, इसको मील का एक पत्थर समझना। तुम ठीक मंजिल की दिशा में जा रहे हो, यह मील का पत्थर बहुत उपयोगी है।

भगवान महावीर ने इस पूरे साधना पद को चौदह खण्डों में बांटा है। ओंकार श्रवण को वह कहते हैं अपूर्वश्रुत। इन चौदह पड़ावों में से आठवां पड़ाव। सात तक आधी यात्रा हो गई, आधी यात्रा का अगला कदम तुमने उठा लिया, आठवें पड़ाव पर पहुंच गए। खुशी मनाओ, अहोभाव से भरो कि चौदह सोपानों में से तुम आठ पर चढ़ गए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अब तुम आठवें सोपान पर खड़े रहो। और आगे जाना है, और आगे जाना है जब तक तुम इस ओंकार रूपी नाद के साथ एकात्म न हो जाओ, जब तक तुम स्वयं प्रकाश स्वरूप न हो जाओ। प्रकाश को दूर से जानना एक बात है और स्वयं प्रकाशमय हो जाना बिल्कुल अलग बात है। यही समाधि और संबोधि का भेद है। समाधि में हमें भीतर अनुभव होते हैं लेकिन जाना है अनुभोक्ता तक। यह कौन है जिसे अनुभव हो रहा है उसे जानो... वह तुम हो। इसलिए अनुभवों से गुजरना उपयोगी है। ये मील के पत्थर की तरह हैं, सहयोगी हैं।

बस इतना ही याद रखना, मील के पत्थर को पकड़कर न बैठ जाना और उसकी पूजा न करने लग जाना, वरना वही मील का पत्थर तुम्हें अटकाने वाला बन जाएगा। ओशो की बातों में कहीं कोई विरोधाभास नहीं है, अगर विरोधाभास दिखे तो समझना कि तुम्हारी समझ में कमी है।

अध्याय–15

ओशो परिवार की दीक्षा

पहला प्रश्न जींद हरियाणा से कर्ण सिंह दोहन ने पूछा है कि ओशो के बचपन के संगी–साथी एवं परिवारजन, यहां तक कि उनके माता–पिता भी उनके शिष्य बने। यह चमत्कार कैसे संभव हुआ? क्या मानव जाति के इतिहास में ऐसे अन्य उदाहरण भी हैं?

कर्ण सिंह, यूं देखो तो शिष्य बनना अपने आप में एक चमत्कार ही है, क्योंकि शिष्य का अर्थ है अपने अहंकार को छोड़ना, झुकने के लिए राजी होना। अहंकार अकड़ना चाहता है और हमारी पूरी जिंदगी अहंकार केन्द्रित है। हम सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं भी कुछ खास हूं। हम दूसरे के सामने झुकना नहीं चाहते। खासकर, हम जिन्हें अपना मित्र कहते हैं, परिवारजन कहते हैं, उन्हें हम अपने बराबर का समझते हैं... उनके प्रति तो झुकने का सवाल ही पैदा नहीं होता! और बड़ी मुश्किल तो तब है, जब हम जिसे अपना बेटा कह रहे हैं, नाती कह रहे हैं, पोता कह रहे हैं जो हमसे छोटा है... उसके सामने हम झुकें? अहंकार कभी राजी न होगा। इसलिए निश्चित रूप से इसको चमत्कार ही कहें। बड़ी अद्भुत घटना है। जब कोई परिवार के लोग, माता–पिता या मित्रजन या शिक्षक जिन्होंने स्कूल में पढ़ाया–लिखाया है, वे अपने विद्यार्थी को गुरु के रूप में स्वीकारें, तब वह घटना और भी अद्भुत हो जाती है। जीसस क्राइस्ट ने कहा है कि पैगम्बर की पूजा अपने गांव में नहीं होती। ठीक ही कहा है। अपने

अनुभव से कहा होगा। जीसस के गांव के लोगों ने उनकी बात नहीं सुनी होगी। उन्होंने कहा होगा कि हम जानते हैं, अरे ये बढ़ई का बेटा, ये हमें सिखाने चला है, ये हमें बताएगा ईश्वर के बारे में! कबीर के गांव के लोग कबीर को न मान सकेंगे।

एक कहानी है कि कबीर गंगा में स्नान कर रहे थे। एक और पंडित वहां आ गया। उसे तैरना नहीं आता था इसलिए वह किनारे पर बैठकर चुल्लू से पानी भर-भरकर अपने ऊपर डाल रहा था, गहरी नदी में उतर नहीं सकता था। कबीर को दया आई तो उन्होंने अपना लोटा मांजकर उसको दिया और कहा कि आप इस लोटे से नहा लीजिए, ऐसे चुल्लू से कब तक नहाएंगे। उसने कहा दूर रख अपना लोटा, अरे जुलाहे की औलाद! ये भी पक्का पता नहीं है कि तू हिन्दू है कि मुसलमान, तेरा लोटा मैं कैसे छू सकता हूं, अपवित्र है यह तो।

कबीर हंसने लगे। उन्होंने कहा कि हद हो गई, ये लोटा इतनी बार गंगा में डूबा है, अगर यह पवित्र न हो पाया तो तुम गंगा में स्नान करके कैसे पवित्र हो जाओगे! ये जुलाहे का बेटा रोज गंगा में स्नान करता है लेकिन अभी भी जुलाहे का ही बेटा है, पंडित जी तुम कैसे पवित्र हो जाओगे जरा सोचो तो सही! लेकिन वो काशी के पंडित नहीं मानने वाले। वे जो निकट रहते हैं, उनके अहंकार को भारी अड़चन होती है। तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक है, बराबरी वाले के प्रति झुकना, अपने से छोटे के प्रति झुकना बहुत कठिन है। इतिहास में भी इसके कुछ उदाहरण हैं। अर्जुन कृष्ण का मित्र था, सखा के रूप में था इसलिए तो उसने कृष्ण को सारथी बनाया था। लेकिन जब बातचीत चली और कृष्ण ने उसको उपदेश दिया तो उसके भीतर शिष्यत्व पैदा हुआ। इस संबंध में बोलते हुए गीतादर्शन में ओशो ने कहा है-

मित्र का अर्थ है, मैं मैं हूं, तुम तुम हो; हम दोनों समान हैं। लेकिन हम एक-दूसरे में रस लेते हैं। शुरुआत तो मित्रता से ही होगी, अंत शिष्यत्व पर होगा। तो अर्जुन के मन में भाव तो मैत्री का है; कृष्ण उसके सखा हैं, बचपन के सखा हैं। इस सखा-भाव से ही उसने अपने हृदय को उनके प्रति खुला छोड़ दिया है। जिज्ञासाएं उठाई हैं, लेकिन जिज्ञासाएं अदालत में उठाए गए तर्कों की भांति नहीं हैं। किसी को हराना नहीं है; कुछ जानना है, कुछ समझना है।

और कृष्ण ने जो उत्तर दिए हैं, उन्होंने धीरे-धीरे उसकी संदेह की व्यवस्था को तोड़ दिया है, उसके संशय छिन्न हो गए हैं। धीरे-धीरे उसके भीतर संशय की जगह श्रद्धा का आविर्भाव हुआ है। उसने आंख खोलकर देखा कि जिसे सखा समझा था, वह सिर्फ सखा नहीं है। सखा में विराट के दर्शन हुए हैं।

तुमने भी जिसे सखा समझा है, वह सखा ही नहीं है। तुमने जिसे पत्नी समझा है, वह पत्नी ही नहीं है। तुमने जिसे बेटा समझा है, वह बेटा ही नहीं है। किसी दिन आंखें खुलेंगी, तो तुम पाओगे वही विराट! सभी तरफ विराट है; वही छिपा है।

तुम यह मत सोचना कि यह कोई चमत्कार है जो कृष्ण ने दिखा दिया। यह चमत्कार नहीं है, जो कृष्ण ने दिखा दिया। यह चमत्कार है, जो अर्जुन ने देख लिया।

अर्जुन जैसे-जैसे खुलता गया और जैसे-जैसे सरल होता गया, उसकी अहंकार की ग्रंथि जैसे-जैसे टूटी, जैसे-जैसे उसने कृष्ण को गौर से देखा कि जिसमें हमने सखा देखा

था, वह सिर्फ सखा नहीं है, उसमें परमगुरु छिपा है! जैसे–जैसे यह भाव प्रगाढ़ हुआ, वह पुराना सखा, कृष्ण, खो गए।

एक अर्थ में यह घटना बड़ी कठिन है... मित्र में परमात्मा को देखना! अर्जुन अनूठा व्यक्ति रहा होगा। इसलिए कृष्ण अगर उसे पुरुषश्रेष्ठ कहते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। मित्र के भीतर परमात्मा को देख लिया! जिसे बचपन से जाना है, उसके भीतर अनजान की झलक पा ली। जो बिल्कुल ज्ञात मालूम होता है, उसके भीतर अज्ञात का द्वार खुल गया।

इस मैत्री से ही गीता जन्मी है। इस मैत्री के भाव से ही अर्जुन शिष्य हुआ और कृष्ण को गुरु होने का मौका दिया।

क्योंकि ध्यान रखना, कोई जबरदस्ती तुम्हारे ऊपर गुरु नहीं हो सकता; तुम मौका दे सकते हो। गुरु कोई जबरदस्ती नहीं है। गुरु तुम्हारे ऊपर स्वयं को थोप नहीं सकता। क्योंकि गुरु कोई हिंसा नहीं है, आक्रमण नहीं है। इसलिए दुनिया में कोई गुरु नहीं बन सकता, केवल शिष्य गुरु बना सकता है। यह तुम्हारी ही भाव–दशा है।

शिष्य ही गुरु को निर्मित करता है, एक अर्थ में। क्योंकि जैसे ही वह झुकता है, वैसे ही गुरु पैदा होता है। जितना झुकता है, उतनी ही गुरुता का दर्शन होता है।'

कर्ण सिंह, मैं कहना चाहूंगा कि प्रेम एक सीढ़ी के समान है। सीढ़ी पर हम ऊपर भी जा सकते हैं और नीचे की तरफ भी जा सकते हैं। अकसर प्रेम की सीढ़ी से हम नीचे उतर जाते हैं, वासना, महत्त्वाकांक्षा में पहुंच जाते हैं। हम उन्हें मित्र कहते हैं जो हमारी कामनाओं में, हमारे काम में साथ देते हैं, हमारा समर्थन करते हैं। प्रेम ऊपर जाने वाली सीढ़ी भी हो सकता है। यह हम पर निर्भर है कि हम किस दिशा में जाएं। प्रेम हमें मजबूर नहीं कर रहा है कि हम कामना, वासना और महत्त्वाकांक्षा पर ही जाएं, ऊपर भी जा सकते हैं। तब प्रेम भक्ति बन जाता है, तब प्रेम शिष्यत्व का रूप ले लेता है।

निश्चित ही अद्भुत घटना घटी। हमें याद आता है कि हमारे परिवार के लगभग सभी लोग ओशो से संन्यस्त हो चुके थे। सिर्फ पिताजी रह गए थे आखिरी में। कई लोग उनसे पूछते कि आप भी क्या संन्यास लेंगे? क्या आप भी अपने बेटे के शिष्य बनेंगे? वे कहते थे कि मैं अभी प्रयोग कर रहा हूं, रोज सुबह चार बजे उठकर ध्यान करता हूं। रोज सुबह वे दो–तीन घंटे ध्यान करते थे। वे कहते थे कि जब तक मुझे स्वयं अनुभव न हो जाए, जब तक पक्का न हो जाए कि मेरा बेटा जो सिखा रहा है वह बिल्कुल सही है तब तक मैं यह कदम नहीं उठाऊंगा। और दूसरी बात, जब तक मैं दुकान पर बैठ रहा हूं तब तक माला ग्रहण नहीं करूंगा। मेरे मन में माला का और गेरुए कपड़े का बहुत सम्मान है, दुकान में बैठकर तो मजबूरी है इसलिए झूठ बोलना पड़ता है। उनकी कपड़े की छोटी सी दुकान थी। उन्होंने कहा कि जिस दिन यहां से मैं रिटायरमेंट ले लूंगा उसके बाद सोचूंगा संन्यासी होने की।

फिर एक दिन उनके जीवन में वह घड़ी आई। वे पूना में, आश्रम में ही थे, सुबह चार बजे से ध्यान करने बैठे थे। लगभग पांच बजे उनकी आंखों से आंसू झरने लगे, भीतर कुछ विचित्र और अद्भुत घटना घटी। मेरे बड़े भाई स्वामी निकलंक भारती वहां मौजूद थे। पिताजी ने उनको

जगाया और कहा कि निकलंक उठो और जाकर ओशो से कहो कि मुझे अभी संन्यास दीक्षा चाहिए। निकलंक भाई बड़े धर्मसंकट में पड़ गए, सुबह पांच बजे संन्यास दीक्षा और ओशो को जाकर कैसे जगाएं। ओशो की सचिव थीं मां योग लक्ष्मी, भाईसाहब ने उनके पास जाकर उनको जगाया और उन्हें बताया कि पिताजी को ऐसा–ऐसा हो रहा है। पिताजी ध्यान में बैठे हैं और खूब आनंदमग्न और भाव–विभोर होकर बैठे हुए हैं, उनकी आंखों से आंसू झर रहे हैं और वे कह रहे हैं कि बस अभी बुलाओ, इसी क्षण दीक्षा हो जाए, अगले क्षण का क्या भरोसा... अद्भुत घटना घट गई है, कुछ अनूठा हुआ है, अब एक क्षण भी गंवाना नहीं चाहता। मां योग लक्ष्मी ने जाकर ओशो को उठाया और उनको पूरी बात बताई।

ओशो स्वयं पिताजी के कमरे में आए, लक्ष्मी से कहा कि माला लेकर आओ, कागज पेन लेकर आओ, उनको नाम दिया स्वामी देवतीर्थ भारती, उनको माला पहनाई, पिता के चरण स्पर्श किए। पिताजी ने कहा कि नहीं, अब मैं तुम्हारा शिष्य हुआ, अब मैं तुम्हारे चरण स्पर्श करूंगा। ओशो की करुणा देखो, वे स्वयं पलंग पर चढ़कर खड़े हो गए ताकि पिताजी को नीचे न उतरना पड़े। पिताजी ने अपना सिर उनके चरणों में रखा और अश्रु की धार से उनके चरण धो दिए और कहा कि अद्भुत हो तुम। मैं देख नहीं पा रहा था कि मेरे पुत्र में परमात्मा अवतरित हुआ है, आज मेरी आंख खुली।

निश्चित रूप से तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है, अति विरल घटना है अपने से छोटों में, अपने से बराबरी वालों में परमात्मा को देख पाना। लेकिन इतिहास में ऐसी घटनाएं घटी हैं। अर्जुन के साथ हुआ जो कि वह कृष्ण में परमात्मा का विराट रूप देख पाया। बुद्ध के साथ हुआ, उनकी पत्नी शुरुआत में तो नाराज हुई, क्रोधित हुई लेकिन अंततः उनकी शिष्या बनी। यशोधरा बुद्ध की शिष्या बनी और बुद्ध संघ में ऐसी खो गई कि फिर उसका उल्लेख भी नहीं आता। अगर कहीं थोड़ा सा भी अहंकार बचा होता तो वह उभरकर दिखाई देती, फिर पता ही नहीं कि यशोधरा का क्या हुआ। बिल्कुल ही डिजॉल्व हो गई, अपने अहंकार को मिटा ही दिया। बुद्ध का बेटा राहुल भी उनका भिक्षु बना। बुद्ध का बड़ा भाई था आनंद जिंदगी भर जिसने बुद्ध की सेवा की। उम्र में एक साल बड़ा था, थोड़ी सी कठिनाई उसको भी हो रही थी, अपने छोटे भाई से कैसे दीक्षा ले! लेकिन झुका और झुका तो ऐसे झुका कि फिर जिंदगी भर छाया की तरह बुद्ध के संग रहा। तो अतीत में भी ऐसी विरल घटनाएं घटी हैं।

अगला प्रश्न स्वामी प्रेम अमृत नेपाल से पूछते हैं। कृष्ण, बुद्ध, महावीर, राम आदि की दाढ़ी मूंछ चित्रित न किए जाने के पीछे क्या मनोविज्ञान हो सकता है?

एकाध व्यक्ति की दाढ़ी मूंछ न होती तो समझ में आता, लेकिन चौबीसों तीर्थंकर बिना दाढ़ी मूछ के, ये तो असंभव है। अकेले बुद्ध के दाढ़ी मूंछ न होती तो मान लेते क्योंकि वे नेपाल के रहने वाले थे, नेपाल के मंगोल जाति का प्रभाव मान सकते थे, चीन के लोगों के दाढ़ी मूंछ में मुश्किल से दस–पंद्रह बाल होते हैं, बहुत लोग बिना दाढ़ी मूंछ के होते हैं, बुद्ध की न होती तो मान लेते, लेकिन चौबीसों तीर्थंकरों की नहीं। राम की भी नहीं, कृष्ण की भी नहीं, शिव की

भी नहीं, किन्हीं अवतारों या तीर्थंकरों की दाढ़ी नहीं, जरूर इसके पीछे कुछ और कारण होगा। जिन मूर्तिकारों ने, चित्रकारों ने, शास्त्रकारों ने यह चित्रण किया है वे कुछ और बताना चाह रहे हैं। वे बताना चाह रहे हैं कि ये लोग सदा किशोर रहे, इनके भीतर एक युवापन था, ताजापन था, कुंवारापन था, ये कभी पुराने और बासे नहीं पड़े इसलिए इनके केवल युवावस्था के चित्र मिलते हैं। राम बूढ़े हुए होंगे, कृष्ण भी बूढ़े हुए होंगे, बुद्ध और महावीर तो अस्सी से बयासी वर्ष तक जिये लेकिन उनके बुढ़ापे की कोई प्रतिमाएं नहीं बनाईं क्योंकि उनके बुढ़ापे की प्रतिमा आंतरिक चित्रण न कर पाएगी। भीतर तो वे सदा जीवंत रहे, ओवर फ्लोइंग एनर्जी, शाश्वत रूपेण युवा, हमेशा ताजगी उनके भीतर रही। मेरी दृष्टि में बूढ़ा आदमी वह है जो अतीत से बंध गया, जो अब नए के लिए खुला नहीं है, जिसने अपने हृदय के वातायन बंद कर दिए। रेजिस्टेंस टू चेंज। जो व्यक्ति नए के लिए खुला है, सीखने को तैयार है, जो हमेशा प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है, जो अपने अतीत से मुक्त होने का साहस रखता है, जो भविष्य की चुनौतियों को स्वीकारता है, जो वर्तमान में जीता है वह सदा किशोर रहता है। तो शास्त्रकारों ने, मूर्तिकारों ने यही भाव दिखाने की कोशिश की है। ओशो ने एक प्रवचन में उल्लेख किया है। एक पंद्रह साल की लड़की ने उनसे पूछा कि जीवन से मुक्ति पाने का, आवागमन से मुक्ति के उपाय बताएं?

ओशो ने कहा कि अगर कोई पेंटर इस लड़की का चित्र बनाए तो इसको पंद्रह साल की लड़की नहीं बनाना चाहिए, इसको अस्सी साल की बुढ़िया बनाना चाहिए, तब वो इसका सही मानसिक चित्रण हुआ। इस पंद्रह साल की बच्ची को तो पूछना चाहिए जीवन जीने की कला कि कैसे मैं जीवन को आनंदपूर्वक, सुखपूर्वक जिऊं? कैसे मेरे जीवन में प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचे। यह तो वृक्ष हो चुकी है।

चित्रों को, प्रतिमाओं को तुम काव्यात्मक ढंग से लेना, ऐतिहासिक रूप से नहीं। एक बात और ख्याल रखना, सभी मूर्तिकार, चित्रकार, शास्त्रकार पुरुष रहे और पुरुषों के मन में सौंदर्य की जो धारणा है वह स्त्रैण धारणा है। स्त्री की दाढ़ी मूंछ नहीं होती। पुरुष सोचते हैं कि यही वास्तविक सौंदर्य है यद्यपि स्त्रियां इससे राजी नहीं होंगी। स्त्रियों के मन में जो सौंदर्य की धारणा है वह पुरुष के प्रति है। लेकिन चूंकि सभी शास्त्रकार, मूर्तिकार, चित्रकार अतीत में पुरुष ही हुए इसलिए उन्होंने अवतारों को, बुद्धपुरुषों को स्त्रैण रूप ही दिया।

आज पश्चिम में जैसे स्थिति बदल रही है, इसका उल्टा भी समझो तो ख्याल में आ जाएगा कि ऐसा क्यों हुआ होगा। पश्चिम में आज स्त्रियां पुरुषों के साथ होड़ में पड़ी हैं और स्त्रियों के मन में जो सौंदर्य की धारणा है वह पुरुषों के समान है, इसलिए महिलाएं पुरुषों जैसे कपड़े पहनने लगीं पैंट-शर्ट और जींस, महिलाएं पुरुषों जैसे बाल कटाने लगीं, महिलाएं भी वही शिक्षा प्राप्त करने लगीं जो पुरुष प्राप्त करते हैं, उन्हीं खेल-कूदों में रुचि लेने लगीं जिनमें पुरुष लेते हैं, धीरे-धीरे उन्होंने सब बदल लिया। सिगरेट पीने लगीं, शराब पीने लगीं, नकल में। ये कोई उनकी आंतरिक भावदशा नहीं थी, लेकिन सौंदर्य की धारणा पुरुष की है तो पुरुष सिगरेट पी रहे हैं और उनसे तुलना है तो फिर सिगरेट पीना शुरू करो। भले ही खांसी आए, छींक आए, जुकाम हो जाए, गला खराब हो जाए लेकिन सिगरेट तो पीनी ही पड़ेगी,

शराब पीनी पड़ेगी। जुआं घरों में, कसीनों में महिलाओं की ही भीड़ दिखती है। क्यों ये पागलपन सवार हुआ क्योंकि उनके मन में सौंदर्य की धारणा पुरुष के प्रति है। तो पुरुषों में जो सौदर्य की धारणा है वह स्त्रियों के प्रति है। तो यह दूसरा कारण है।

सभी शास्त्रकार, मूर्तिकार, चित्रकार पुरुष थे अतीत में इसलिए उन्होंने अवतारों को, बुद्धपुरुषों को दाढ़ी–मूंछ में चित्रित नहीं किया। ये उनकी सौंदर्य की धारणा है। ये छोटी–छोटी सी बातें हैं लेकिन प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, इसके पीछे मनोविज्ञान छिपा है। ये जो बातें मैंने आपसे कहीं ये ओशो ने समझाई है जो उनकी प्रसिद्ध प्रवचनमाला 'कृष्ण मेरी दृष्टि में' है। जो सवाल आपने मुझसे पूछा है यहीं सवाल ओशो से किसी ने पूछा तो ये दो कारण ओशो ने बताए।

पिताश्री स्वामी देवतीर्थ भारती का महापरिनिर्वाण होने पर उनके आज्ञा चक्र एवं सहस्त्रार पर स्पर्श करते हुए ओशो। साथ में माताश्री मा अमृत सरस्वती।

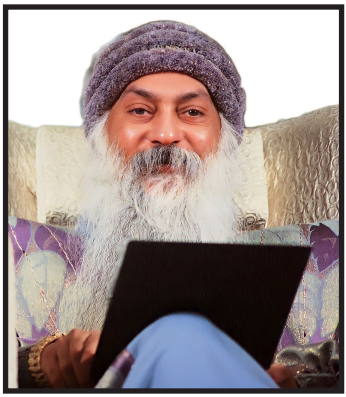

अध्याय–16

बुद्ध से झोरबा का मिलन

पहला प्रश्न पूछा है सहारनपुर उत्तर प्रदेश से आर. के. मित्तल जी ने। पूछते हैं कि 'जोरबा दी बुद्धा' से ओशो का क्या तात्पर्य है? संन्यास की महिमा को हिमालय के पर्वत शिखरों से उतारकर बाजार में खड़ा करके क्या ओशो ने गलत नहीं किया?

जरा भी नहीं, ओशो ने संन्यास को और भी महिमावान बना दिया। जंगल में नहीं, जिंदगी में संन्यास की परीक्षा है। जंगल में जाकर अगर तुम शांत हो गए और तुम्हें क्रोध न आया इसमें तुम्हारी खूबी नहीं है, जंगल की खूबी है। वहां क्रोध करने का कोई उपाय ही नहीं है, क्रोध करने का कोई अवसर ही नहीं है, किसी के प्रति ईर्ष्या से भरने का उपाय ही नहीं है क्योंकि वहां कोई दूसरा है ही नहीं। जिंदगी में परीक्षा होगी कि तुम जो कर रहे हो वह वास्तव में कुछ परिणाम ला रहा है कि नहीं। जहां चारों तरफ अशांति और बेचैनी के कारण हैं, जहां दुख के सब उपाय हैं, अहंकार को चोट पहुंचाने के आयोजन हैं वहां पता चलेगा कि वास्तव में तुम्हारा अहंकार मिटा कि नहीं। और याद रखना, जंगल में जो चले गए वे संन्यासी पाखण्डी हो गए। संन्यास में पाखण्ड और झूठ प्रवेश कर गया, संसार में रहकर व्यक्ति ईमानदार रह सकेगा, आत्मनिर्भर रह सकेगा। जंगल में रहने वाले, भिक्षा मांगने वाले मुनि समाज पर निर्भर हो गए, समाज के गुलाम हो गए और जिसके तुम गुलाम हो उससे मुक्त नहीं हो सकते।

वह समाज जो तुम्हें प्रतिष्ठा देता है उसकी मानकर चलना होगा, उसके बंधन तुम पर होंगे, संन्यास मुक्तिदायी नहीं हो सकता। ओशो ने संन्यास को सार्वलौकिक बनाया, सारे लोग जंगल नहीं जा सकते, हिमालय नहीं जा सकते। अगर यही सात अरब आदमी हिमालय पर पहुंच जाएंगे तो हिमालय की बर्फ भी पिघल जाएगी, वहां भी फिर बाजार लग जाएगा। पुराना संन्यास इक्का-दुक्का लोगों के लिए था। अगर सारे जगत को संन्यास का स्वाद चखाना है और ध्यान की सुगंध फैलाना है तो संन्यास को संसार में लाना होगा। थाईलैंड में कठिनाई हो गई है, वहां सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है भिक्षु बनने के लिए, क्योंकि इतने भिक्षु हो गए हैं कि उनका पालन-पोषण कौन करेगा। कौन उनके लिए भोजन का इंतजाम करेगा, कौन उनके लिए मंदिर और मठ का इंतजाम करेगा, कौन उनके लिए वस्त्रों और औषधियों का इंतजाम करेगा, आखिर सारा बोझ तो समाज पर ही पड़ता है!

तिब्बत में जबसे चीनी शासन आया वहां संन्यास समाप्त हो गया, सारे कम्युनिस्ट देशों से संन्यास समाप्त हो गया। और जैसे-जैसे समय बीतेगा अन्य देशों से भी समाप्त हो जाएगा। ओशो ने संन्यास को अद्भुत महिमा दी। 'जोरबा दी बुद्धा' से उनका तात्पर्य है- 'बुद्ध' प्रतीक हैं शांति के, ध्यान के, अध्यात्म के और 'जोरबा' प्रतीक है संसार का, विज्ञान का, धन का। धन भी चाहिए और ध्यान भी चाहिए, सुख चाहिए और शांति भी चाहिए, विज्ञान भी हो और अध्यात्म भी हो तभी यह दुनिया ठीक मायने में उन्नति कर सकती है। गीतादर्शन पर बोलते हुए, कृष्ण के संन्यास के बारे में समझाते हुए ओशो कहते हैं-

'अब तक संन्यास लंगड़ा था, पंगु था, निर्भर था। और यह कितने दुख की बात है कि संन्यासी गृहस्थ पर निर्भर हो! और जिस पर तुम निर्भर हो, उससे ऊपर होने की आकांक्षा ही नासमझी है।

संन्यासी सोचता है कि वह ऊपर है और होता है निर्भर उस पर, जो उसके नीचे है। जीता श्रावक के ऊपर है, लेकिन सोचता है कि मैं ऊपर हूं। श्रावक ही ऊपर है; वह खुद के लिए भी आयोजन कर रहा है, तुम्हारे लिए भी आयोजन जुटा रहा है। उसका दान बड़ा है, उसकी सेवा बड़ी है।

अब तक संन्यासी अधूरा था। और निश्चित ही, अब तक संन्यासी बस्ती नहीं बसा सकते थे। संन्यासियों के लिए दूसरों की बस्तियां चाहिए। जिनको संन्यासी पापी कहता है, भटका हुआ कहता है, अंधेरे में पड़ा कहता है, मूर्च्छा में डूबा कहता है, जिनके लिए नरक का इंतजाम कर रखा है उसने, उनके ऊपर ही निर्भर होता है। यह बड़ी विंडबना की बात है... और फिर भी अपने को ऊपर मानता है!

तुम जिस पर निर्भर हो, उससे ऊपर नहीं हो सकते। और होता भी नहीं। बस, दिखावा होता है। संन्यासी को बिठा देते हो तुम ऊपर तख्त पर, नीचे तुम बैठते हो। लेकिन तुम जानते हो, बागडोर तुम्हारे हाथ में है।

मेरे पास संन्यासियों की खबरें आती हैं कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं, लेकिन अपने अनुयायियों के कारण आ नहीं सकते। उनके अनुयायी उन्हें आने नहीं देते!

यह बड़े मजे की बात है। तो अनुयायी नेता है? मार्गदर्शक है? मालिक है? है! क्योंकि वही भोजन देता है, वही औषधि देता है, और तुम्हें वह यह भी धोखा देता है कि तुम तख्त पर ऊपर बैठ जाओ, कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि वह जानता है कि तुम्हारी लगाम उसके हाथ में है। वह आखिरी निर्णायक है। यह संन्यास लकवा लगा संन्यास है, बीमार संन्यास है, रुग्ण संन्यास है।

मेरा संन्यासी पूरी बस्ती बसा सकता है और बसाएगा। क्योंकि जो तुम कर रहे हो, उससे मैं तुम्हें तोड़ नहीं रहा हूं। तुम जो कर रहे हो, उसे पूरे भाव से करना है, यही कह रहा हूं। तुम जो कर रहे हो, उसे ईश्वर–अर्पण करके करना है, इतना ही कह रहा हूं... तुम जो भी कर रहे हो!

तुम सड़क पर बुहारी लगाते हो, कि जूते बनाते हो, कि क्या करते हो, यह सवाल नहीं है। तुम जो भी करते हो, उसे ही ध्यानपूर्वक करना है। उसे ही ऐसी तल्लीनता से करना है कि वही तुम्हारी प्रार्थना, वही तुम्हारी साधना हो जाए। तब संन्यासी पूरी बस्ती बसा सकता है। तब सारी दुनिया संन्यासी की हो सकती है।

अब तक जो संन्यासी था, वह कभी भी पूरी दुनिया में नहीं फैल सकता था क्योंकि उसके ऊपर भारी बंधन थे।'

संसार में ही संन्यास का कमल खिल सकता है जैसे कीचड़ में कमल खिलता है। कीचड़ और कमल की कोई दुश्मनी नहीं है। ओशो ने हिमालय से उतारकर बाजार में लाकर संन्यास को और महिमावान और गरिमावान बना दिया है।

दूसरा प्रश्न– मैंने ओशो की किताब पढ़ी 'प्रीस्ट एंड पॉलिटीशियंस : माफिया ऑफ दि सोल', उनके क्रांतिकारी विचारों से बहुत प्रभावित भी हूं। इस विराट शोषण के षड़यंत्र से जगत को कैसे बचाया जाए? पूछती हैं नवांशहर, पंजाब से मां ज्ञान संतोष।

संतोष, निश्चित रूप से इस षड़यंत्र से बचाने के लिए जन जागृति फैलानी होगी, ओशो के इन क्रांतिकारी अद्भुत विचारों को घर–घर पहुंचाना होगा। हमारा पूरा अतीत इन दो शोषकों से दबा रहा है। धर्म के नाम पर और राजनीति के नाम पर समाज का शोषण हुआ है। इन दोनों के प्रति सावधान होना होगा।

मैंने सुना है स्कूल में तीन बच्चे बहुत देर से आए, एक का नाम था धर्मेश, एक का राजेश और एक का जगदीश। टीचर ने पूछा जगदीश तुम लेट क्यों आए? जगदीश ने कहा कि मैडम, मेरा एक रुपए का सिक्का सड़क पर गिर गया था मिला ही नहीं, बहुत देर लग गई उसको ढूंढने में, अंततः निराश होकर मैं वापस आया हूं, उसी के कारण विलम्ब हो गया। टीचर ने कहा कि राजेश तुम क्यों देर से आए? भगवान की कसम खाकर सच–सच बोलना। राजेश ने कहा कि मैडम अब भगवान की कसम दी है तो सच तो बोलना ही पड़ेगा। वास्तव में जगदीश का वह एक रुपया मैं अपने पैर के नीचे दबाकर खड़ा था तो जब तक जगदीश वहां से नहीं हटा तब तक मैं भी नहीं हट सकता था। फिर टीचर ने धर्मेश से पूछा कि तुम क्यों लेट

आए? धर्मेश ने कहा कि मुझे मालूम था कि राजेश के पैर के नीचे एक रुपए का सिक्का है और मुझे उसमें आठ आने कमीशन के लेने थे इसलिए मुझे देर हो गई। वास्तविकता वही है कि धर्मेश के नाम पर धर्म के ठेकेदार, राजेश के नाम से राजनीति के ठेकेदार... इन दोनों नें मिलकर जगदीश का, इस सारे संसार का शोषण किया है। ओशो की यह अद्भुत किताब 'प्रीस्ट एंड पॉलिटीशियंस : माफिया ऑफ दि सोल' संसार के हर व्यक्ति के पढ़ने लायक है।

तीसरा प्रश्न– जींद, हरियाणा से अरविंद जी पूछते हैं कि धर्म साधना में संलग्न रहने के कारण हमारा देश वैज्ञानिक व भौतिक दृष्टि से पिछड़ गया। फिर क्यों आप ओशोधारा वाले लोग हिन्दुस्तान में अध्यात्म का प्रचार करते हैं?

तुम जिसको अध्यात्म समझते हो हम यहां पर उन धार्मिक संप्रदायों की बात नहीं कर रहे हैं। अध्यात्म से मेरा तात्पर्य हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन इत्यादि से नहीं है। ओशो जब कहते हैं अध्यात्म तो उनका अर्थ है आत्मा का विज्ञान, चेतना का विज्ञान। हमारे भीतर जागरूकता कैसे विकसित हो, हम और ज्यादा प्रेमपूर्ण और करुणावान कैसे बनें, हम ज्यादा भाव से भरे, भक्ति से भरे कैसे बनें। याद रखना, भगवान की जरूरत नहीं है, भक्तिभाव की जरूरत है, अहोभाव की जरूरत है। मंदिर–मस्जिद की जरूरत नहीं है, मंदिर–मस्जिदों के नाम पर जो खून–खराबा हुआ है और ईश्वर के नाम पर जो शोषण हुआ है अब उसके दिन लद गए। ओशो जिसे संन्यास कहते हैं वह साइंस है और ओशो जिस 'जोरबा दि बुद्धा' वाली बात कर रहे हैं वह संसार का विरोधी नहीं है। ओशो भोग के खिलाफ नहीं हैं और त्याग के पक्ष में नहीं हैं। उनकी दृष्टि अद्भुत रूप से समन्वयवादी है। वे ठीक मध्य मार्ग के पोषक हैं।

आज पश्चिम विज्ञान का प्रतीक है, पूरब धर्म का प्रतीक है... ये दोनों ही अतियां गलत हैं। आपकी बात से मैं सहमत हूं कि धर्म साधना में संलग्न रहने के कारण हमारा देश भौतिकवाद में पिछड़ गया, वैज्ञानिक रूप से उन्नति नहीं कर पाया... यह बात सच है। इसका ठीक उल्टा भी सच है। विज्ञान की उन्नति में लगा हुआ, सुख–सुविधाओं में लगा हुआ पश्चिम, आध्यात्मिक रूप से पिछड़ गया, वहां ध्यान का विकास नहीं हो पाया, प्रार्थनाओं तक ही धर्म सीमित रह गया। योग का शास्त्र न विकसित हो पाया, तंत्र का विज्ञान न विकसित हो पाया। काश, इन दोनों का मिलन हो, बाहरी रूप से हमारे पास धन–दौलत भी हो, अच्छा मकान भी हो, स्वास्थ्य हो, सुंदर शरीर हो, लंबी आयु हो और भीतर हम शांत हों, प्रेमपूर्ण हों, करुणावान हों, ज्यादा चैतन्यपूर्ण हों... ये दोनों बातें एक साथ संभव हैं। ऐसा ही होना चाहिए। ध्यान का अर्थ है आत्मस्मरण, स्वयं के प्रति जागरूकता और प्रेम यानी दूसरों के प्रति संवेदनशीलता।

ओशो जिसे 'ध्यान' कहते हैं वह ध्यान और प्रेम इन दोनों का नाम है। इन दोनों के मार्गों से चलकर समाधि की मंजिल तक पहुंचते हैं। वह धर्म की पराकाष्ठा है, ओशो तो धर्म शब्द की जगह धार्मिकता शब्द को इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। उनकी एक किताब है 'मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं'। वे संगठन वाले धर्मों के खिलाफ हैं क्योंकि जहां संगठन

आता है वहां राजनीति आ जाती है। फिर वे राजेश, धर्मेश और जगदीश के एक रुपए के सिक्के पर खड़े हो जाते हैं। भविष्य में हम इन संप्रदायों से मुक्त हो जाएं, इनकी कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ तीन प्रकार के विज्ञान होने चाहिए– एक तो जगत से संबंधित, पदार्थ से संबंधित भौतिक विज्ञान। दूसरा मन से संबंधित मनोविज्ञान और तीसरा चेतना का विज्ञान अर्थात् अध्यात्म

निराश नहीं होओ, धीरे–धीरे वे दिन आ रहे हैं जब ओशो का यह सपना साकार होगा। माना कि अतीत गलत था। स्किजोफ्रेनिक, स्प्लिट पर्सनालिटी, खंडित व्यक्तित्व में सारी मनुष्य जाति जी। कुछ लोग अध्यात्मवादी हुए, कुछ लोग भौतिकवादी हुए, दोनों आधे–अधूरे थे, पूर्णता नहीं हो पाई। एक पूर्ण संस्कृति का, एक नए मनुष्य का जन्म ओशो के क्रांतिकारी विचारों पर आधारित हो सकता है। सुनो साहिर लुधियानवी का यह प्यारा गीत–

वह सुबह कभी तो आएगी, वह सुबह कभी तो आएगी,
इन काली सदियों के सर से जब रात का आंचल ढलकेगा,
जब रात का आंचल ढलकेगा, जब दुख के बादल पिघलेंगे,
जब सुख का सागर छलकेगा, जब अंबर झूम के नाचेगा,
जब धरती नग्मे गाएगी, वह सुबह कभी तो आएगी।

निश्चित रूप से वह भोर होने वाली है। और वह भोर कहीं और से नहीं होगी, हमसे ही होगी, हमारे माध्यम से ही होगी।

माना कि अभी कुछ दूर वो दिन, अरमानों की कीमत कुछ भी नहीं,
मिट्टी का भी है कुछ मोल मगर इंसानों की कीमत कुछ भी नहीं,
अपनी काली करतूतों पर जब ये दुनिया शर्माएगी,
वह सुबह कभी तो आएगी।
बीतेंगे कभी तो दिन आखिर ये भूख के और बेकारी के,
टूटेंगे कभी तो बुत आखिर दौलत के इजारेदारी के,
जब एक अनोखी दुनिया की बुनियाद उठाई जाएगी,
वह सुबह कभी तो आएगी।
वह नई दुनिया विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय होगी।
मजबूर बुढ़ापा जब सूनी राहों की धूल न फांकेगा,
मासूम लड़कपन जब गंदी गलियों में भीख न मांगेगा,
हक मांगने वालों को जिस दिन सूली न दिखाई जाएगी,
वह सुबह कभी तो आएगी।
गरीबी मिट सकती है ज्ञान से, उद्योग से, औद्योगिक क्रांति से।
फांकों की चिताओं में जिस दिन इंसां न जलाए जाएंगे,
सोने के दहकते दोज़ख में अरमां न जलाए जाएंगे,
यह नर्क से भी गंदी दुनिया जब स्वर्ग बनाई जाएगी,

वह सुबह कभी तो आएगी।
जब धरती करवट बदलेगी जब कैद से कैदी छूटेंगे,
जब जुल्म के बादल छटेंगे पापों के घरौंदे फूटेंगे,
उस सुबह को हम ही लाएंगे वह सुबह हमीं से आएगी।

स्मरण रखना, कोई चमत्कार नहीं होने वाला, कोई आकाश से उतरकर दुनिया को नहीं बदलने वाला। अगर इस दुनिया को स्वर्ग बनाना है तो हमीं को बनाना होगा। हमें और समझदार बनना होगा।

मनहूस समाज के ढांचों में जब जुल्म न पाले जाएंगे,
जब हाथ न काटे जाएंगे जब सर न उछाले जाएंगे,
ये दुनिया हंसी खुशहाली के फूलों से सजाई जाएगी,
वह सुबह हमीं से आएगी।
मीरा की पायल कान्हा की बांसुरी बजाई जाएगी,
वह सुबह हमीं से आएगी।

भूख मिटे, बेकारी मिटे, सारी सुंदर व्यवस्थाएं दुनिया में हों, यह दुनिया बाहर से स्वर्ग बने केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। भीतर कान्हा की बांसुरी भी बजे, भीतर अनहद का नाद भी गूंजे तब जाकर एक संपूर्ण संस्कृति का जन्म होगा, ओशो उसी को कहते हैं नया मनुष्य अथवा 'जोरबा दि बुद्धा'। विज्ञान से सुख आएगा, अध्यात्म से शांति आएगी और जहां सुख और शांति का मिलन होगा वहां उत्सव होगा। तब यह सारी दुनिया एक उत्सव मनाएगी। हम उसके केवल निरीक्षक नहीं हैं, हम केवल तमाशबीन नहीं हैं, हम उसके भागीदार हैं, वह सुबह हमीं से आएगी, वह सुबह हमीं से आएगी।

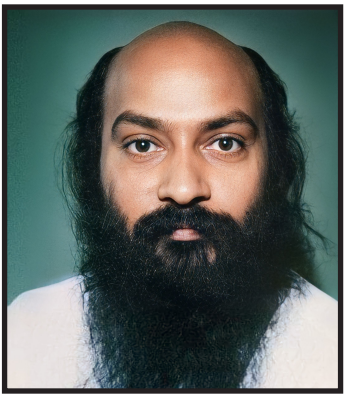

अध्याय–17

दुख का कारण

आज का पहला प्रश्न पूछा है नवांशहर, पंजाब के ओम प्रकाश चोपड़ा जी ने। मुझे क्रोध बहुत आता है। लोगों को सुधारने के लिए जरूरी भी है। लेकिन जिनकी भलाई हेतु नाराज होता हूं वे ही लोग दुखी हो जाते हैं। बाद में मुझे भी पश्चाताप और दुख होता है। अगर मैं गुस्से को प्रकट न करूं तो भी दुखी रहता हूं। सबको सुधारने और खुश रखने की कोशिश में मेरी खुद की मनस्थिति बिगड़ती जा रही है। फिर भी दुष्ट लोग मेरे नेक इरादे समझ नहीं पा रहे हैं। मैं करूं तो क्या करूं? अब तो अपने पर ही गुस्सा आने लगा है। आप ही मेरे दुख के कारणों को मिटाएं अर्थात् नासमझ लोगों को सद्बुद्धि देने की अनुकंपा करें?

ओमप्रकाश चोपड़ा जी आप गलत जगह आ गए। मैं कोई अनुकंपा नहीं करता, मैं कोई आशीर्वाद नहीं देता, मैं तुम्हारी बीमारी का निदान कर सकता हूं, तुम्हें समझा सकता हूं। तुम जिन्हें दुख के कारण बता रहे हो वे दुख के कारण नहीं हैं। तुम कह रहे हो दुष्ट लोग, मुझे तो तुम्हारे अंदर ही दुष्टता दिखाई दे रही है, तुम महाअहंकारी हो। तुम क्यों मुफ्त में सुधारक बन बैठ हो, किसने तुम्हें समाज सुधारक नियुक्त किया है! मैं देखता हूं बहुत लोग जिंदगी में इसलिए परेशान हैं क्योंकि वे दुनिया को सुधारने में लगे हैं। ये लोग कहते हैं कि परमात्मा ने दुनिया को रचा। क्या तुम परमात्मा से ज्यादा समझदार हो कि उसकी इस दुनिया को सुधारोगे? महिलाएं तो अपना पूरा जीवन ही न्योछावर कर देती हैं सुधारने में। पहले

दस–पंद्रह साल पतिदेव को सुधारने की कोशिश चलती रहती है लेकिन पति सुधरते नहीं, फिर बच्चे बड़े हो जाते हैं, वे बिगड़ने लगते हैं फिर उनको सुधारने की कोशिश शुरू, दस–पंद्रह साल बच्चों को सुधारो मगर वे भी नहीं सुधरते। फिर बहुएं आ जाती हैं तो उनको सुधारने की कोशिश, फिर नाती–पोतों को सुधारने की कोशिश और सुधारते–सुधारते एक दिन स्वर्ग सिधार जाती हैं लेकिन सुधरता कोई नहीं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान की कब्र पर शिलालेख लगा हुआ है, इस कब्र में एक ऐसी स्त्री सो रही है जो जिंदगी भर अपने पति को प्रसन्न करने की कोशिश करती रही और अंततः मरकर सफल हुई। ओमप्रकाश तुम कह रहे हो कि मैं लोगों को खुश करने की और सुधारने की कोशिश करता हूं लेकिन कोई खुश नहीं होता और तुम खुद भी दुखी हो रहे हो। हो सकता है तुम्हारी स्थिति भी गुलजान जैसी हो, देखना कहीं तुम्हारी कब्र पर भी ऐसा ही शिलालेख न लगे! एक दिन वो आएगा जब लोग जरूर खुश होंगे, लेकिन दुख की बात है कि तुम वह दिन नहीं देख पाओगे!

मैंने सुना है हिटलर ने किसी ज्योतिषी को बुलाकर पूछा कि मेरी मृत्यु कब होगी? ज्योतिषी स्वयं यहूदी था। आप तो जानते ही होंगे कि हिटलर ने कोई साठ लाख यहूदियों की हत्या की, वह यहूदियों के सख्त खिलाफ था। तो उस ज्योतिषी ने बिना हाथ देखे, बिना कुंडली देखे ही कह दिया कि किसी बड़े यहूदी पर्व के दिन आपकी मृत्यु होगी। हिटलर ने पूछा कि यहूदी पर्व तो साल भर में सात–आठ आते हैं, कौन सा त्योहार? उस ज्योतिषी ने कहा कि आप चिंता न करें कि कौन सा त्योहार, जिस दिन आप मरेंगे वही दिन यहूदियों के लिए त्योहार हो जाएगा। चोपड़ा जी जरा सम्हलना, तुम क्यों लोगों के पीछे पड़े हुए हो। वे तुम्हारे दुख का कारण नहीं हैं, तुम्हारे दुख का कारण तुम्हारा अहंकार है। गौतम बुद्ध की वाणी धम्मपद को समझाते हुए परमगुरु ओशो कहते हैं–

'तुम्हारे मन में ही दुख का कारण है। जब भी तुम किसी को दुख देना चाहते हो, तुम दुख पाओगे। जब भी तुम दुख देने की आकांक्षा से भरे किसी विचार के पीछे जाते हो, तुम दुख के बीज बो रहे हो। दूसरे को दुख मिलेगा या नहीं, तुम्हें दुख जरूर मिलेगा। तुम अगर आज दुख पा रहे हो, तो बुद्ध कहते हैं, कल बोए गए बीजों का फल है। और अगर कल तुम चाहते हो दुख न पाओ, तो आज कृपा करना, आज बीज मत बोना।

यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है, सोचता है, व्यवहार करता है, या वैसे कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी जाती है तो बैलों के पीछे चाक चले आते हैं।

तुम्हारे मन में अगर किसी को भी दुख देने का जरा सा भी भाव है, तो तुम अपने लिए बीज बो रहे हो। क्योंकि तुम्हारे मन में जो दुख देने का बीज है, वह तुम्हारे ही मन की भूमि में गिरेगा, किसी दूसरे के मन की भूमि में नहीं गिर सकता। बीज तो तुम्हारे भीतर है, वृक्ष भी तुम्हारे भीतर ही होगा। फल भी तुम्हीं भोगोगे।

अगर बहुत गौर से देखा जाए, तो जब तुम दूसरे को दुख देना चाहते हो, तब तुमने

अपने को दुख देना शुरू कर ही दिया। तुम दुखी होना शुरू हो ही गए। तुम क्रोधित हो, किसी पर क्रोध करके उसे नष्ट करना चाहते हो; तुम उसे नष्ट करोगे या नहीं, यह दूसरी बात है, लेकिन तुमने अपने को नष्ट करना शुरू कर दिया।

बुद्ध कहते थे, क्रोध से बड़ी कोई मूढ़ता नहीं है। दूसरे के कसूर के लिए तुम अपने को दंड देते हो। एक आदमी ने तुम्हें गाली दी, कसूर उसका होगा, अब क्रोधित तुम हो रहे हो... दंड तुम अपने को दे रहे हो, कसूर उसका था। इससे ज्यादा मूढ़ता और क्या हो सकती है!

अगर तुम दुखी हो तो अपने को कारण जानना, अगर सुखी हो तो अपने को कारण जानना। अपने से बाहर कारण को मत ले जाना। वही धोखा है। इसको ही मैं धार्मिक क्रांति कहता हूं। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन के सारे कारणों को अपने भीतर देख लिया, वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। क्योंकि अब उसके हाथ में है बात। अब दुखी होना हो, तो तुम जानते हो कौन से बीज बोने हैं और सुखी होना हो, तो जानते हो कौन से बीज बोने हैं। अब कोई मजबूरी न रही। फिर अगर दुख में ही मजा लेना हो, तो मजे से बीज बोओ; कोई बाधा नहीं डाल सकता। लेकिन एक बात फिर तुम न कर सकोगे कि दुख के बीज बोओ और रोना भी रोओ कि मैं दुखी क्यों हूं! अपने ही हाथ से जहर पीओ, और फिर रोओ कि मैं मर क्यों रहा हूं! मरना हो, मजे से जहर पीओ। जीना हो, मत पीओ। तुम्हारे हाथ हैं, तुम्हारी प्याली है, तुम्हारा जहर है –और तुम्हीं को जीना या मरना है।'

सावधान, अपने अहंकार के प्रति! किसी को सुधारने की जरूरत नहीं है, जागने की जरूरत है। यह अहंकार ही तुम्हें दुख दे रहा है। जीवन को स्वीकारो तथाताभाव में, जीवन ऐसा है। और तब तुम पाओगे कि तथाताभाव के साथ अहंकार विदा हुआ, संघर्ष विदा हुआ और तब खुशी ही खुशी है, आनंद ही आनंद है। और जब तुम आनंदित होओगे तो संभव है कि तुम्हारे आनंद की सुवास आसपास के लोगों को भी सुगंधित कर दे।

दूसरा प्रश्न– फिरोजपुर, पंजाब के स्वामी योगरत्न पूछते हैं, कृष्ण के वचन 'मामेकम् शरणम् व्रज' के समान ही ओशो के एक खूबसूरत चित्र पर उनके हस्तलिखित वक्तव्य अंकित हैं– 'मैं सिखाने नहीं जगाने आया हूं, समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित करूंगा, यह मेरा आश्वासन है'। क्या उन्होंने अपना वादा निभाया?

गुरु को कुछ करना थोड़े ही पड़ता है, समर्पण स्वयं ही रूपांतरणकारी है– इस बात को गौर से समझना। शिष्य समर्पित होता है, अपने अहंकार को मिटाता है यह अहंकार का मिटना ही दुख के मिटने का कारण है। गुरु कुछ नहीं करता। अगर गुरु को ख्याल करना पड़े तो ओशो के दस लाख शिष्य हैं, दस लाख लोगों का हिसाब–किताब रखें कि इनको रूपांतरित करना है तब तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। ओमप्रकाश चोपड़ा जैसी हालत हो जाएगी। नहीं गुरु को कुछ भी नहीं करना पड़ता, शिष्य का समर्पण ही उसे रूपांतरित और परिवर्तित करता है। समर्पण का अर्थ अहंकार के ठीक विपरीत होता है। वही तो कृष्ण ने कहा– मामेकम् शरणम् व्रज, सर्व धर्मान् परित्यक्त, छोड़ सब धर्मों की बकवास अर्जुन और

मेरी शरण में आ। ऐसा मत सोचना कि कृष्ण अर्जुन के लिए कुछ विशिष्ट करेंगे। नहीं! जो होगा वह अर्जुन के भीतर ही होगा, अर्जुन के द्वारा ही होगा, उस रूपांतरण का कारण अर्जुन का झुक जाना होगा। ठीक ऐसे ही ओशो का यह वचन... निश्चित रूप से वह वादा पूरा होता है लेकिन कोई पूरा करने वाला नहीं है। वह अस्तित्वगत रूप से घटित होता है। कृष्ण का वादा भी पूरा होता है और ओशो का वादा भी पूरा होता है और इसकी सारी जिम्मेवारी शिष्य के ऊपर है, गुरु के ऊपर नहीं। सुनो यह प्यारा गीत–

झुकाई तेरे कदमों में जबसे खुदी मैंने,
तो पाई जिंदगी में एक नई खुशी मैंने।
गमे–जहां का असर दिल पर अब नहीं होता,
न जाने कैसे पाई है ये बुलंदगी मैंने,
न लुत्फ जुर्रते–इंकार में रहा बाकी,
फिर से सीखे हैं आदाबे–बंदगी मैंने।

बंदगी का तरीका सीखो। और वह तरीका क्या है? बड़ा आसान है– न लुत्फ जुर्रते इंकार में रहा बाकी, वह जो इंकार करने की प्रवृत्ति है उसमें लुत्फ न लो, उसमें रस न लो। वह जो संघर्ष की प्रवृत्ति है, दुनिया को बदलने की वृत्ति है उसको छोड़ो और तब तुम पाओगे कि आत्मरूपांतरण घटित हो गया। हम दुनिया को बदलने में लगे रहते हैं और खुद को बदलने से चूक जाते हैं। काश, हमारी नजर स्वयं पर आए। गुरु के प्रति समर्पण का भाव, परमात्मा के प्रति समर्पण का भाव कार्य करता है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि ईश्वर है कि नहीं, तुम्हारा समर्पण ही तुम्हें रूपांतरित करता है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि किसी नकली गुरु के सम्मुख, किसी असद गुरु के सम्मुख कोई सच्चा शिष्य झुक गया और रूपांतरण घट गया। गुरु का रोल कम और शिष्य का रोल ही इसमें ज्यादा है।

तीसरा प्रश्न– लक्ष्य और आदर्श मेरी जिंदगी के सपने हैं, मित्रों के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए राजी रहता हूं। दृढ़ संकल्प और संघर्ष मेरे जीवन रथ के घोड़े हैं। किन्तु द्वेषभाव मेरे जीवन का जहर है। इससे मुक्ति का सरल उपाय बताएं? पूछते हैं हिसार, हरियाणा से सोरन सिंह।

अगर पहले के दो प्रश्न तुमने गौर से समझे हैं तो इसका उत्तर तुम्हें खुद ही समझ में आ जाएगा। वह जो दुश्मनी का भाव है, द्वेषभाव है... तुम कह रहे हो वह तुम्हारे जीवन का जहर है। लेकिन तुम्हें यह समझ में नहीं आ रहा है कि वह जहर क्यों है? तुम कह रहे हो उच्च आदर्श, ऊंचे लक्ष्य... ये तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा और अहंकार के शब्द हैं। यह तुमने जो लक्ष्य बनाया है, यही लक्ष्य और बहुत लोगों का है। एक ही आदमी प्रधानमंत्री बनना नहीं चाहता है, करोड़ों लोग प्रधानमंत्री बनना चाह रहे हैं। तुम सबके साथ संघर्ष में उलझ गए, मुसीबत में फंसे, सबके साथ तुम्हारी प्रतियोगिता शुरू हो गई। फिर दुख ही दुख होगा, फिर जीवन में आनंद नहीं घटित हो सकता। जिसे तुम कह रहे हो कि दृढ़ संकल्प और संघर्ष मेरे जीवनरथ के घोड़े हैं, इन घोड़ों से मुक्त होना होगा। पूछ रहे हो कोई सरल सा उपाय बताएं? तुम अपने

जीवन रथ के इन घोड़ों को छोड़ो, संघर्ष और दृढ़ संकल्प को छोड़ो। अच्छे-अच्छे शब्दों के पीछे तुम अपने अहंकार को छिपा रहे हो। तुम मुझे शब्दों से धोखा न दे सकोगे क्योंकि तुम्हारा द्वेषभाव स्पष्ट कर रहा है, परिणाम से पता चलता है, फल से पता चलता है कि बीज कैसा है। अगर फल मीठा नहीं आया तो निश्चित जानना कि बीज कड़वा रहा होगा। शब्दों के साथ हम प्रवंचना में पड़ जाते हैं, आत्मप्रवंचना में पड़ जाते हैं। तुम कह रहे हो कि अपने मित्रों के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए तैयार रहता हूं। यह भी तुम्हारे अहंकार का एक तरीका है। वास्तव में जिस व्यक्ति के बहुत मित्र होंगे उस व्यक्ति के बहुत शत्रु होंगे। इसके मनोविज्ञान को समझो। मित्र और शत्रु कैसे निर्मित होते हैं, उनकी मूल जड़ क्या है? उनकी मूल जड़ है हमारी कामना। जो व्यक्ति हमारी कामना में सहयोगी होता है उसको हम दोस्त कहते हैं और जो हमारी वासनाओं में बाधा पहुंचाता है उसको हम दुश्मन कहते हैं। तो जितना कामी व्यक्ति होगा, जितना वासनाओं से भरा होगा, जितना लक्ष्य, आदर्श, महत्त्वाकांक्षा और प्रतियोगिता की भावना उसके भीतर होगी उतना ही वह पाएगा कि सब तरफ से संघर्ष शुरू हो गया। उपनिषद् में एक प्यारी कहानी आती है-

एक चील का छोटा बच्चा जिसने अभी-अभी उड़ना सीखा था, उसने एक कूड़ाघर से मरे हुए चूहे को उठाया और उसको लेकर उड़ रहा है। तभी उसने देखा कि बहुत सारी चीलें उसके पीछे पड़ गईं और उसको चोंच मार-मारकर घायल करने की कोशिश कर रही हैं। इस छोटे चील के बच्चे को, जो पहली बार उड़ा है, पहली बार जिसने शिकार ढूंढ़ा है, उसको समझ में नहीं आया कि ये मेरे दुश्मन क्यों हो गए। लेकिन उस चोंच मारने में संघर्ष करते-करते उसके मुंह से चूहा छूट गया। जैसे ही वह चूहा नीचे गिरा तो सारी चीलें चूहे के पीछे भागीं और तब उस चील के बच्चे को समझ में आया कि उनकी दुश्मनी मुझसे न थी। उनकी दुश्मनी इसलिए थी कि जिसे मैंने पाया है उसी को वे भी पाना चाहती थीं। जब तक तुम्हारे अंदर प्रतियोगिता है, जब तक तुम्हारे अंदर महत्त्वाकांक्षा है तब तक तुम सबसे संघर्ष मोल ले रहे हो। अब बच न सकोगे संघर्ष से। अगर द्वेषभाव से मुक्ति चाहते हो, तो भीतर के अहंकार से भी मुक्त होना होगा।

अंतिम प्रश्न- अमेरिका जैसे उन्नत देश ने ओशो का विरोध क्यों किया? पूछते हैं सागर, मध्यप्रदेश के स्वामी योग देवेन्द्र।

देश ने नहीं, कुछ मूढ़ राजनेताओं ने और कुछ अविकसित बुद्धि के लोगों ने, कट्टरपंथी धार्मिक लोगों ने विरोध किया। ईसाइयों को लगा कि आज तक ईसाइयों ने आदिवासियों को, गरीबों को, लोभ और लालच देकर बदला है। उन्हें खतरा लगा कि भारत से आकर कोई व्यक्ति लोगों का हिन्दूकरण कर रहा है। यद्यपि ओशो किसी को हिन्दू नहीं बना रहे थे किन्तु गेरुआ वस्त्र और माला देखकर वे समझे कि हिन्दू बनाया जा रहा है। इसलिए कट्टरपंथी ईसाई नाराज हो गए, देश के मूढ़ राजनेता नाराज हो गए, उनकी नाराजगी स्वाभाविक थी। याद रखना, अमेरिका के बुद्धिजीवियों ने विरोध नहीं किया। अमेरिका के बुद्धिजीवी तो ओशो से बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने तो ओशो का बहुत सम्मान किया। अमेरिका की पूरी इंटेलिजेंस

ओशो से आकर्षित हुई और यही कारण था कि कट्टरपंथी लोग और नाराज हुए क्योंकि उनको लगा कि हमारे यहां के प्रतिभाशाली लोग बदल रहे हैं। ईसाइयों ने दुनिया में दूसरों को ईसाई बनाया है, उन्होंने दरिद्रों को, गरीबों को, अशिक्षितों को, आदिवासियों को ईसाई बनाया है, प्रतिभाशाली लोगों को नहीं। भारत में उच्च वर्ग के लोग ईसाई नहीं बनते, अमीर वर्ग के लोग ईसाई नहीं बनते। अमेरिका में ठीक उल्टा हुआ।

अमेरिका के प्रतिभाशाली लोग ओशो से आकर्षित हुए और ओशो के संन्यासी बने, इसलिए वहां के कट्टरपंथी ईसाई लोग और मूढ़ नेता नाराज हुए। अमेरिका के बौद्धिक लोग नाराज नहीं हुए, बौद्धिक लोग तो ओशो से बहुत प्रभावित हुए। इस बात को गौर से समझना, एक देश में कई सदियों के लोग रहते हैं, पंद्रहवी सदी के लोग भी अभी जी रहे हैं, इक्कीसवीं सदी के लोग भी हैं, कुछ लोग तो आदिवासी जमाने के भी हैं, कुछ लोग बाईसवीं सदी के हैं जिन्हें हम जीनियस कहते हैं। तो जो विकसित लोग थे उन्होंने ओशो का स्वागत किया लेकिन जो पिछड़ी मानसिकता के लोग थे उन्होंने विरोध किया, पूरे देश का नाम न लो।

अध्याय–18

आंतरिक तृप्ति कैसे मिले?

गोंदिया, महाराष्ट्र से रवि अग्रवाल जी पहला सवाल पूछते हैं कि मैं एक गरीब बाप का अमीर बेटा हूं। अपनी कड़ी मेहनत से संसार की सभी सफलताएं हासिल की हैं मगर आंतरिक तृप्ति नहीं मिली। भीतर की पीड़ा और बेचैनी समाप्त करने के लिए अब और क्या करूं, समझ में नहीं आता। मुझे किसी भी प्रकार संतोष चाहिए।

शुभ हो रहा है, सुंदर हो रहा है। इसे दुर्भाग्य न समझना। यह बेचैनी, यह पीड़ा तुम्हें आत्मरूपांतरण की ओर ले जाएगी। यह जो अतृप्ति है, यह दिव्य असंतोष है यह साधारण पीड़ा नहीं है। इस बिन्दु पर पहुंचकर या तो कोई व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है या आत्मरूपांतरण की दिशा में चला जाता है। एक संक्रमणकाल से तुम गुजर रहे हो रवि अग्रवाल, सुंदर हो रहा है, शुभ हो रहा है। सामान्यतः हम जिन्हें पीड़ाएं कहते हैं, शारीरिक कष्ट या मानसिक वेदनाएं या हृदय में लगी चोट, वे कोई सचमुच की पीड़ाएं नहीं हैं। सब प्रकार की सुख–सुविधा हो और तब भी तुम्हें कुछ कमी महसूस हो ऐसी पीड़ा आध्यात्मिक पीड़ा है, इससे ही जीवन में रूपांतरण का बिन्दु आता है। इस पीड़ा को दुर्भाग्य मत समझना। सुनो यह प्यारा गीत किसी कवि ने लिखा है–

कुछ आंसू बन गिर जाएंगे, कुछ दर्द चिता तक जाएंगे,
उनमें ही कोई दर्द हमारा भी होगा।

सड़कों पर मेरे पांव हुए कितने घायल,
यह बात गांव की पगडंडी बतलाएगी,
सम्मान सहित हम सब कितने अपमानित हैं,
यह चोट हमें जाने कब तक तड़पाएगी,
कुछ टूट रहे सुनसानों में, कुछ टूट रहे तहखानों में,
उनमें ही कोई चित्र हमारा भी होगा।
उनमें ही कोई दर्द हमारा भी होगा।
वे भी दिन थे जब मरने में आनंद मिला,
ये भी दिन हैं अब जीने से घबराता हूं,
वे दिन बीत गए हैं, ये भी बीतेंगे,
यह सोच किसी सैलानी सा मुस्काता हूं,
कुछ अंधियारे में चमकेंगे, कुछ सूनेपन में खनकेंगे,
उनमें ही कोई स्वप्न हमारा भी होगा,
उनमें ही कोई दर्द हमारा भी होगा।
अपना ही चेहरा चुभता है कांटों जैसा,
जब संबंधों की मालाएं मुरझाती हैं,
कुछ लोग कभी जो छूटे पिछले मोड़ों पर,
उनकी यादें नींदों में आग लगाती हैं,
कुछ राहों में बेचैन पड़े, कुछ बाहों में बेचैन खड़े,
उनमें ही कोई प्राण हमारा भी होगा,
उनमें ही कोई दर्द हमारा भी होगा।
साधु हो या सांप कोई अंतर नहीं,
जलता जंगल दोनों को साथ जलाता है,
कुछ ऐसी ही है आग हमारी बस्ती में,
पर ऐसे में कोई दीवाना गीत भी गाता है,
कुछ महफिल की जय बोलेंगे
कुछ दर्द दिल के टटोलेंगे,
उनमें ही कोई गीत हमारा भी होगा,
रूठा हुआ कोई मीत हमारा भी होगा।
टूटा कोई चित्र हमारा भी होगा।
रूप न ले सका स्वप्न हमारा भी होगा।
बुझे दीप सा प्राण हमारा भी होगा।
दर्द के मारों में नाम हमारा भी होगा।

ये जिंदगी है क्या? इसके सुख–दुख सपनों में टंगे चित्र जैसे हैं, सब धूल–धूसरित हो जाएंगे, सब मिट्टी में मिल जाएंगे। काश, यह बात किसी को ख्याल आ जाए जीते–जी तो फिर एक गहन पीड़ा और बेचैनी उसे घेर लेती है। लेकिन यह पीड़ा बदकिस्मती नहीं, खुशकिस्मती है। कोई बुद्ध इसी पीड़ा से गुजरे होंगे, कोई महावीर इसी प्रकार की पीड़ा और बेचैनी से गुजरे होंगे तभी तो उनके जीवन में साधना की शुरुआत हुई। रवि अग्रवाल, प्रसन्न होओ कि तुम्हारे जीवन में धार्मिक क्रांति का बिन्दु आ गया। 'धम्मपद' पर बोलते हुए परमगुरु ओशो ने बड़े अद्भुत वचन कहे हैं। जरा गौर से सुनो–

'पीड़ा तुम जिसे कहते हो, वह पीड़ा नहीं है। कभी तुम कहते हो पैर में कांटा लग गया, कभी सिर में दर्द है, कभी नौकरी नहीं मिली, कभी पत्नी मर गयी– ये असली पीड़ाएं नहीं हैं। पत्नी न मरे, पैर में कांटा न लगे, सिर में दर्द न हो, तो भी पीड़ा रहेगी। पीड़ा एक है, और वह पीड़ा यह है कि जो तुम लेकर आए हो वह लुटा नहीं पाए अब तक। जो तुम सम्हाले चल रहे हो उसे बांट नहीं पाए। तुम एक ऐसे मेघ हो जो बरसना चाहता है और बरस नहीं पाता। तुम एक फूल हो जो खिलना चाहता है और खिल नहीं पाता। तुम एक ज्योति हो जो जलना चाहती है और जल नहीं पाती। यही पीड़ा है। कांटे का लग जाना, सिर का दर्द, पत्नी का मर जाना, पति का न होना, बहाने हैं। इन बहानों की खूंटियों पर तुम असली पीड़ा को ढांककर अपने को धोखा दे लेते हो।

थोड़ा सोचो, कोई पीड़ा न रहे... जिसे तुम पीड़ा कहते हो, क्या तुम आनंदित हो जाओगे? क्या इतना काफी होगा कि सिर में दर्द न हो? आनंदित होने के लिए क्या इतना काफी होगा कि कांटा न लगे? क्या इतना काफी होगा कि कोई बीमारी न आए? क्या इतना काफी होगा कि भोजन, वस्त्र, रहने की सुविधा हो जाए? क्या इतना काफी होगा की प्रियजन मरें न? विज्ञान इसी चेष्टा में लगा है क्योंकि विज्ञान ने सामान्य आदमी की पीड़ा को ही असली पीड़ा समझ लिया है।

वस्तुतः स्थिति उलटी है। जब तुम्हारी सब सामान्य पीड़ाएं मिटा दी जाएंगी, तब ही तुम्हें पहली दफा पता चलेगा उस महत्त्वपूर्ण पीड़ा का, असली पीड़ा का। क्योंकि तब बहाने भी न रह जाएंगे। तुम कहोगे सिर में दर्द भी नहीं है, पैर में कांटा भी नहीं है, पत्नी भी जिंदा है, मकान भी है, वस्त्र भी है, भोजन भी है, सब है। सब है, और कहीं कुछ रिक्त और खाली है।

इसलिए अमीर आदमी पहली दफा पीड़ित होता है। गरीब की पीड़ा तो हजार बहानों में छिप जाती है। वह कहता है, मकान होता तो सब ठीक हो जाता, मकान नहीं है। वर्षा में छप्पर में छेद हैं, पानी गिर रहा है, छप्पर ठीक होता तो सब ठीक हो जाता। उसे पता नहीं कि ठीक छप्पर बहुतों के हैं, कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। उसके पास कम से कम एक बहाना तो है! अमीर के पास वह बहाना भी न रहा। उस हालत में अमीर और गरीब हो जाता है। उसके पास बहाना तक नहीं है कि वह किसी चीज पर अपनी पीड़ा को टांग दे और कह दे कि इसके कारण पीड़ा है। अकारण पीड़ा है।

उस अकारण पीड़ा से ही धर्म का जन्म है।

पीड़ा क्या है? पीड़ा ऐसी ही है जैसे कोई स्त्री गर्भवती हो, नौ महीने पूरे हो गए हों, और बच्चा पैदा न होता हो। बोझ हो गया। बच्चा पैदा होना चाहिए। कितने जन्मों से तुम परमात्मा को गर्भ में लिए चल रहे हो। वह पैदा नहीं हो रहा है, यही पीड़ा है। ठीक पीड़ा को पहचान लेना रास्ते पर अनिवार्य कदम है। जब तक तुम गलत चीजों को पीड़ा समझते रहोगे और उनको ठीक करने में लगे रहोगे, तभी तक तुम संसारी हो।'

दूसरा प्रश्न– क्या अष्टांग योग में क्रमिक साधना की अनिवार्यता है? पूछते हैं नवांशहर, पंजाब से डॉ. लेखराज माही।

जीवन में सभी चीजों का एक क्रम होता है, एक सीक्वेंस। और उस सीक्वेंस में चलकर ही हम अपनी मंजिल तक पहुंच पाते हैं। इस क्रम को जो तोड़ने की कोशिश करते हैं उनके जीवन में मंजिल नहीं आती। चलते बहुत हैं लेकिन वह चलना केवल भटकन ही होता है। हमेशा यह याद रखना कि चीजों के क्रम को तोड़ने की कोशिश न करना, शॉर्टकट खोजने की कोशिश न करना। महर्षि पतंजलि ने योग साधना में आठ अंग कहे। वे क्रमशः परिधि से केन्द्र की ओर जाने के सोपान हैं। सबसे पहले यम और नियम कहे जो कि संसार से संबंधित हैं, बाहर की घटनाओं से संबंधित हैं, समाज से संबंधित हैं। बाहर के जगत में हमें कैसा व्यवहार करना है, हमारा आचरण कैसा हो उससे संबंधित हैं यम और नियम। यम का अर्थ है क्या–क्या नहीं करना है, संयम। और नियम का अर्थ है क्या–क्या करना है। इसके बाद अगले दो सोपान हैं आसन और प्राणायाम, वे हमारे शरीर से संबंधित हैं। अब हम समाज और संसार से मुक्त हुए और अपनी देह पर आए। आसन को साधो शरीर को थिर कर लो, शरीर थिर होगा तो मन की चंचलता भी विलीन होगी। प्राणायाम कर लो ऊर्जा को जगा लो। तुम्हारी श्वास नियंत्रित होगी तो भीतर भी एक गहन मौन घटित होगा। उस अतिशय ऊर्जा में, शक्ति के अतिरेक में ही अंतर्यात्रा संभव है। अगर तुमने शॉर्टकट साधा, बिना प्राणायाम के ध्यान में जाने की कोशिश की तो जा ही नहीं पाओगे। यात्रा के लिए ऊर्जा तो चाहिए, कार के लिए पेट्रोल तो चाहिए। जब बहिर्यात्रा तक में शक्ति की आवश्यकता पड़ती है तो क्या भीतर की यात्रा बिना शक्ति के हो जाएगी। तो शरीर को कर लो थिर ताकि ऊर्जा वहां प्रवाहित न हो और प्राणायाम कर लो। प्राणायाम से जो शक्ति जागेगी फिर वह कहां जाएगी। शरीर तो हो गया थिर, अब तो एक ही उपाय बचा, वह भीतर की तरफ जाएगी। अगले दो सोपान मन से संबंधित हैं– प्रत्याहार और धारणा। प्रत्याहार यानी भीतर की तरफ मुड़ना। जिसे महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है, जापान के झेन फकीर कहते हैं 'रिटर्निंग टू दि सोर्स', उद्गम की ओर वापसी। मध्य युग के संतों ने इसको 'मीन मार्ग' कहा है... जैसे मछली नदी में उल्टी दिशा में बहती है। गंगा में बहने वाली मछली गंगोत्री की तरफ बहने की कोशिश करती है... वह है प्रत्याहार, वह है प्रतिक्रमण। ये हमारी चेतना अंतस के जिस स्रोत से आई है, उसी स्रोत की ओर वापस लौट चले। बहिर्मुखी चेतना अंतस्मुखी हो जाए, एक्सट्रोवर्ट की जगह इंट्रोवर्ट हो जाए, इसका नाम प्रत्याहार है। फिर धारणा... अब अपने मन का उपयोग कर लो, ऐसी

विधायक धारणाओं में डूबो जो ध्यान में डूबने में सहयोगी हैं। धारणाएं दो प्रकार की हो सकती हैं– एक वे जो हमें और–और बहिर्मुखी कर दें और एक वे जो हमें भीतर की तरफ ले जाएं। अगर तुम भाव करो कि शिथिल हो रहे हो, शांत हो रहे हो, प्रसन्न हो रहे हो तो यह धारणा काम करेगी। क्योंकि हमारा तनाव भी हमारी धारणा और हमारा सम्मोहन ही है। हम हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं कि तनावग्रस्त हैं। अगर हम विपरीत धारणा कर लें एंटीहिप्नोटिक सजेशन अपने आपको दें कि मैं शिथिल हो रहा हूं, मैं शांत हो रहा हूं तो शिथिलता और शांति घटित हो जाएगी। भाव की बात है। इसके बाद अगले दो चरण आत्मा से संबंधित हैं– ध्यान और समाधि। ध्यान का अर्थ है निर्विचार जागरूकता, भीतर मौन घट जाए। आसन में शरीर थिर हुआ था, ध्यान में मन स्थिर हो जाए, सारी हलन–चलन बंद, सारी गतिविधियां बंद। और समाधि का अर्थ है ओंकार का ज्ञान, परमात्मा में डुबकी, समाधि का अर्थ है भीतर आत्मा के केन्द्र में जो परम आत्मा मौजूद है– परमात्मा, वहां जो ईश्वर का स्वर गूंज रहा है उसके साथ एकात्म हो जाना। तो ये आठ चरण की क्रमिक साधना है, इस क्रम से बचने की अगर तुमने कोशिश की तो बुरी तरह उलझ जाओगे। कई मित्र सीधे ही ध्यान और समाधि साधने की कोशिश करते हैं, यम–नियम की बात ही नहीं करते, आसन–प्राणायाम को बाईपास कर जाते हैं फिर ध्यान–समाधि नहीं लगेगी।

मैंने सुना है एक छोटा बच्चा अपनी मां से पूछ रहा था कि कल मेरे बर्थडे के लिए आपने जो केक बनाया है कृपया मुझे आज ही दे दीजिए मैं आज ही खा लेना चाहता हूं। उसकी मां ने कहा कि बेटा बर्थडे कल है तो कल खाना। उसने कहा कि नहीं, मेरी टीचर ने मुझे आज बताया है कि कल का काम आज ही कर लेना चाहिए। काल करे सो आज कर, आज करे सो अब। शीघ्रता नुकसान पहुंचाएगी।

एक और कहानी मैंने सुनी है। एक मुसाफिर को सुबह छः बजे की ट्रेन पकड़नी थी, लेकिन सुबह छः बजे कोई साधन नहीं था स्टेशन तक पहुंचने के लिए। किसी ने उसे बताया कि यूं तो रास्ता लंबा है किन्तु एक शॉर्टकट है जो कि एक किसान के खेत से होकर जाता है। अगर वह किसान अनुमति दे दे तो तुम सुबह उठकर इधर से जल्दी पहुंचकर ट्रेन पकड़ सकते हो। वह उस किसान के पास गया और पूछा कि क्या मैं आपके खेत में से होकर गुजर सकता हूं क्योंकि मुझे सुबह छः बजे की ट्रेन पकड़नी है? किसान ने क्रोध में झुंझलाकर कहा कि अनुमति तो मैं दे दूंगा लेकिन याद रखना, अगर मेरे खूंखार कुत्ते ने तुम्हें देख लिया तो तुम छः बजे के बजाय पांच बजे की ट्रेन पकड़ लोगे। छः बजे की ट्रेन जाती है दिल्ली और पांच बजे की जाती है बंबई, दिल्ली की जगह बंबई पहुंच जाओगे। अगर हमने शीघ्रता की और शॉर्टकट खोजने की कोशिश की तो वही दुर्गति होगी। हम अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच पाएंगे, कहीं और पहुंच जाएंगे। तो क्रम को हमेशा याद रखना।

सुना है कि सेठ चंदूलाल ड्राईक्लीनर की दुकान पर पहुंचे और कहा कि मैंने अपना सूट आपको दिया था जिसका रंग उड़ गया था। उसे कलर करना था और उसका ड्राई क्लीनिंग करना था। तो क्या वह तैयार है? दुकानदार ने कहा कि क्षमा करें, आपका सूट तो गुम हो

गया, नहीं मिल रहा है लेकिन उसका बिल ये है। सौ रुपए कलर करने के और डेढ़ सौ रुपए ड्राई क्लीनिंग के, कुल ढाई सौ रुपए मुझे दे दीजिए। चंदूलाल ने कहा कि हद हो गई! एक तो मेरा सूट गुम कर दिया और ऊपर से ढाई सौ रुपए मांग रहे हो। ड्राई क्लीनर ने कहा कि क्षमा करें, कलर और ड्राई क्लीनिंग करने के बाद गुम हुआ है। क्रम को याद रखिए, सीक्वेंस में।

एक और अद्भुत कहानी सुन रहा था मैं– एक छोटी बच्ची से उसका पिता पूछता है कि बेटी तुम बड़ी होकर क्या बनना चाहोगी? बेटी ने कहा कि मैं भी अपनी मम्मी की तरह मम्मी बनूंगी और फिर मैं शादी करूंगी, फिर उच्च शिक्षा ग्रहण करूंगी और स्कूल भी जाऊंगी। बाप ने कहा बेटी बिल्कुल ठीक मगर ठीक क्रम में करना। पहले स्कूल, फिर उच्च शिक्षा, फिर शादी, फिर मम्मी बनना। वही मैं आपसे कहना चाहता हूं, पहले यम–नियम साधना, फिर आसन–प्राणायाम, फिर प्रत्याहार–धारणा, फिर ध्यान और समाधि तब संबोधि की मंजिल तक पहुंच पाओगे।

कई मित्र पूछते हैं कि ओशो ने सीधे ध्यान करने के लिए क्यों कहा? ओशो ने खुद पतंजलि योग में इस बात को समझाया है। उन्होंने कहा कि आधुनिक युग में लोगों के पास धीरज नहीं है और इसलिए मैं उनको सीधे ध्यान में छलांग के लिए कहता हूं। छलांग तो लग जाएगी, क्षणिक जागरूकता का अनुभव होगा लेकिन वह सधेगा नहीं। एक बार झलक मिल जाए तब वे आकर पूछेंगे कि ध्यान सधता क्यों नहीं। तब मैं उनसे कहूंगा कि क्रम से चलो, अष्टांग योग की साधना करनी होगी, सीधा ध्यान नहीं सध सकता। लेकिन अगर एक बार झलक भी न मिली हो तब कोई व्यक्ति ये आठ बातें साधने को शायद तैयार ही न हो, इतनी प्रतीक्षा का उसका भाव न हो। तो ओशो ने जो ध्यान करने को कहा है याद रखना, इस आशा में कि तुम ध्यान करोगे तो हल्की सी झलक मिलेगी लेकिन वह झलक ठहरेगी नहीं तब तुम्हारे प्राण और भी तड़प जाएंगे कि कैसे उसे पाऊं! तब ओशो कहेंगे कि अब पूरी क्रमिक साधना से गुजरो, पूरे अष्टांग योग को साधना ही होगा, अध्यात्म का कोई शॉर्टकट नहीं है।

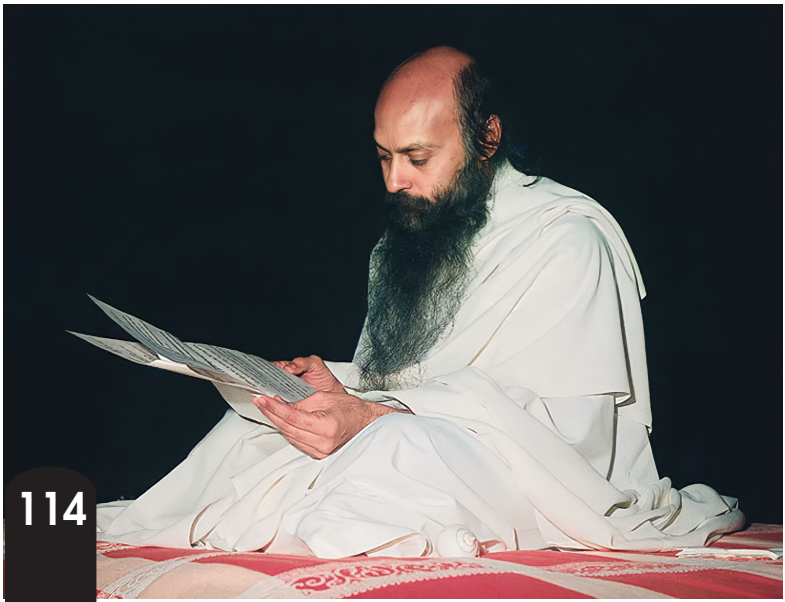

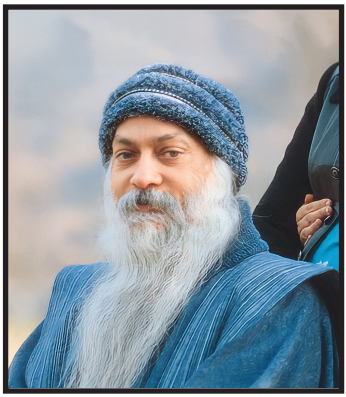

अध्याय–19

पौराणिक कथाओं के प्रतीक

आज के सत्संग का पहला प्रश्न मां प्रेम प्रभा मुंबई से पूछती हैं कि भगवान श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में ही शक्तिशाली राक्षसों और असुरों का वध कर दिया। इन अविश्वसनीय कथाओं के बारे में ओशो की दृष्टि स्पष्ट करने की अनुकंपा करें।

सामान्यतः दो प्रकार के दृष्टिकोण देखने में आते हैं– एक अंधविश्वासियों के, दूसरा श्रद्धालुओं के। कुछ लोग कहेंगे कि भगवान श्रीकृष्ण बचपन से ही अति शक्तिशाली थे, महाशक्तिशाली थे, बड़े–बड़े राक्षसों का उन्होंने वध कर दिया था। ये अंधविश्वासी लोग हैं। फिर स्वभावतः इसके विपरीत लोग होंगे विरोधी। वे कहेंगे कि यह हो ही नहीं सकता, असंभव है। तो विश्वासी और अविश्वासी, अंधविश्वासी और विरोधी ये दो दृष्टिकोण सामान्यतः दिखाई देते हैं। ओशो का दृष्टिकोण बिल्कुल तीसरा है। ओशो कहते हैं कि ये प्रतीक कथाएं हैं, सिम्बॉलिक, इसमें काव्य देखना, तथ्य नहीं। इनमें संकेत और इशारे छिपे हैं, उन संकेतों को समझना। अगर कृष्ण वास्तव में महाशक्तिशाली थे, इसलिए उन्होंने राक्षसों का वध कर दिया। तो फिर इसमें चमत्कार कहां हुआ! बड़ी मछली छोटी मछली को खा गई। ज्यादा शक्तिशाली ने कम शक्तिशाली को नष्ट कर दिया। इसमें चमत्कार कहां हुआ। इसलिए ओशो कह रहे हैं कि इसके प्रतीक को समझो। प्रतीक क्या है? ये जो छोटा

बच्चा है इसने बड़े–बड़े असुरों का वध कर दिया। जिसके भीतर हिंसा की प्रवृत्ति नहीं है, जो किसी को जीतना नहीं चाहता, जो कोमल और नाजुक है, प्रकृति उसके पक्ष में है। कृष्ण की इस कहानी को समझने के लिए जरूरी होगा कि हम चीन के महान संत लाओत्से को समझें। लाओत्से कहता है कि प्रकृति कोमल तत्व की रक्षा करती है, नाजुकता की रक्षा करती है। देखते हैं नाजुक सा फूल हजारों कांटों के बीच में भी सुरक्षित रहता है, देखते हैं एक छोटे से बच्चे के लिए प्रकृति सब प्रकार से व्यवस्था करती है और बूढ़ा व्यक्ति मृत्यु के निकट पहुंच रहा है। जो मजबूत हो गया है वह नष्ट होने के करीब है, छोटी सी बारीक सी पतली कोपल अभी विकसित होने को है, छोटी सी कली फूल बनने को है। देखते नहीं छोटा सा अंकुर जमीन को तोड़कर, पत्थरों को हटाकर, जमीन के ऊपर निकल आता है। बड़ी–बड़ी चट्टानें देखते हो कैसे टूटती हैं और रेत बन जाती हैं? पानी की वजह से। पानी का बर्फ बड़ी–बड़ी दरारों में घुसकर चट्टानों को तोड़ देता है। झरनों का पानी निरंतर गिरता हुआ कोमल सा पानी लेकिन कठोर चट्टान को भी चकनाचूर कर देता है।

प्रतीक को समझना। पुरानी भाषा वैज्ञानिक भाषा नहीं थी, प्रतीकात्मक, काव्यात्मक भाषा थी। कथा के माध्यम से, कहानी के माध्यम से बात को कहा जाता था। तो भगवान कृष्ण ने जो असुरों का वध कर दिया वह सिर्फ प्रतीक है कि कोमल की जीत होती है। जिसके भीतर विजय की आकांक्षा नहीं है, उसकी विजय होती है। लाओत्से ने कहा है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका क्योंकि मैंने कभी जीतने की कोशिश ही नहीं की, मैं पहले ही चारों खाने चित्त हो गया। लाओत्से ने कहा है कि कभी कोई मेरा अपमान न कर सका क्योंकि मैंने कभी सम्मान चाहा ही नहीं और कभी किसी सभा से मुझे बाहर न निकाला गया क्योंकि मैं वहां जाकर बैठा जहां लोग जूते उतारते हैं, अब वहां से और बाहर कहां करोगे! तो प्रतीक को समझना। जीसस क्राइस्ट ने कहा है, 'ब्लेस्ड आर द वीक', वे जो कमजोर हैं, वे जो विनम्र हैं वही शक्तिशाली हैं, वही सौभाग्यशाली हैं। जीसस ने कहा है धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, प्रभु के राज्य में वही प्रथम होंगे। सच पूछो तो प्रथम होने की दौड़, शक्तिशाली होने की आकांक्षा भीतर की हीनता की ग्रंथि से आती है। केवल वह व्यक्ति जो भीतर से स्वयं को दुर्बल महसूस करता है वह बाहर अपने आपको शक्तिशाली सिद्ध करने की कोशिश करता है। उसी को राजनीति में, पद में, प्रतिष्ठा में रस होता है। पुराने जमाने में राक्षस शब्द का प्रयोग राजनीतिकज्ञ के लिए किया जाता था, कालान्तर में भाषा बदल जाती है और हम शब्दों के अर्थ भूल जाते हैं। राक्षस कोई अलग जाति नहीं थी, वह जो पदाकांक्षी था, शक्ति लोलुप था, राजनीतिज्ञ था, उसको राक्षस कहा जाता था।

लाओत्से के दर्शन पर ही आधारित फिर जापान में झेन परंपरा चली, ताओवाद और बौद्ध धर्म का मिलन हुआ। और जापान के झेन फकीरों ने अद्भुत युद्ध की तरकीबें खोजीं– जूडो, कराटे, जुजुत्सु और उनका मुख्य बिन्दु यह है कि तुम दूसरे को हमला करने दो और तुम उसको पी जाओ, एब्जॉर्ब कर लो, तब दूसरे की शक्ति भी तुममें समाहित हो जाएगी। जो हमला करेगा वह थकेगा और अंततः वह चकनाचूर हो जाएगा, वह हार जाएगा। तो जुजुत्सु

की सारी कला यही है कि हमलावर के साथ कोऑपरेट करो, उससे लड़ो मत, संघर्ष न करो, तुम्हारी शक्ति बची रहेगी और उसकी शक्ति व्यय हो जाएगी।

ओशो कहते हैं कि एक बार मैं एक लुहार की दुकान के सामने से गुजर रहा था। वहां बहुत से टूटे हुए हथौड़े पड़े हुए थे। मैंने उस लुहार से पूछा कि ये हथौड़े कैसे टूट गए? उसने कहा कि इन हथौड़ों से मैं चोट करता हूं निहाई में रखकर। ओशो ने कहा कि निहाई कितनी टूटी? लुहार ने कहा निहाई नहीं टूटती, हथौड़ा टूट जाता है क्योंकि हथौड़ा चोट करता है, निहाई नहीं टूटती क्योंकि वह चोट को सहती है। ठीक वही जुजुत्सु की कला है। तुमने कभी देखा छोटे बच्चे गिर जाते हैं लेकिन उन्हें चोट नहीं लगती। एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। उसने विज्ञापन निकाला कि एक भारी शक्तिशाली पहलवान की जरूरत है, दस हजार रुपए प्रतिदिन उसको दिए जाएंगे। उसे बस दो साल के बच्चे की नकल करना है, वह बच्चा जो करे वही उस पहलवान को करना होगा।

कई लोग आ गए दस हजार रुपए का इनाम सुनकर। जो सबसे भारी पहलवान था उसको ड्यूटी दी गई। दो साल का बच्चा उछल रहा है, खेल रहा है, गिर रहा है और पहलवान को उसकी नकल करना है, अगर वह गिरे तो पहलवान को भी गिरना है, बच्चा उछले तो पहलवान को भी उछलना है। बच्चे को तो बहुत मजा आया जब उसने देखा कि कोई उसकी नकल कर रहा है तब तो उसने और भी उछल-कूद करनी शुरू कर दी। चार घंटे में पहलवान पस्त हो गया, दो-चार जगह से टूट भी गया और बच्चा मुस्कुरा रहा है उसको कुछ भी न हुआ, उसको तो बहुत मजा आया इस खेल में। छोटे बच्चे को कौन सी कला आती है? ... छोटा बच्चा संघर्ष में नहीं है। कभी किसी गाड़ी का एक्सीडेंट होता है और उसमें अगर छोटे बच्चे बैठे हैं तो उनको चोट नहीं लगती, अगर कोई शराबी बैठा है तो उसको चोट नहीं लगती लेकिन अन्य लोगों के हाथ-पैर टूट जाते हैं। क्यों? क्योंकि शराबी प्रतिरोध नहीं करता, छोटा बच्चा प्रतिरोध नहीं करता। जो लड़ने की आकांक्षा से नहीं भरा है वह जीत जाता है और जो लड़ने की सोचेगा वह हार जाएगा। संघर्ष में पराजय है और असंघर्ष में जीत है। ये है ओशो का दृष्टिकोण जो उन्होंने कृष्ण स्मृति नामक प्रवचनमाला में समझाया है।

आज का दूसरा प्रश्न गुरुदासपुर, पंजाब से प्रवेश कुमार गुप्ता जी का है। वे पूछते हैं कि मैंने बचपन में एक गुरु पर अटूट भरोसा किया था, बाद में उनकी वास्तविकता जानकर मेरा विश्वास खंडित हो गया। अब किसी पर आस्था जमती नहीं। आपसे पहले भी अनेक सवाल पूछ चुका हूं किन्तु मेरे संदेह पूर्णतः मिटे नहीं हैं। अब मुझे क्या करना चाहिए?

पूछते हो क्या करना चाहिए, मैं तुमसे कहूंगा कि सबसे पहली बात तो यह देखो कि जिसे तुम अटूट विश्वास कह रहे हो उसी को कह रहे हो कि फिर टूट गया, कम से कम अब तो अटूट न कहो। कम से कम प्रश्न लिखने के पहले सोच तो लिया करो कि क्या लिख रहे हो। और बचपन का विश्वास निश्चित ही बड़ा बचकाना रहा होगा। प्रवेश कुमार तुम प्रौढ़ हुए हो, ज्यादा परिपक्व हुए हो, अब तुम्हारे मन में संदेह जागे हैं। बचपन में बच्चे के मन में संदेह

नहीं होते, बचपन के विश्वास की कोई कीमत नहीं है, अब जो विश्वास होगा वह सचमुच का विश्वास होगा। संदेहों की अग्नि से गुजरकर जो आस्था होती है वही सच्ची श्रद्धा है। तुम पूछते हो क्या करना चाहिए? शीघ्रता न करो श्रद्धा करने की, पूछो और–और पूछो, कोई जल्दी नहीं है। मैं तुम्हें विश्वास करने की नहीं कहता, प्रयोगात्मक भरोसा पर्याप्त है, हाइपोथेटिकल ट्रस्ट, एक प्रयोगात्मक भरोसा। प्रयोग करने को राजी रहो। तुम्हारे स्वयं के ज्ञान से फिर जो श्रद्धा उत्पन्न होगी वही सच्ची श्रद्धा होगी। उसी श्रद्धा की ओर तुम्हें ले जाना चाहता हूं। कृष्ण की गीता को समझाते हुए अर्जुन के बारम्बार सवाल पूछने पर और कृष्ण के लंबे उत्तर देने पर इन 18 अध्यायों कीश्रृंखला में ओशो ने इस संबंध में जो कहा है वो अमृत वचन सुनो–

'जब भी शिष्य गुरु के पास आता है, तब शिष्य के मन और गुरु के बीच संघर्ष शरू होता है। शिष्य के हृदय और गुरु के बीच तो मैत्री होती है। लेकिन शिष्य की बुद्धि, विचार और गुरु के बीच बड़ा संघर्ष होता है।

ये दोनों ही बातें होनी चाहिए कि हृदय में मैत्री का भाव हो, तो संवाद पैदा हो सकेगा। गुरु जो कहेगा, वह समझ में आ सकेगा। क्योंकि समझ अंततः हृदय की है, प्रेम की है। और अगर हृदय में वह भाव न हो, सिर्फ बुद्धि में प्रश्न हों, तो तुम शिष्य नहीं हो। तुम सिर्फ कुतूहलवश, जिज्ञासावश आ गए हो। तुम रूपांतरित होने को नहीं आए हो। तुम कुछ शब्दों का संग्रह करके लौट जाओगे। तुम थोड़े पंडित हो जाओगे। तुम मिटोगे नहीं; तुम अपने अहंकार के लिए थोड़े–से और आभूषण जुटा लोगे।

मन में तो प्रश्न उठेंगे ही। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे ही मन में प्रश्न लगते हैं। लेकिन अगर हृदय में प्रेम हो, तो गुरु जीत जाएगा, शिष्य हारेगा। और शिष्य का हारना ही शिष्य की जीत है। गुरु का जीतना ही शिष्य की जीत है। क्योंकि गुरु जीत जाए, तो ही तुम उठोगे उस कचरे से, जहां तुम पड़े हो। अगर तुम जीत गए, तो तुम वहीं पड़े रह जाओगे।

अर्जुन हारने को राजी है; लेकिन जल्दी हारने को भी राजी नहीं है। क्योंकि अगर तुम जल्दी हार गए, तो भी धोखा होगा। मन में प्रश्न बने ही रह जाएंगे, जो बार–बार उठेंगे, हमेशा लौट–लौटकर आ जाएंगे।

तो अर्जुन अपनी सारी जिज्ञासाएं रख लेता है। मन जो भी उठा सकता है, उठा लेता है, उसमें कंजूसी नहीं करता। और हृदय के प्रेम में जरा भी बाधा नहीं डालता। हृदय का द्वार खुला रहता है और गुरु मन को काटे चला जाता है।

कृष्ण तो एक तलवार हैं, वे अर्जुन के एक–एक संशय को गिराए जा रहे हैं। लेकिन इतना भरोसा होना चाहिए, किसी के हाथ में तलवार देखकर भय न पैदा हो जाए। किसी के हाथ में तलवार देखकर ऐसा न लगे कि क्या पता, यह संशय काटते–काटते मुझको ही न काट दे! इतना भरोसा चाहिए कि यह बीमारी ही काटेगा।

जैसे तुम एक सर्जन के पास जाते हो, तो भरोसा चाहिए कि वह बीमारी ही काटेगा। लेट जाते हो; तुम बेहोश कर दिए जाते हो। तुम भरोसा रखते हो कि यह आदमी बीमारी की

ग्रंथि ही काटेगा, ट्यूमर ही निकालेगा। अब बेहोश हालत में यह क्या करेगा, पता नहीं। लेकिन एक भरोसा है, एक श्रद्धा है।

इसलिए धर्म की परम घटना बिना श्रद्धा के नहीं घटती, क्योंकि धर्म सबसे बड़ी सर्जरी है जिसमें तुम्हारा सबसे बड़ा ट्यूमर, अहंकार, निकाला जाएगा। और तुम्हारे जीवन की सारे संशय, जितने रोगाणु हैं, उन सबको बाहर फेंका जाएगा। वह सबसे बड़ी शुद्धि है; जड़–मूल से बदलाहट है। उतनी ही बड़ी श्रद्धा भी चाहिए। ऐसी श्रद्धा न हो, तो बेहतर है गुरु के पास मत जाना।'

अगला प्रश्न है गिरिधारी निगम जी का जो रायपुर से हैं। इनका प्रश्न है कि प्रेमिका द्वारा मिले धोखे से मैं डिप्रेशन का शिकार हो गया हूं। स्त्री जाति से मेरा भरोसा ही उठ गया है। मैं अति कठोर, संवेदनहीन और विषादग्रस्त होता जा रहा हूं। करूं तो क्या करूं?

गिरिधारी कम से कम अपना नाम तो बदल लो। तुम्हारा नाम भगवान कृष्ण का पर्यायवाची है। सोलह हजार रानियां थीं उनकी, सैकड़ों प्रेमिकाएं थीं और तुम गिरिधारी एक प्रेमिका से त्रस्त हो गए। और कहते हो कि स्त्री जाति से भरोसा उठ गया है। नहीं, ये तुम्हारा निगेटिव दृष्टिकोण है। एक कांटा लग जाने से सारे फूलों पर से तुम्हारा भरोसा उठ जाए यह ठीक नहीं। माना कि जिंदगी में धोखा देने वाले लोग भी हैं लेकिन यहां ईमानदार लोग भी हैं। बेईमान भी हैं और ईमानदार भी हैं, प्रेमी भी हैं और बेवफा भी हैं, यहां फूल भी हैं और कांटे भी हैं। तुम्हारा निगेटिव दृष्टिकोण कांटों पर तुम्हारी नजर को फोकस कर देता है, थोड़ा फूलों की तरफ भी देखो। यहां जान देने वाले मित्र भी हैं और जान लेने वाले शत्रु भी हैं। जिंदगी में अंधेरा भी है और उजाला भी है, तुम क्यों अंधेरे पर अपनी नजर अटकाकर बैठे हो। सुनो यह प्यारा गीत–

ऐ मेरे दिल, चल, कहीं और चल,
सिर्फ इतनी ही नहीं, जिंदगी और भी है,
मस्जिदों में बंद नहीं, बंदगी और भी है,
यह तो मुमकिन ही नहीं, प्यार में गम न मिले,
अपनी बस्ती हो कहीं, आंख पुरनम न मिले,
चाहे मुश्किल हो सही, ऐ मेरे दिल,
राह बस एक नहीं, रास्ता और भी है,
रहजन हैं माना मगर, रहबर और भी हैं,
यह तो मुमकिन ही नहीं प्यास को दर न मिले,
रूप को छांह कहीं उम्र को घर न मिले,
एक संगदिल ही नहीं, ऐ मेरे दिल,
बेवफा सभी नहीं, संगिनी और भी है,
इस मुकाम पर न सही, कहीं अपना ठौर भी है,
ऐ मेरे दिल, चल, कहीं और चल।

थोड़ा और तलाशो, थोड़ी और खोजबीन करो। इतनी जल्दी निराशा और डिप्रेशन में न जाओ। ये तुम्हारा निगेटिव दृष्टिकोण है, थोड़ा पॉजिटिव दृष्टिकोण अपनाओ। दूसरी बात तुमसे कहना चाहूंगा प्रेम भीख नहीं दान है। अभी तुम भिखमंगे की तरह हो और तुम उस प्रेमिका से भीख मांग रहे हो कि वो तुम्हें प्रेम दे। तुम दूसरों को प्रेम क्यों नहीं देते, मांगते क्यों हो, झोली क्यों फैलाते हो? अहंकार कहता है कि सब लोग मुझे प्रेम करें और प्रेमी कहता है कि मैं सबको प्रेम दूंगा। तुम्हारा प्रश्न अहंकार से भरा है, तुम्हारा डिप्रेशन प्रेम के कारण नहीं, अहंकार के कारण उत्पन्न हुआ है। आखिरी बात तुमसे कहना चाहूंगा, अब इस प्रेम को परमात्मा की तरफ मोड़ो। लोगों से प्रेम करके देख लिया, तृप्ति मिलती नहीं, संतुष्टि होती नहीं। थोड़ा इसको फैलाओ, अनंत की तरफ जाने दो। संपूर्ण अस्तित्व के प्रति प्रेम से भर जाओ। उस प्रेम का नाम ही भक्ति है। अगर संसार का प्रेम सफल हो ही जाता तो फिर भक्ति की तरफ जाने की तो कोई जरूरत ही न होती। प्रेम को नई दिशा दो। याद रखना, मैं प्रेम के खिलाफ नहीं हूं, प्रेम की पाठशाला में सीख-सीखकर ही यह सबक मिलता है कि प्रेम को थोड़ा और विस्तार दो, प्रेम को थोड़ा आकाश दो, इसको परमात्मा की तरफ उन्मुख करो।

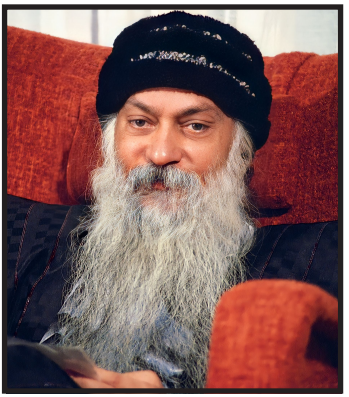

अध्याय–20

सांख्य योग की विधि नहीं

आज का पहला प्रश्न पटना, बिहार से हरिहर चौबे जी का है। पूछते हैं कि ध्यान की सांख्ययोग विधि किस श्रेणी के साधकों हेतु उपयोगी होती है, कृपया प्रकाश डालें। मैं इसी की साधना करना चाहता हूं।

सांख्ययोग वास्तव में कोई विधि नहीं है, अविधि का नाम है। इसलिए उसे किया तो जा ही नहीं सकता। कर्मयोग तुम कर सकते हो, तंत्रयोग तुम साध सकते हो, हठयोग की साधना कर सकते हो, मत पूछो कि सांख्य योग की साधना कैसे करूं, वह संभव नहीं है। सांख्ययोग अर्थात् कोई विधि नहीं, कोई तरकीब नहीं, बस समझो, समझ मात्र पर्याप्त है। करने का कोई सवाल नहीं है। पुराने जमाने में कपिल मुनि हुए, अष्टावक्र हुए, अष्टावक्र के शिष्य जनक हुए। अष्टावक्र ने कहा कि हे जनक तू ब्रह्म है। और जनक ने स्वयं अपने ही चरण छू लिए और कहा कि अहो, मेरा मुझको नमस्कार, मैं ब्रह्म हूं। पूछा नहीं कि कैसे, क्यों, कि करना क्या है ब्रह्म होने के लिए, करने का कोई सवाल नहीं। यदा–कदा कुछ लोग होते हैं जो सांख्य के मार्ग पर चलते हैं, वास्तव में वह चलना नहीं है, भाषा की मजबूरी है कुछ कहना पड़ता है। सांख्य कोई विधि नहीं है। आधुनिक युग में श्री जे.कृष्णमूर्ति उसके उदाहरण हैं। हमारे परमगुरु ओशो स्वयं उसके उदाहरण हैं। वे किसी विधि से, किसी योग से परम मंजिल तक नहीं पहुंचे, समझ मात्र पर्याप्त थी। लेकिन इसको साधा नहीं जा सकता, वह हो तो हो,

न हो तो न हो। इसकी कोई विधि नहीं है, इसलिए मत पूछो कि मैं इसकी साधना करना चाहता हूं। इसकी साधना नहीं होती। कम से कम जिसने पूछा है वह तो उस श्रेणी का साधक नहीं है। सांख्ययोग पर जो लोग चलते हैं वे किसी से पूछने नहीं जाते।

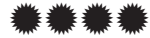

दूसरा प्रश्न स्वामी आनंद दिवाकर जी का है जो रायपुर, नागपुर से हैं। पति–पत्नी हेतु ओशो ने कौन सी ध्यान विधि दी है जिसे वे दोनों एक साथ ध्यानमग्न होकर करें ताकि वे अपने दांपत्य जीवन को सफल बना सकें?

एक बड़ी सरल सी विधि नादब्रह्म ध्यान का एक विशिष्ट प्रयोग ओशो ने सुझाया है। यह नादब्रह्म ध्यान पति–पत्नी अगर एक साथ करें तो उनके भीतर और भी गहन प्रेम उत्पन्न हो सकेगा। न केवल शरीर और मन के तल पर बल्कि चेतना के तल पर एक गहन मिलन घटित हो सकेगा, सचमुच ही वे पति–पत्नी बन पाएंगे और एक–दूसरे की आध्यात्मिक साधना में सहयोगी हो सकेंगे। विस्तार से इस विधि को जानने के लिए ओशो की किताब पढ़ें 'ध्यान योग प्रथम एवं अंतिम मुक्ति', अंग्रेजी में है 'मेडिटेशन दि फर्स्ट एण्ड लास्ट फ्रीडम'।

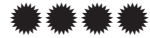

अगला प्रश्न बड़ौदा, गुजरात से चंद्रभानु गुप्ता जी का है। विगत चालीस वर्षों से मैं भगवान शंकर की पूजा कर रहा हूं लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। क्या मैं अपने आराध्य देवता को बदल लूं?

तुमने भी गजब कर दिया चंद्रभानु! अपने को बदलने की सोचो, तुम तो देवी–देवताओं को बदलने की सोच रहे हो! मैंने सुना है एक आदमी हनुमान जी का भक्त था, बार–बार आकर प्रार्थना करता कि हे प्रभु शादी करा दो, योग्य लड़की नहीं मिल रही है। सालों हो गए प्रार्थना करते–करते, एक दिन हनुमान जी को बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने अपनी गदा उठाकर उसके सिर पर दे मारा और कहा कि नालायक, मैं खुद अपनी शादी नहीं कर पाया, तेरी शादी कहां से करा दूं, मैं बाल ब्रह्मचारी! भक्त ने पूछा फिर मैं क्या करूं? हनुमान जी ने कहा कि भगवान राम के पास जाओ, उनकी पूजा करो, किसी शादी–शुदा देवता को ढूंढ़ो। भक्त को बात समझ में आई कि इतने साल व्यर्थ गए। फिर तो उसने राम के मंदिर में पूजा करनी शुरू कर दी। साल भर बाद भगवान राम प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि वर मांग ले। उस आदमी ने कहा वर नहीं, वधू चाहिए प्रभु! भगवान ने कहा तथास्तु! जल्दी ही उस आदमी की शादी हो गई।

लेकिन छः महीने बाद ही डाकू उसकी पत्नी का अपहरण करके ले गए। फिर रोता–रोता आया भगवान राम के पास कि मेरी पत्नी चोरी चली गई, अब क्या करूं? राम ने अपना तीर–धनुष निकाला और बोले कि यहां से भाग जाओ नहीं तो मैं तुम्हें तीर मार दूंगा। मेरी पत्नी चोरी चली गई थी तो मैं नहीं ढूंढ़ पाया था। जा हनुमान के पास वही सीता को ढूंढ़कर लाए थे। तुम भी क्या सवाल पूछ रहे हो कि चालीस साल से शंकर जी की पूजा कर रहा हूं लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ। तुम किस प्रकार का लाभ चाहते हो, पहले तो ये बताओ? ये लाभ और लोभ की दृष्टि से दुनिया में जो लोग आते हैं वे वास्तव में अध्यात्म में आते ही नहीं। जहां लोभ और लाभ की बात आ गई वहां बाजार है, मंदिर नहीं। वह पूजा नहीं है, वह

प्रार्थना नहीं है। सच्चा प्रार्थी मांगता नहीं है। प्रार्थना भीख मांगना नहीं है, प्रार्थना तो धन्यवाद का भाव है, अहोभाव का संबंध है, प्रेम का संबंध है सारे जगत के प्रति। रामकृष्ण परमहंस अद्भुत भक्त थे। उनके संबंध में बोलते हुए परमगुरु ओशो की अमृतवाणी सुनो–

रामकृष्ण राजी हो गए। संयोग ही था, दयावश, करुणावश; और गरीबी थी, नौकरी चाहिए थी... और उन्हें कहीं और नौकरी मिल भी न सकती थी क्योंकि वे कुछ अनूठे ढंग के पुजारी थे जैसे कि पुजारी होते नहीं या कि सिर्फ असली पुजारी होते हैं। तो ये संयोग हो गया कि मंदिर को पुजारी नहीं मिलता था और रामकृष्ण को मंदिर नहीं मिलता था। जम गई बात मगर थोड़े ही दिन में अड़चन शुरू हो गई। मंदिर के ट्रस्टी थे, उन्होंने रासमणि को कहा कि ये पुजारी न चलेगा, इससे अच्छा तो बिना पूजा का मंदिर रहे, वही बेहतर है। प्रतीक्षा करते हैं हम, अगर कोई ढंग का ब्राह्मण आ जाए। ये तो ढंग का आदमी ही नहीं है क्योंकि इसने तो ऐसे जघन्य अपराध किए हैं कि क्षमा ही नहीं किया जा सकता। क्या अपराध थे?

अपराध ये थे कि कभी वे पूजा करते और कभी न करते, एक अपराध तो ये था। कभी दिनों बीत जाते और वे मंदिर में जाते ही नहीं और कभी दिन–दिन भर पूजा चलती, ये भी कोई ढंग है। पूजा तो ढंग से होनी चाहिए जैसे आर्मी में रूल चलते हैं... बाएं घूम, दाएं घूम। जल्दी से किया और पूजा पूरी हुई। रामकृष्ण से पूछा गया कि ये क्या गड़बड़ है? उन्होंने कहा कि जब होती है तो होती है, जब नहीं होती तो मैं क्या करूं! क्या मैं झूठ करूं, क्या भगवान के सामने झूठा ही खड़ा होकर हाथ हिलाऊं, क्या बोलूं जब मेरे हृदय में ही नहीं है, जब मैं रेगिस्तान की तरह हूं तो कैसे जाऊं मंदिर। जब होती है तब जाता हूं। और जब होती है तो चाहे जब तक हो फिर भूख–प्यास सब भूल जाता हूं, दिन बीत जाते हैं। कभी तो ऐसा होता है कि बीस–बीस घंटे पूजा चलती है, आंसुओं की धार बह रही है, नाच रहे हैं। सुनने वाले आते हैं, चले जाते हैं, सुबह होती है, शाम हो जाती है मगर पुजारी लगा है। दूसरा अपराध था कि वे पहले भोग लगा लेते हैं और फिर बाद में भगवान को प्रसाद चढ़ाते हैं। पहले भगवान को भोग लगना चाहिए फिर खुद प्रसाद लेना चाहिए था, यहां तो सब मामला उल्टा है।

उनसे कहा गया कि कम से कम इतना तो बंद करो क्योंकि ये तो बिल्कुल ही शास्त्र के विपरीत है। मगर प्रेम कहीं शास्त्र को मानता है! क्या पूजा किसी शास्त्र के अनुसार चलती है? शास्त्र के अनुसार तो अभिनय चलता है, नाटक चलता है। तो रामकृष्ण ने कहा कि फिर तो मैं पूजा नहीं करूंगा, फिर तो मैं छोड़ रहा हूं। ये तो मेरी मां नहीं कर सकती थी तो मैं कैसे कर सकता हूं। लोगों ने पूछा कि क्या मतलब? उन्होंने कहा कि मेरी मां जब भी कुछ बनाती थी तो पहले खुद चखती थी और बाद में मुझे देती थी। देने योग्य भी है या नहीं यह भी तो पक्का होना चाहिए। तो बिना चखे मैं भगवान को दे नहीं सकता क्योंकि कई बार मैं पाता हूं कि शक्कर कम है, कई बार पाता हूं कि ज्यादा है, कई बार पाता हूं नमक है ही नहीं, कई बार कुछ भूल चूक होती है। मैं भगवान को ऐसे नहीं दे सकता, अब ये तो किसी बड़ी गहन प्रेम से आती पूजा है। कोई शास्त्र निर्मित नहीं हुआ है न हो सकता है क्योंकि ये हर पुजारी की अलग होगी, हर पुजारी अपना ही शास्त्र होगा।

चंद्रभानु गुप्ता यही तुमसे कहना चाहूंगा। स्वयं को बदलने की सोचो। तुम्हारे पूजा करने का तरीका, तुम्हारी बंदगी ठीक नहीं है। तुम जिसे प्रार्थना कह रहे हो वह प्रार्थना नहीं है। सुनो यह प्यारा गीत–

बदल दिया है तरीका ए बंदगी मैंने,
बदल दिया एहसास ए जिंदगी मैंने।
दिखाई देते थे सब तरफ पराए मुझे,
रखी थी मुफ्त ले सबसे दुश्मनी मैंने,
प्यार की नजर से देखा तो सब हुए अपने,
जहां में चार सूं पाई घनी दोस्ती मैंने।
बदल दिया है तरीका ए बंदगी मैंने।

अपनी पूजा की विधि को बदलो। तुम जिसे प्रार्थना कह रहे हो, जिसे भक्ति कह रहे हो उसे मैं भक्ति नहीं कहता। भक्ति लाभ और लोभ की दृष्टि से नहीं की जाती, वह तो धन्यवाद का भाव होता है। अस्तित्व ने इतना कुछ हमें दिया है, मांगने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता! हम कैसे अहोभाव व्यक्त करें, वह 'सेंस ऑफ ग्रैटीच्यूड' ही वास्तविक प्रार्थना है।

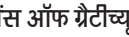

अंतिम प्रश्न दिल्ली से मंजू वाही जी पूछती हैं। मुझे ज्यादा बोलने की आदत है मगर कोई बुराई अथवा दुर्गुण मुझमें बचपन से ही नहीं है। लेकिन मेरे पति को अधिकतर तनावग्रस्त रहने का मानसिक रोग सा है। उस समय मैं भी दुखी हो जाती हूं। उन्हें सुधारने हेतु क्या करूं?

मंजू वाही, तुम्हारे नाम से मुझे याद आया कि जब मैं मेडिकल प्रैक्टिस किया करता था तब मंजू नाम की एक महिला मेरे पास आती थी... बहुत बकवासी, लगातार बोलती थी। एक दिन अपने पति को लेकर आई। पति कुछ कहना चाह रहे थे लेकिन वह बोलने ही न देती थी... बीच में कहे कि डॉक्टर साहब मैं आपको बताती हूं इनको क्या–क्या तकलीफ है। पतिदेव फिर टोकने की कोशिश करें लेकिन वो देवी जी कहें कि आप चुप रहिए। आप आराम कीजिए आप बीमार हैं, मैं बताती हूं। मैं सुनता रहा बहुत देर तक। फिर दवाइयां लिखीं कि ये नींद की गोलियां हैं जिनको कि रात को खाने के बाद खाना है। उस महिला ने कहा कि इनको रात को अच्छे से नींद नहीं आती, कितने बजे रात को दवाई दूं? मैंने कहा कि देवी जी, उनके लिए नहीं, ये दवाईयां तो आपके लिए हैं! आप डिनर के बाद खाकर सो जाओ, पति की बीमारी अपने आप ही ठीक हो जाएगी। जरा गौर से देखो, अपने पति की परेशानी का कारण तुम्हीं हो। काश तुम मौन में डूबना सीखो, काश तुम चुप होना सीख जाओ तब तुम ज्यादा प्रेमपूर्ण हो पाओगी। घर में एक सुंदर प्रीतिकर माहौल निर्मित हो पाएगा जिससे तुम्हारे पति भी प्रसन्न रहना सीख पाएंगे। ऐसा वातावरण अपने घर में तैयार करो। बाहर तैयार करने का सबसे अच्छा उपाय है पहले अपने भीतर निर्मित करो। अगर तुम शांत नहीं हो तो बकबक चलती ही रहेगी। इतनी बातचीत आती कहां से है? भीतर विचारों की इतनी भीड़ है, ऐसा शोरगुल मचा है, वह बाहर फटते हुए निकल रहा है। काश, तुम्हारे भीतर निर्विचार जागरूकता घट जाए!

ओशो उसी को तो ध्यान कहते हैं, निर्विचार जागरूकता। कोई विचार न हो तब बाहर भी मौन घटित हो जाएगा। असली बात है आंतरिक मौन। वह घट जाए तो फिर बाहर का मौन बहुत आसान है। किन्तु आंतरिक मौन से शुरू करना तो बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं सलाह देता हूं कि बाहर से मौन को साधो। अगर तुम संकल्पपूर्वक भी बाहर चुप रहना शुरू कर दो तो धीरे-धीरे तुम्हारा मन भी चुप होने लगेगा। क्योंकि जब ये पता चल गया कि मुझे बोलना ही नहीं है, कुछ कहना ही नहीं है तो मन फिर भीतर तैयारी ही क्यों करेगा। भीतर जो विचार चलते हैं, जो हमारी अंतर्वाणी चलती है वह एक प्रकार का रिहर्सल है कि फलां व्यक्ति मुझे मिलेगा मैं उससे ऐसा कहूंगी, अगर उसने ऐसा कहा तो फिर मैं ये जवाब दूंगी। एक रिहर्सल चलता रहता है। अभी नाटक शुरू नहीं हुआ, उसकी तैयारी चलती है। अगर हम बाहर मौन रहना सीख जाएं तो भीतर की यह तैयारी भी धीरे-धीरे कम होने लगेगी। तब संभव है कि एक दिन तुम भीतर की वाणी को भी सुन पाओ, परमात्मा की ओंकार की वाणी को सुन पाओ।

ओशो ने एक बड़ी प्यारी ध्यान विधि बनाई जिसका नाम उन्होंने रखा है 'देववाणी'। भीतर की ओंकार वाणी को सुनने के लिए एक विधि का उपयोग करो। चुपचाप बंद कमरे में खिड़की-दरवाजे लगाकर जो भी मन में आए वह बोलना शुरू कर दो। अगर कुछ न आए तो ला.... ला..... ला.... शुरू कर दो। थोड़ी ही देर में कुछ अनर्गल बातें आने लगेंगी, उन्हें निकलने देना। हो सके तो सार्थक शब्दों का प्रयोग न करना, निरर्थक शब्दों का प्रयोग। अगर तुम्हें हिन्दी भाषा आती है तो हिन्दी बस मत बोलना, चाइनीज बोलो, रशियन बोलो, जर्मन बोलना और जो भी बोलना है बोलो, जानवरों की भाषा बोलो, कुछ भी बोलते जाओ। आधे घंटे के अंदर तुम पाओगे कि एक मनोस्नान हो गया, तुम्हारा मन साफ हो गया, जो कूड़ा-कचड़ा भीतर भरा था वह निकल गया। एकांत में उलींच दो, दूसरों पर न उलींचो। दूसरों पर कृपा करो... कम से कम अपने पति पर तो कृपा करो!

अभी तीन-चार दिन पहले एक पति-पत्नी मेरे पास आए थे और पूछ रहे थे कि सफल दांपत्य जीवन का कोई सूत्र हमें बताएं? मैंने उनसे कहा कि गौर से सुनना बता रहा हूं, दुबारा फिर कहूंगा नहीं और आज तक किसी ने कहा भी नहीं, पहली बार मैं ही बता रहा हूं! उनके कान बिल्कुल खड़े हो गए। मैंने उनसे कहा कि सुनो, सफल दांपत्य जीवन का एक ही सूत्र है, अगर गूंगी पत्नी हो और बहरा पति हो, इसके अलावा और कोई सूत्र नहीं है। मैं आपसे नहीं कहता कि आप अपने कान खराब कर लें कि जीभ काट दें, लेकिन जीभ का कम से कम उपयोग करें और दूसरे के कानों को थोड़ी राहत दें। घर-परिवार में सुख-शांति का माहौल बन सकता है। हमारे बहुत ज्यादा बोलने से झंझट खड़ी हो जाती हैं। काश हम थोड़ा कम बोलें!

... और मैं आपको आश्वासन देता हूं कि कम बोलने के लिए या चुप रहने के लिए आपको कभी पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा। बोलने के लिए तो हजार बार पश्चाताप करना पड़ता है कि काश मैंने ऐसा न कहा होता तो कितनी मुश्किलों से बच गया होता, थोड़ा मौन रहना सीखो।

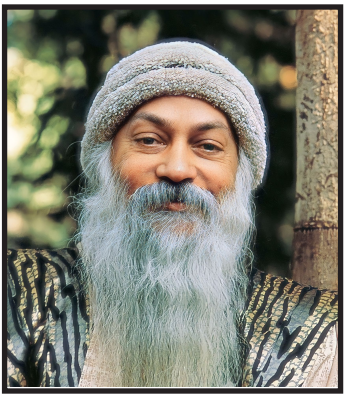

अध्याय–21

समाधि में भय क्यों?

आज का पहला प्रश्न पूछा है पंजाब से मां देव प्रीति ने। वे पूछतीं हैं कि कभी–कभी समाधि की गहराई में जाते हुए अनायास भय लगना और फिर वापस लौट आना क्यों हो जाता है?

इस सवाल के संदर्भ में दो पक्ष समझना, एक तो निगेटिव पक्ष है भय का जिससे हम वापस लौट आते हैं, ध्यान करने से ही डरते लगते हैं। समाधि से अगर भय पैदा हो गया तब तो अपने केन्द्र में पहुंचना नामुमकिन हो जाएगा, फिर उस तरफ हम जाना ही छोड़ देंगे। और इसका एक विधायक पहलू भी है वह भी ख्याल में लेना। भय तभी लगता है जब ध्यान समाधि में गहराई मिलने लगे। ऐसा समझो कि जैसे कोई बच्चा तैरना सीखने के लिए स्विमिंग पूल में, नदी में या तालाब में गया। घुटने–घुटने पानी में तैरना सीख रहा है, अभी भय नहीं लगता क्योंकि पता है कि थोड़ा सा पानी है, डूबने लगेगा तो खड़ा हो जाएगा। फिर दो–चार दिन बाद उसकी हिम्मत होती है कमर तक पानी में जाने की, फिर और आत्मविश्वास आता है, हफ्ते भर बाद गले भर पानी में जाने लगता है, अब यहां से थोड़ा भय लगना शुरू होता है। अब अगर डूबे तो डूबे, अब अगर सामने कोई गड्ढा आ गया, नीचे जमीन से पैर न लग पाया फिर तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। तो जब घुटने भर पानी में थे भय नहीं लग रहा था। कभी भी छलांग लगाकर किनारे पहुंच सकते थे। लेकिन जब गले भर पानी में पहुंच गए और आगे बढ़ने

लगे, वहां से डर लगना शुरू होगा। ठीक इसी प्रकार ध्यान–समाधि के साधक के साथ होता है। जब तक ध्यान उथला–उथला है डर नहीं लगता लेकिन जब ध्यान गहराने लगता है, मन की वह चिर–परिचित भूमि छूटने लगती है और अमन की दशा होने लगती है, निर्विचार जागरूकता में प्रवेश होने लगता है तब भय लगता है। वह उन्मनी दशा, वह मन की शून्य अवस्था मौत जैसी लगती है, घबराने वाली। वहां से साधक भागकर वापस आ जाता है। तो विधायक पक्ष यह है भय का या इस बात का प्रतीक या लक्षण समझो देव प्रीति कि तुम गहरी समाधि में जाने लगी। इस विधायक पक्ष को ज्यादा महत्त्व दो।

तीसरी बात कहना चाहूंगा कि भय के बावजूद भी आगे बढ़ो। सामान्यतः हम सोचते हैं कि साहसी और बहादुर लोग वे हैं जिनको भय नहीं लगता। हमारी यह धारणा बिल्कुल भ्रांतिपूर्ण है। साहसी व्यक्ति को भी भय लगता है, कायर और साहसी में सिर्फ इतना भेद है कि कायर डर के कारण वापस लौट आता है और साहसी व्यक्ति भय के बावजूद भी आगे बढ़ता जाता है। अगर उसे भय ही न लगे तब तो उसको साहसी कहना भी व्यर्थ होगा। दो साल का एक छोटा सा बच्चा बीच सड़क में चला जा रहा है। सामने से गाड़ी आ रही है और वह किनारे नहीं हटता। क्या इसको तुम साहसी कहोगे? ... इसको हम कहेंगे अबोध। इसे मालूम ही नहीं कि खतरा सामने आ रहा है। एक पागल आदमी चौथी मंजिल से कूद गया तो क्या तुम उसको वीर पुरुष कहोगे? उसको महावीर चक्र और भारत रत्न की उपाधि दोगे? नहीं, वह सिर्फ विक्षिप्त है, उसे पता ही नहीं कि चौथी मंजिल से कूदने पर क्या होगा! छोटा बच्चा अबोध है। कोई शराबी कोई ऐसा काम कर जाए जो बड़े–बड़े वीर पुरुष नहीं कर पाते लेकिन तब उसे हम वीर या साहसी पुरुष नहीं कहेंगे क्योंकि शराब के नशे में उसे पता ही नहीं था कि वह क्या कर गया। वह तो बेहोश है, मूर्च्छित है। तो पागल को, शराबी को, छोटे बच्चे को भय नहीं लगता इसलिए उनको साहसी भी नहीं कहा जा सकता।

इसका मतलब हुआ कि साहसी व्यक्ति वही है जिसको भय लगता है और भय के बावजूद भी वह साहस का काम करता है। तो देव प्रीति तुमसे कहना चाहूंगा कि अब समाधि से वापस मत लौटना। भय लगना बिल्कुल स्वाभाविक है, बिल्कुल मानवीय है, होना ही चाहिए, ऐसा होगा ही, प्रत्येक साधक के साथ होगा। आज जो देव प्रीति के साथ हो रहा है कल वो और साधकों के साथ भी होगा इसलिए यह प्रश्न सभी के काम का है। भय के बावजूद लौटना मत, किनारे फिर वापस नहीं आना। और नहीं आने के पीछे एक कारण, पीछे की जिंदगी, किनारे की जिंदगी जीकर देख तो चुके, मन और अहंकार के संग जीकर देख तो चुके और कब तक वही–वही दोहराओगे, अब नए के लिए तैयार हो जाओ। समाधि के जीवन में जीने के लिए तैयार हो जाओ इससे साहस उत्पन्न होगा।

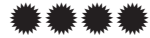

दूसरा प्रश्न– वाराणसी से घनश्याम दास महाजन जी पूछते हैं मेरी जिंदगी के महाभारत में एक तरफ सारा संसार है और दूसरी तरफ मैं अकेला हूं, नितांत अकेला। अन्य चार पांडव भाई भी साथ छोड़ गए हैं। कृष्ण जैसा कोई सारथी उपदेश देने भी नहीं आया, चारों ओर शत्रुओं से घिरे इस अर्जुन को मुसीबत के

चक्रव्यूह से निकालिए प्रभु, बस यही प्रार्थना है।

घनश्यामदास, तुम्हारे जीवन को देखने का ढंग बड़ा नकारात्मक है। अगर हम लाल चश्मा लगा लें तो सारी दुनिया लाल दिखाई देगी इसका यह अर्थ नहीं है कि दुनिया लाल है, हम नीले रंग का चश्मा लगा लें तो सब कुछ नीला दिखाई देगा, इसका यह अर्थ नहीं हैं कि दुनिया नीली है। तुम अगर शत्रुता और बैर के भाव से भरकर दुनिया को देखोगे तो दुनिया महाभारत का युद्ध नजर आएगी। यही दुनिया प्रेमकथा भी हो सकती है, सब तुम पर निर्भर है। एक कहावत तुमने सुनी होगी 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'। कहावत बिल्कुल सच है, अपनी दृष्टि को बदलो। तुम सृष्टि को बदलने के लिए कह रहे हो। मुझसे कह रहे हो कि कृपा कीजिए? मैं कृपा नहीं कर सकता, परमात्मा की बनाई इस सृष्टि को नहीं बदल सकता... लेकिन एक समझ तुम्हें दे सकता हूं, तुम अपनी दृष्टि को रूपांतरित करो, अपनी दृष्टि को बदलो। 'एस धम्मो सनंतनों' नामक प्रवचनमाला में 'धम्मपद' पर प्रवचन देते हुए ओशो ने एक बड़ी प्यारी कहानी सुनाई है। सुनो उस बोध कथा को–

'बुद्ध का एक शिष्य हुआ पूर्ण काश्यप। वह निश्चित ही पूर्ण हो गया था, इसलिए बुद्ध पूर्ण कहते हैं। फिर एक दिन बुद्ध ने उससे कहा कि पूर्ण, अब तू पूर्ण सच में ही हो गया। अब मेरे साथ–साथ डोलने की कोई जरूरत न रही। अब तू जा। अब तू गांव–गांव, नगर–नगर घूम और डोल। मेरी खबर ले जा। मेरे पास तूने जो पाया है, उसे लुटा।

पूर्ण ने कहाः भगवान, किस दिशा में जाउं? आप इशारा कर दें। बुद्ध ने कहाः तू खुद ही चुन ले। अब तू खुद ही समर्थ है। अब मेरे इशारे की भी कोई जरूरत न रही।

तो पूर्ण ने कहा कि जाउंगा– 'सूखा' नाम का एक इलाका था बिहार में –वहां जाउंगा। बुद्ध ने कहा, तू खतरा मोल ले रहा है। वह जगह भली नहीं। लोग सज्जन नहीं। लोग बड़े दुष्ट हैं और दूसरों को सताने में रस लेते हैं। लोग तुझे परेशान करेंगे। इन पीत–वस्त्रों में उन्होंने भिक्षु कभी देखा नहीं। वे बड़े जंगली है। तू वहां मत जा।

पर पूर्ण ने कहा, इसलिए तो उनको मेरी जरूरत है। किसी को तो जाना ही होगा। कब तक वे जंगली रहें? कब तक उनको पशुओं की तरह रहने दिया जाए? मुझे जाना होगा। आज्ञा दें।

बुद्ध ने कहा, जा, मगर मेरे दो–तीन सवालों के जवाब दे दे। पहलाः अगर वे तुझे गालियां दें, अपमान करें, तो तुझे क्या होगा? पूर्ण ने कहा, यह आप मुझसे पूछते हैं, क्या होगा? आप भलिभांति जानते है कि मैं प्रसन्न होउंगा। क्योंकि मेरे मन में यह भाव उठेगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।

बुद्ध ने कहा, ठीक। लेकिन अगर मारें, मारने ही लगें, तो तेरे मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा, आप पूछते हैं? आप भलिभांति जानते हैं कि पूर्ण प्रसन्न होगा, कि धन्यभाग कि मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार भी डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहा, आखिरी सवाल, पूर्ण। अगर मार ही डालें, तो मरते वक्त तेरे मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा, आप, और पूछते हैं? आपको भलिभांति मालूम है कि जब मैं सर कटा रहा

होउंगा तो मेरे मन में होगा, धन्यभाग! उस जीवन से छुटकारा दिला दिया जिसमें कोई भूल–चूक हो सकती थी।

बुद्ध ने कहा, अब तू जा। अब तुझे जहां जाना है, तू जा। अब तुझे कोई गाली नहीं दे सकता। अब तुझे कोई मार नहीं सकता। अब तुझे कोई मार डाल नहीं सकता। ऐसा नहीं है कि वे तुझे गाली न देंगे; गाली तो वे देंगे, लेकिन तुझे अब कोई गाली नहीं दे सकता। ऐसा नहीं कि वे तुझे मारेंगे नहीं; मारेंगे, लेकिन तुझे अब कोई मार नहीं सकता। और कौन जाने, कोई तुझे मार भी डाले; लेकिन अब तू अमृत है। अब तेरी मृत्यु संभव नहीं है।

सारा खेल मन का है, कैसे हम देखते हैं!

घनश्याम दास, तुम्हारा नाम तो स्वयं ही कृष्ण का पर्यायवाची है और तुम कह रहे हो कि कोई कृष्ण रूपी सारथी तुम्हें उपदेश देने नहीं आया। अपने भीतर के साक्षी चैतन्य को ही तुम कृष्ण मानो, वही सारथी है। तुमने सारथी के पद पर अपने मन को, अहंकार को, क्रोध को और भाव को बैठाकर रखा है। उसकी जगह अपने साक्षी चैतन्य को बैठाकर रखो। वही तुम्हारे भीतर का कृष्ण है। तुम्हारे माता–पिता ने तुम्हें ठीक ही नाम दिया घनश्याम दास, अपने भीतर के कृष्ण को तलाशो। बाहर के कृष्ण को कहां खोजोगे। और जो तुम कह रहे हो शत्रुओं से घिरे हो ये तुम्हारी नकारात्मक दृष्टि है।

यहां फूल भी हैं और कांटे भी, अगर तुम कांटे गिनने जाओगे तो खूब कांटे मिलेंगे, उनकी भी कोई कमी नहीं है और तुम्हारे हाथ लहूलुहान हो जाएंगे। तुम क्रोध और नाराजगी से भर जाओगे और तुम्हें लगेगा कि दुनिया कांटों ही कांटों से भरी है। लेकिन ये तुम्हारा चुनाव था, यहां फूलों की भी कोई कमी नहीं थी। काश तुम फूल चुनने गए होते तब तुम्हारे नासापुट सुगंध से भर गए होते। मैत्रीभाव से भरो, सद्भाव, मंगलभाव से भरो फिर तुम नहीं कहोगे कि मुसीबत का चक्रव्यूह। फिर मुसीबत भी तुम्हे ऐसी लगेगी कि तुम्हें मजबूत करने के लिए आई हैं, तुम्हें और सबल करने के लिए आई है। मुसीबतों को भी तुम एक पॉजिटिव ढंग से देखोगे, कठिनाइयों के रोड़ों को तुम सीढ़ी बनाकर उनके ऊपर चढ़ जाओगे।

अंतिम प्रश्न नेपाल से स्वामी ध्यान प्रेम जी पूछते हैं। ओशो का संदेश सुनाने के लिए आप लोग कितना श्रम उठा रहे हैं, देखकर आश्चर्य होता है! ओशोधारा के इतने सारे आचार्य इस महायज्ञ में अपना जीवन अर्पित कर रहे हैं। क्या आपको भरोसा है कि यह बेहोश दुनिया कभी होश में आएगी?

सवाल महत्वपूर्ण है। बहुत अवतार, तीर्थंकर, बुद्धपुरुष, ज्ञानी जन, पैगम्बर दुनिया में आए–गए लेकिन दुनिया तो वैसी ही चल रही है जैसी थी। कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता फिर क्यों इतनी मेहनत की जाती है? यह सवाल ऐसा ही है कि जैसे कोई पूछे कि अस्पताल में तो हमेशा बीमार रहते हैं। डॉक्टर इतनी दवाइयां कर रहे हैं लेकिन फिर भी बेड में इतने सारे मरीज क्यों रहते हैं या कोई पूछे कि स्कूल के शिक्षक इतनी मेहनत कर रहे हैं शिक्षा देने के लिए लेकिन हमेशा ही अशिक्षित नए बच्चे चले आते हैं, स्कूल में तो हमेशा अशिक्षित ही रहेंगे। याद रखना, अस्पताल से जो स्वस्थ हो गए वो फिर अस्पताल में नहीं लौटते। अस्पताल तो

बीमारों के लिए ही है और स्कूल तो उन्हीं के लिए है जिनको शिक्षा प्राप्त करनी है। जिन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली, सबक सीख लिया वे स्कूल से उत्तीर्ण होकर चले गए। वे तो वापस भी आना चाहेंगे तो उनको प्रवेश नहीं मिलेगा। जरा सोचो, अगर कोई लड़का दसवीं पास हो गया और वह फिर जाए के.जी. स्कूल में कि मुझे भर्ती कर लीजिए। स्कूल वाले कहेंगे कि क्षमा करें, अगर दसवीं वालों को हम के.जी. में एडमीशन देने लगे तो छोटे बच्चों का क्या होगा, उनको कहां जगह मिलेगी।

ठीक इसी प्रकार यह संसार भी एक पाठशाला है, एक चिकित्सालय है। यहां हमेशा ही बीमार लोग रहेंगे। हां, जो स्वस्थ होते गए अर्थात् जो स्वयं में स्थित होने लगे वे यहां से विदा होते जाएंगे, उनका फिर यहां आवागमन नहीं होगा। इस संसार में तो हमेशा नई–नई चेतनाएं आती रहेंगी। जो परिपक्व और प्रौढ़ हो जाएंगी, जिन्होंने संसार का सबक सीख लिया, जो यहां से उत्तीर्ण हो गए, जिन्होंने अध्यात्म की गहराई छू ली, उनका फिर यहां आवागमन नहीं होता, वे मुक्त हो गए। फिर उनको इस स्कूल में आने की कोई जरूरत नहीं। तो इस संसार को एक पाठशाला की तरह लेना, अब तुम अपने प्रश्न का उत्तर अच्छे से समझ पाओगे। संसार में तो हमेशा ऐसे ही लोग रहेंगे, इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि डॉक्टर चिकित्सा करना छोड़ दें और शिक्षक पढ़ाना छोड़ दें। संसार की हालत आगे भी ऐसी ही रहेगी, कोई बहुत बड़ा परिवर्तन होने वाला नहीं है। उसका कारण खूब अच्छे से समझ लो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि चिकित्सक, कि शिक्षक की मेहनत बेकार है। उनकी मेहनत तो बड़े काम की है। उनके कारण ही तो लोग यहां से स्वस्थ होकर विदा हो रहे हैं, डिस्चार्ज हो रहे हैं। उनके कारण ही तो लोग सबक सीखकर मुक्त हो रहे हैं। और तुम जो शब्द उपयोग कर रहे हो श्रम, जीवन अर्पण ये शब्द जरा बड़े–बड़े हैं, इतने बड़े शब्द मुझे अच्छे नहीं लगते, ये तो मजा है, मौज है, मस्ती है, इसको तुम श्रम की तरह, परिश्रम की तरह मत लेना।

कोई जीवन अर्पण नहीं कर रहे हैं, कोई परिश्रम नहीं कर रहे हैं, अपना मजा, मौज है बस... जैसे कोई फूल खिलता है तो सुवास उड़ती है। अब तुम फूल से क्या यह कहोगे कि बेचारा कितनी मेहनत कर रहा है सुगंध उड़ाने के लिए। क्या तुम कहोगे पर्वत से कि कितने झरनों को पानी दे रहा है, बहा रहा है, इसमें कितनी मेहनत कर रहा है। नहीं, पर्वत खूब जल से भरा है और उससे झरने फूट–फूटकर बहते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक सहज घटना है। इसको एक बिल्कुल सहज सी घटना की तरह लेना। सुनो यह प्यारा गीत–

निगाहें–खुदा में होशियार हैं वो दीवाने,
जो जानबूझ कर खुद ही बने हैं अंजाने।
ये शहर वाले भला उनकी शान क्या जानें,
जो बस्तियों को भी शरमा रहे हैं वीराने।
ओशो के नजरिए से जो देखा तो कोई गैर न दिखा,
मेरी नजर में तो अपने थे और बेगाने।

जब तक मेरे भीतर अहंकार था, अपने और पराए का द्वंद था। ओशो की दृष्टि से जब

देखा तो सारे भेद मिट गए, अद्वैत फलित हो गया।

ओशो की नजरिए से जो देखा तो कोई गैर न दिखा,
मेरी नजर में तो अपने थे और बेगाने।
यही थी उनकी रजा एक सदा लगा के चले,
किसको पड़ी है कि कोई माने या कि ना माने,
आज चाहे कोई पूछे नहीं मगर एक दिन
जबाने–खल्क पे होंगे ओशो के अफसाने।

तुम्हें लगता होगा लोग नहीं सुन रहे हैं। लोग सुन रहे हैं, धीरे–धीरे बात फैल रही है। बहुत लोग मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। एक दिन जबाने–खल्क पे होंगे ओशो के अफसाने। ओशो जो बता के गए हैं वह जीवन का विज्ञान है। ताओ, धम्म, जीवन का नियम, वह जीवन का परमसत्य है। चाहे लोग आज समझें, चाहे न समझें लेकिन कभी न कभी जरूर समझेंगे, सत्य का कोई आग्रह नहीं होता, सत्य स्वयं अपने आप सिद्ध हो जाता है। तुमने सुनी होगी कहानी कोपरनिकस की, गैलीलियो की। लोगों ने उनके जमाने में उनकी बात नहीं मानी लेकिन बाद में माननी पड़ी क्योंकि उनकी बात में सच्चाई थी। ठीक ऐसे ही ओशो जैसे बुद्ध पुरुषों की बात सुनी जाती है। हां, ये बात अलग है कि जिन्होंने सुन ली वे विदा हो जाते हैं। इस सूक्ष्म तथ्य को जरा ठीक से समझना।

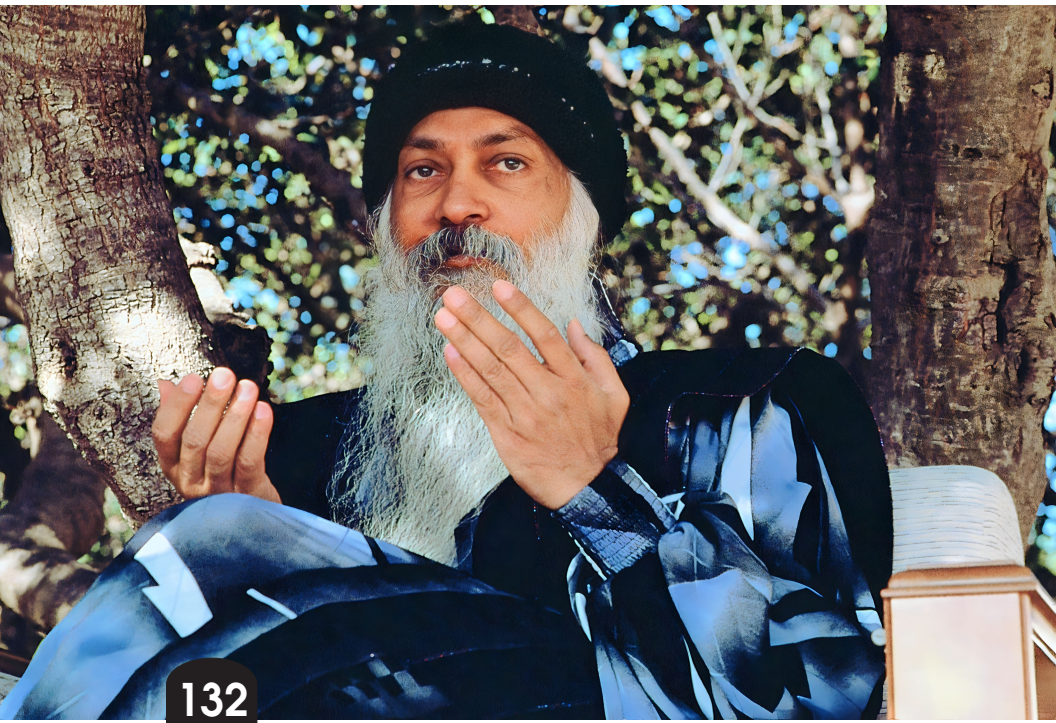

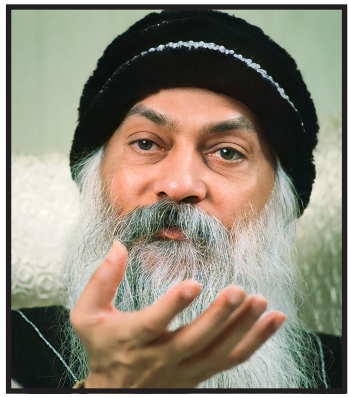

अध्याय–22

नकली गुरुओं की पहचान

आज का पहला प्रश्न है धर्म के नाम पर हजारों गुरुओं के झूठे धंधे क्यों चल रहे हैं? कलियुगी, नकली गुरु–घंटालों की पहचान क्या होगी? पूछा है बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश से मां प्रेम प्रज्ञा ने।

झूठे गुरुओं के धंधे सदा से चलते रहे हैं, आज भी चल रहे हैं और आगे भी चलेंगे। जहां असली सिक्के रहते हैं वहां नकली सिक्के भी रहेंगे, जहां सत्य चलता है वहां असत्य भी होगा। याद रखना, यदि सचमुच का कोई नोट न हो तो उसका नकली नोट भी नहीं हो सकता, अगर कोई सिक्का चलता ही न हो फिर उसकी झूठी नकल भी कोई नहीं बनाएगा।

मैंने सुना है कि एक नकली नोट छापने वाले ने एक बार भूल से पंद्रह सौ रुपए का नोट छाप लिया। फिर उसने सोचा कि शहर के लोग तो इसको लेंगे नहीं, गांव के सीधे–सादे लोगों को ही बुद्धू बनाना पड़ेगा। शहर के लोगों को भ्रम है कि गांव में सीधे–सादे लोग रहते हैं, मैंने तो आज तक कभी देखे नहीं! वह आदमी एक छोटे से गांव में गया, एक बूढ़ा आदमी अपनी खाट पर बाहर ही बैठकर हुक्का पी रहा था। उसने कहा कि बाबा, पंद्रह सौ रुपए के जरा फुटकर दे दीजिए मेरे पास खुल्ले पैसे नहीं हैं। बूढ़े ने पंद्रह सौ का नोट लिया, घर के भीतर गया, उसने भीतर से साढ़े सात–सात सौ के दो नोट पकड़ाए और कहा कि ये लीजिए। चुटकुलों में हो सकता है साढ़े सात सौ का नोट, सचमुच में नहीं होगा क्योंकि सचमुच में तो

साढ़े सात सौ का नोट नहीं होता। तो जहां–जहां असली होगा वहीं–वहीं नकली होगा, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। हर चीज में झूठ पैदा होता है, तो निश्चित रूप से अध्यात्म के नाम पर भी झूठे लोग होंगे। तुम पूछते हो कि पहचान क्या है? इन नकली गुरुओं के छः–सात प्वाइंट मैं बताता हूं।

पहला, धर्म के नाम पर शारीरिक स्वास्थ्य बेचेंगे, योग सिखाएंगे... अब अगर योग से स्वास्थ्य मिलता है तब तो ये फिजियोथेरेपी का हिस्सा होना चाहिए अस्पताल में। इसका चेतना से, अध्यात्म से, परमात्मा से क्या लेना देना!

दूसरी बात जो झूठे गुरु हैं वे चमत्कार दिखाएंगे, राख निकालकर बताएंगे, अच्छा नाम दे देंगे... राख को विभूति कहेंगे... बड़ा महत्त्वपूर्ण नाम। अब राख निकालने की क्या जरूरत है, मदारी का खेल... लेकिन ये अपने आपको चमत्कारी बाबा कहेंगे। निकालना ही था तो कुछ और निकालते, गेहूं, चावल, दाल निकालते। देश में भुखमरी है, राख का क्या करेंगे। कपड़ा निकालते, अरे जूता–चप्पल ही निकाल देते तो कम से कम पहनने के काम आते, राख का कोई क्या करेगा। मगर लोग चमत्कृत हो जाएंगे और समझेंगे कि कोई महान विभूति हैं, अवतारी पुरुष हैं।

तीसरे झूठे प्रकार के लोग हैं जो कह रहे हैं कि हम आशीर्वाद देते हैं, कृपा करते हैं, हमारे आशीर्वाद से यह हो जाएगा, वह हो जाएगा। लोग आशीर्वाद के लोभ में इनके पास भीड़ लगा लेंगे। निश्चित रूप से कुछ लोगों को फायदा हो जाएगा, समझो सौ लोग अगर मुकदमा लड़ रहे हैं तो गणित के हिसाब से भी पचास प्रतिशत तो जीतेंगे। क्योंकि पचास लोग बाकी के पचास से लड़ रहे हैं। अगर सारे लोग आशीर्वाद लेने आ गए तो पचास परसेंट तो जीतेंगे ही जीतेंगे। अगर सौ आदमी बीमार हैं और सारे बाबाजी का आशीर्वाद लेने आए तो सत्तर–अस्सी प्रतिशत लोग ठीक हो जाएंगे, हर बीमारी में आदमी मर थोड़े ही जाता है। जब दुनिया में कोई 'पैथी' नहीं थी तब भी तो लोग ठीक होते थे। पशु–पक्षी भी तो बीमार होते हैं लेकिन वे भी ठीक हो जाते हैं। ये कहेंगे कि इनके आशीर्वाद से ठीक हो गए हैं, अब इनकी नकली दुकान चलती रहेगी।

चौथे प्रकार के झूठे गुरु हैं जो लोगों का मनोरंजन करते हैं। सुना रहे हैं रामायण की कहानी, महाभारत की कहानी, वेदों की कहानी, कोई सुना रहा है बाइबिल की कहानी। कहानी, कथा और मनोरंजन चल रहा है, धार्मिक सीरियल चल रहे हैं। इनमें धर्म जैसा कुछ भी नहीं, सिर्फ मनोरंजन है। जबकि वास्तविक धर्म मनोभंजन है।

पांचवे प्रकार के जो झूठे गुरु हैं वे अदृश्य चीजों का आश्वासन दे रहे हैं। ऐसा–ऐसा करो तो स्वर्ग मिलेगा, डरा भी रहे हैं कि अगर हमारी बात नहीं मानी तो नर्क मिलेगा। यहूदियों के टेन कमाण्डमेंट्स हैं, अगर उनका पालन किया तो स्वर्ग पक्का है। ईसाई कह रहे हैं कि अगर तुम ईसाई हो जाओ तो स्वर्ग जाओगे। मुसलमान कह रहे हैं कि हजरत मोहम्मद की बात मानो, मुसलमान बन जाओ तब तो पक्का ही तुम्हें जन्नत मिल जाएगी, वरना तुम काफिर और नर्क में गिरोगे। झूठे आश्वासन, भय और लोभ दे रहे हैं।

छठवें प्रकार के जो नकली गुरु हैं वे भीड़ के अहंकार का शोषण कर रहे हैं। भीड़ जो मानती है, जिस अंधविश्वास पर भरोसा करती है, वे उसी का समर्थन करते हैं। भीड़ उनके संग हो जाती है क्योंकि उसका अहंकार पुष्ट होता है। जबकि वास्तविक गुरु तुम्हारे अहंकार को तोड़ेगा, अहंकार ही तो एकमात्र बाधा है, मनुष्य और परमात्मा के बीच में। लेकिन ये नकली गुरु तुम्हारे अहंकार को पुष्ट करेंगे। अगर तुम मानते हो भारत महान है, वे भी कहेंगे भारत पुण्यभूमि है, देवी–देवता यहां पैदा होने के लिए तरसते हैं। तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी कि जरूर तुम भी देवी–देवता होओगे। अगर तुम मानते हो कि राम भगवान थे तो ये भी समर्थन करते हैं कि राम भगवान थे। तुम्हें बड़ी संतुष्टि मिलती है कि हमारी धारणा बिल्कुल ठीक है। लेकिन याद रखना, तुम्हारा रूपांतरण नहीं होता। तुम जैसे गए थे वैसे ही खाली हाथ लौट आते हो, अपनी धारणाओं को मजबूत करके। वास्तविक गुरु तो तुम्हारा रूपांतरण करेगा। और साथ में झूठे गुरु का लक्षण है– मौन। कुछ लोग हैं जो बिल्कुल मौन में रहते हैं, कुछ बोलते ही नहीं, मौनी बाबा कहलाते हैं। जगह–जगह तुम्हें मौनी बाबा मिल जाएंगे। उनके आसपास एक रहस्य की आवोहवा बन जाती है, बड़ा ही मिस्टीरियस मामला। वे कुछ कहते ही नहीं, बिल्कुल मौन में हैं। हो सकता है उनको कुछ कहना आता ही नहीं हो, उनके पास कुछ कहने लायक हो ही नहीं। लेकिन एक मिस्ट्री खड़ी हो जाएगी कि उनके पास एक रहस्य है और बहुत से लोग उस रहस्य के लिए उनके आसपास मंडराते रह जाएंगे। प्रेम प्रज्ञा, थोड़ी प्रज्ञावान बनो और पहचानो इन नकली लोगों को। तभी तुम्हें वास्तविक गुरु की पहचान हो सकेगी। खोज करनी पड़ेगी। इस संबंध में परमगुरु ओशो की वाणी सुनो–

'सद्गुरु तो कभी–कभी होते हैं, पर सद्गुरु की तलाश तो सदा होती है। इसलिए झूठों को बैठने का अवसर मिल जाता है। और चूंकि तुम कभी कुछ करते ही नहीं, तुम सिर्फ सुनते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करोगे, तो ही तुम्हें धोखा नहीं दिया जा सकता है। मेरी ऐसी समझ है कि चूंकि तुम धोखा देना चाहते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करना तो चाहते नहीं। तुम चाहते हो कि किसी की कृपा से हो जाए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि जब आपके पास आ गए तो अब क्या ध्यान करना? आपकी कृपा से! वे मुझे ही धोखा दे रहे हैं। वे मुझे ही तरकीब बता रहे हैं कि अब आपके पास आ गए हैं तो अब क्या ध्यान करना? ध्यान दूसरे करें, हम तो श्रद्धा करते हैं। इतनी भी श्रद्धा नहीं है कि मैं जो कहूं वह करें, और श्रद्धा करते हैं! क्योंकि मुझ पर तुम्हारी श्रद्धा और कैसे प्रकट होगी? जो मैं कहता हूं, वह करो। तो तुम करते नहीं हो इसलिए झूठे गुरु भी चलते जाते हैं। तुम करो, तो तुम्हारा करना ही प्रमाण हो जाएगा। उस आदमी को बार–बार दिखायी पड़ने लगेगा कि कुछ भी नहीं हो रहा है, किसी को कुछ भी नहीं हो रहा है। और लोग जाने लगे हैं। अपने आप बाजार उजड़ जाएगा।

और यह भी सोच लेने जैसा है कि चूंकि तुम अकसर करना नहीं चाहते, इसलिए जल्दी मानना चाहते हो। तुम्हारी मानने की जल्दी भी, करने से बचने की तरकीब है।

जीवन में प्रत्येक चीज अर्जित करनी होती है। श्रद्धा भी इतनी आसान नहीं है कि तुमने कर लीं और हो गयीं। संघर्ष करना होगा। तपाना पड़ेगा, स्वयं को जलाना पड़ेगा। धीरे–धीरे निखरेगा तुम्हारा कुंदन। गुजरेगा आग से स्वर्ण, शुद्ध होगा। तभी तुम्हारे भीतर श्रद्धा का आविर्भाव होता है। और सदगुरु गली–गली नहीं बैठे हुए हैं। कभी हजारों वर्षों में एक सिद्ध सदगुरु होता है। सदियां बीत जाती हैं खोजियों को खोजते–खोजते।

इसलिए अगर कभी तुम्हें किसी सदगुरु की भनक पड़ जाए तो सौभाग्य समझना! अहोभाग्य समझना!!

अगला प्रश्न है मैं अपने पति परमेश्वर की कंजूसी से त्रस्त हूं। भगवान आप ही उन्हें सद्बुद्धि देने की कृपा करें? संकोचवश मैं अपना नाम–पता नहीं लिख पा रही हूं, क्षमा कीजिएगा।

अब आ गईं मुझसे कृपा मांगने। मैं इनके पति के ऊपर कृपा करके उनको सद्बुद्धि दूं, हद हो गई! ये काम मुझसे न हो सकेगा, मैं कोई आशीर्वाद नहीं देता। अब तुम्हारे पति कंजूस हैं, एक तो वे खुद नहीं आए, हो सकता है आने–जाने का खर्चा बचाने के लिए न आए हों। तुम आई हो और पूछ रही हो कि मैं उनको सद्बुद्धि दे दूं। मुझे कोई चमत्कार की कला नहीं आती। हां, समझा सकता हूं। अगर वे मौजूद होते तब तो समझ ही जाते। खैर, तुम ले जाओ मेरा संदेश और उन्हें यह चुटकुला कह देना, शायद इसी से उन्हें समझ में आ जाए।

सेठ चंदूलाल की पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी, करीब–करीब मरणासन्न थी। चंदूलाल ने अंत में सोचा कि डॉक्टर को बुला ही लाएं वरना दुनिया में बदनामी होगी कि पत्नी मर गई और ईलाज नहीं करवाया। आज तक तो कभी डॉक्टर को बुलाया नहीं था। चंदूलाल बोले कि भागवान, मैं जा रहा हूं डॉक्टर को बुलाने और एक बात याद रखना कि इस बीच में अगर तुम्हारे प्राण निकलने लगें तो कम से कम पंखा बंद कर देना। बिजली का खर्च तो बचे।

एक मारवाड़ी की पत्नी कह रही थी कि सुनो जी, आज रात मैंने सपना देखा कि आप एक बहुत बड़े साड़ी एम्पोरियम में मेरे लिए बड़ी कीमती साड़ियां खरीद रहे हैं। पति ने कहा कि आज रात मैंने भी एक सपना देखा कि उन साड़ियों का बिल तुम्हारे पिताजी चुका रहे हैं!

एक कंजूस आदमी मुझे बता रहा था कि यदि कार खराब हो जाए और उसे ठीक करवाने जाओ तो इतने पैसे खर्च होते हैं जितना कि पत्नी के बीमार होने पर उसकी दवाई में खर्च होते हैं। इसलिए जब कोई पति अपनी पत्नी के बैठने के लिए कार का दरवाजा खोले तो समझ जाना कि या तो कार नई है या पत्नी नई है।

एक मारवाड़ी युवक अपनी प्रेमिका के साथ होटल में चाय पी रहा था। चाय पीते–पीते उसने कहा कि आखिरी बार तुमसे फिर पूछ रहा हूं, साफ–साफ बताओ मुझसे शादी करोगी कि नहीं। लड़की बोली नहीं। थोड़ी देर बाद प्रेमी ने फिर कहा कि एक बार फिर सोच लो, पक्का इरादा बताओ शादी करोगी कि नहीं। लड़की बोली कि सौ बार कह दिया नहीं, नहीं, नहीं। वह युवक जोर से चिल्लाया, वेटर..... सुनो, दोनों के बिल अलग–अलग लाना।

तुम्हारे पतिदेव को सद्बुद्धि देने की कृपा तो मैं न कर पाऊंगा, एक बार उन्हें यहां भेज ... हां, एक बात है, धन की पकड़ का जो कारण है उसे मैं समझा सकता हूं... कोई

आदमी क्यों वस्तुओं को, धन को इतनी जोर से पकड़ता है, क्यों कंजूस हो जाता है। क्योंकि भीतर उसे निर्धनता का एहसास है। अगर वह भीतर भराव महसूस करे, काश उसके भीतर ध्यान का भराव, चैतन्यता का विकास हो जाए, उसके भीतर समाधि गूंजे, ओंकार का स्वर गूंजे, मीरा की तरह वह भी कह सके कि 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो', तब बाहर की कंजूसी विदा हो जाएगी। तो उपाय तो ध्यान और समाधि ही है, अपने पति को जाकर कहना।

अगला प्रश्न है, ओशो की मधुशाला में आकर खूब मस्ती छा गई है। ओशोधारा वास्तव में आनंद, उत्सव और अमृत की धारा है, सत्संग और समाधि की सुरा पी–पीकर भी प्यास नहीं बुझती, क्या करूं? पूछा है पोखरा, नेपाल से स्वामी चैतन्य सागर ने।

खूब सुंदर हो रहा है चैतन्य सागर, तुम्हारा ठीक विकास हो रहा है। प्रश्न तो कुछ है नहीं तुम्हारा इसलिए उत्तर भी कुछ न दूंगा। एक छोटा सा गीत तुम्हारे लिए–

एक जाम और साकी एक जाम और, एक जाम और,
रोज–रोज पीकर भी प्राण न अघाए,
जितनी मय पियो प्यास उतनी ही बढ़ जाए,
कुछ हमें भी पीने का सलीका न आए,
कंप जाए जाम मय ढुलक–ढुलक जाए।
ऐसी पिला अब कि नशा आ के फिर न जाए,
सूली बने सेज जहर अमृत हो जाए,
जुड़ जाए मीरा मंसूरों में एक नाम और,
एक नाम और एक नाम और, एक नाम और।
एक जाम और साकी एक जाम और।
आंखों में जब मय के सुरूर हुए गहरे,
पांव हुए डगमग पर मन के राही ठहरे,
टूट गए सारे संबंधों के दर्पण,
घर–बाहर सभी ओर एक अजनबीपन,
अपने भी पास नहीं अब तो अपनापन,
भीतर गौतम को मिला सूना सा वेणुवन,
बाहर के कान्हा को एक धाम और, एक धाम और,
एक जाम और साकी एक जाम और।
घिसे–पिटे नामों को तोते दोहराएं,
खुद भी भरमें और औरों को भी भरमाएं,
वहां से भी चूकें और यहां भी गंवाएं,
पर कुछ ऐ पंक्षी जिन्हें पिंजरे न भाएं,

राम रस पीकर वे नभ में चहचहाएं,
नाम में सतनाम का नया अर्थ पाएं,
देना है ओम को एक नाम और, एक नाम और,
एक जाम और साकी एक जाम और।

तुम्हारे जीवन में सुंदर घटित हो रहा है, ओशो की इस मधुशाला में ध्यान की मदिरा पी रहे हो। अंगूरों से ढली तो तुम्हें बेहोश करती है, ये जो आत्मा की ढली शराब है ये तुम्हें होश में लाती है, तुम्हारी मूर्छा को तोड़ती है। बस ऐसे ही एक पर एक जाम पीते चलो, रोज–रोज तुम्हारी समाधि गहराती जाए, गहराती जाए।

पतंजलि कहते हैं, समाधि में भी कई सीढ़ियां हैं। सविकल्प समाधि, उससे आगे है निर्विकल्प समाधि। सविचार समाधि से आगे बढ़ो तो निर्विचार समाधि और अंत में सबीज समाधि के बाद आखिरी छलांग है निर्बीज समाधि। तुम्हारी प्रगति बिल्कुल ठीक हो रही है, अब सबीज समाधि से निर्बीज समाधि की ओर चलो। आखिरी पैग, आखिरी जाम पी लो। उसके बाद फिर कोई बचता ही नहीं। कोई मुझसे पूछ रहा था कि कब तक ध्यान करना होगा? मैंने उसे एक चुटकुला सुनाया कि नसरुद्दीन का बेटा जब बड़ा हो गया तो उसने कहा कि पापा अब मैं वयस्क हो गया हूं क्या मैं भी शराब पी सकता हूं? अब नसरुद्दीन मना कैसे कर सकता था क्योंकि वह खुद ही महापिअक्कड़ था। उसने कहा कि बेटा पी सकते हो। बेटे ने कहा कि फिर आप मुझे बता दीजिए कि कितनी पीनी चाहिए और कब तक पीनी चाहिए? नसरुद्दीन ने कहा कि चल शराबखाने, मेरे संग ही बैठ। जब एक आदमी तुझे दो दिखाई देने लगें तब समझना कि अब काफी पी ली अब घर जाने का समय आ गया। यह सिद्धांत पकड़कर चल। नसरुद्दीन की बात से हमें समझ में आया कि ध्यान और समाधि के लिए इसका ठीक उल्टा सिद्धांत पकड़कर चलना, जब दो में तुम्हें एक दिखाई देने लगे तब जानना तुम कि आखिरी जाम ने पी लिया ध्यान का, समाधि का। जब अद्वैत फलित हो जाए, सबमें एक ही दिखाई पड़ने लगे तब समझना कि आखिरी जाम तुमने पी लिया, संबोधि उपलब्ध हो गई, निर्बीज समाधि लग गई। उसी में आगे बढ़ते चलो एक जाम और, एक जाम और।

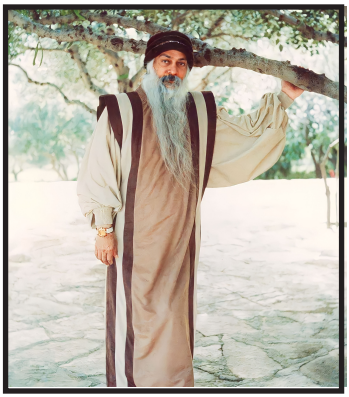

अध्याय–23

अशांति के बीच शांति

पहला प्रश्न है, सांसारिक उपद्रव में रहते हुए शांति पाना क्या संभव है? सरदारी लाल, साबुरकंडी से यह प्रश्न पूछ रहे हैं।

सरदारी लाल, जीवन में तुम चारों तरफ देखो और तुम पाओगे कि जीवन में हर तरफ विपरीत मौजूद है। कांटों के बीच में गुलाब खिलता है, पत्थरों के बीच में हीरे मिलते हैं, सीपियों में मोती छिपा है, कीचड़ में कमल खिलते हैं, पत्थर जैसे कठोर दिखने वाले नारियल के भीतर तरल पानी और कोमल मलाई होती है। पदार्थ के कण–कण में परमात्मा छिपा है और इस मृणमय शरीर में चिन्मय आत्मा छिपी है। अंधेरी काली रात में चांद और तारे चमकते हैं। अशांति के बीच ही तो शांति संभव होगी। यही तो जीवन का नियम है। निश्चित रूप से संभव है। जब कबीर शांत हो सकते हैं, नानक शांत हो सकते हैं, रैदास शांत हो सकते है, बुद्ध और महावीर शांत हो सकते हैं, जब मैं शांत हो सकता हूं तो तुम भी शांत हो सकते हो। मैं भी तुम्हारी तरह ही एक साधारण इंसान हूं। वही सांसारिक उपद्रव मेरे चारों तरफ भी हैं। अगर मैं शांत हो सकता हूं तो तुम भी शांत हो सकते हो। चलो छोड़ो रैदास, नानक, बुद्ध को, उनके बारे में तो हम सोचते हैं कि बड़े महापुरुष हैं, अद्वितीय हैं, अनूठे हैं। लेकिन मैं तो तुम्हारे जैसा साधारण इंसान हूं। अगर मुझे आनंद फलित हो सकता है तो कम से कम मुझसे आशा

रखो कि तुम्हें भी फलित हो सकता है। मुझमें तो कोई विशिष्टता नहीं है, मुझमें कोई खूबी नहीं है। न मैं ईश्वर का अवतार हूं, न मैं किसी परमात्मा का इकलौता पुत्र हूं, न मैं कोई तीर्थंकर हूं। अगर मेरे जीवन में शांति आ सकती है तो तुम्हारे जीवन में भी आ सकती है। तुमने प्रयास भर नहीं किया। बल्कि ठीक उल्टा है, तुम अशांत होने के सारे प्रयास करते हो। अहंकार की दौड़, महत्त्वाकांक्षाएं, ऊंचे आदर्श और फिर तुम कहते हो कि अशांति क्यों है?

मैं पढ़ रहा था एक चुटकुला, घर में शांति तभी रह सकती है जब पति बहरा और पत्नी गूंगी हो। लेकिन गूंगे और बहरे होने का एक और कारण मैं तुम्हें बताता हूं। थोड़ी देर के लिए बाहर से बहरे हो जाओ। भीतर के अनहद नाद को सुनो, शांति के स्वर को सुनो। बाहर से गूंगे हो जाओ थोड़ी देर के लिए। उसी को मौन की साधना कहते हैं। चौबीस घंटे में से एक घंटा निकाल लो जब तुम चुप हो, न कुछ देख रहे और न कुछ सुन रहे। भीतर देखो, भीतर सुनो और बोलना ही बंद कर दो। न केवल वाणी से, भीतर तुम्हारे विचार भी न चलें, भीतर भी गूंगे हो जाओ और तब तुम पाओगे कि शांति अवतरित होने लगी। चारों तरफ चक्रवात चलता रहेगा और उसका केन्द्र बिल्कुल थिर होगा।

एक दूसरा चुटकुला पढ़ रहा था... हॉलीवुड में दो बच्चे बात कर रहे थे। एक बोला मेरे दो भाई, तीन बहनें, चार चचेरे भाई और पांच अंकल्स हैं। दूसरे ने बोला यह तो कुछ भी नहीं, मेरी अब तक छः मम्मियां और सात डैडी हो चुके हैं! माना कि संसार में भारी उपद्रव है, सात-सात पिता हैं। लेकिन याद रखो, एक और परमपिता भी है, वह तुम्हारे भीतर है। उस 'एक' से नाता जोड़ो, अनेक से जो जोड़ेगा वह अशांति में पड़ेगा। नानक कहते हैं 'एक ओंकार सतनाम'। उस एक ओंकार में, उस एक ध्वनि में डूबना शुरू करो। तब तुम्हारे जीवन में शांति ही शांति हो जाएगी। ध्यान कुछ और नहीं, उसी शांति को पाने की कला है। अगर जंगल में जाकर शांति मिली तो वह तुम्हारी शांति नहीं, वह जंगल की शांति है। यहीं संसार और बाजार में रहते हुए अगर तुम शांत हो पाए तो उसमें तुम्हारी कुछ खूबी होगी। अगर इस घनी धूप में शीतलता पा लो तो इसमें तुम्हारी कला है, ध्यान इसी का नाम है। सुनो ये प्यारी पंक्तियां-

चांदनी को छू लिया है, हाय मैंने क्या किया है,
आज मन है मौन बिल्कुल, बीन सा झंकृत हुआ है,
हाय मैंने क्या किया है।
निराकार शक्ति कलश में, प्राण अमृत पी लिया है,
हाय मैंने क्या किया है।
एक लघु क्षण में सनातन पूर्ण जीवन जी लिया है,
हाय मैंने क्या किया है।

यह तुम्हारे जीवन में भी संभव है, तुम्हारे जीवन में भी यह झंकृत हो सकता है। हृदय का सितार झनझना सकता है और ओंकार का संगीत उसमें गूंज सकता है तब जीवन में शांति ही शांति हो सकती है।

✹✹✹✹✹

गाजियाबाद से स्वामी जीवन अभय पूछते हैं कि अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, हरि ओम तत्सत् जैसी घोषणाओं के पीछे कोई तर्क या विचार प्रक्रिया नजर नहीं आती। भारतीय मनीषियों के ये वक्तव्य ज्ञान की कसौटी पर किस तरह कसे जा सकते हैं?

आध्यात्मिक वक्तव्य विज्ञान की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते। यह तो ऐसा ही हो गया कि कोई सुनार सोना कसने की कसौटी और पत्थर लेकर पहुंच जाए फूल के बगीचे में और कहे कि तुम कह रहे थे फूल बड़े सुंदर होते हैं, लाओ तुम्हारे फूलों को घिसकर देखूं कसौटी पर, परखूं उनको कि कितने सुंदर हैं? सोने की कसौटी पर सौंदर्य नहीं कसा जा सकता है। विज्ञान विश्लेषण करता है और भीतर के सारे अनुभव संश्लेषण से आते हैं। विज्ञान चीजों को खण्ड–खण्ड करता है, तोड़ता है और धर्म चीजों को जोड़ता है। इसलिए धर्म की जो अंतिम अनुभूति है वह है अखण्डता, अद्वैत की अनुभूति है।

विज्ञान पहुंचता है परमाणु पर, धर्म पहुंचता है परमात्मा पर, विराटतम पर। दोनों की यात्राएं बिल्कुल भिन्न हैं। इसलिए विज्ञान जो कि ऑब्जेक्टिव नॉलेज हासिल करता है, वह धर्म के संबंध में कभी न जान सकेगा क्योंकि अध्यात्म सब्जेक्टिव नोइंग है। विज्ञान का ज्ञान वस्तुगत है, उसका विषय बाहर है और धर्म का विषय स्वयं का होना है, आत्मगत है। धर्म की तो छोड़ो, हम अन्य भीतरी अनुभवों को भी विज्ञान की कसौटी पर नहीं कस सकते। किसी लैला–मंजनू का पोस्टमार्टम करके तुम पता नहीं कर सकते कि इनके भीतर हृदय में कोई प्रेम था। प्रेम न मिलेगा, फेफड़ा मिल जाएगा, क्योंकि वह पंप करता था खून को, प्रेम कहीं न मिलेगा पोस्टमार्टम में। आंतरिक अनुभव की छोटी से छोटी चीज भी न पा सकोगे। अगर तुमसे कोई पूछे कि तुम्हारे सिर में दर्द है, सिद्ध करो? कैसे सिद्ध करोगे? तुम कहोगे बस मैं जानता हूं। ठीक इसी प्रकार भारतीय मनीषियों के वक्तव्य हैं। जब वे कहते हैं 'अहं ब्रह्मास्मि', कोई तर्क नहीं देते, सीधी घोषणा है कि ऐसा है। आपका सिर दर्द ठीक हो गया तो क्या आप यह कहेंगे कि सिर दर्द ठीक हो गया। कोई कहे कि तार्किक रूप से सिद्ध कीजिए कि आपका सिर दर्द ठीक हो गया तो क्या कहेंगे आप। आप कहेंगे बस मैं जानता हूं, इसमें तर्क और विचार का कोई सवाल नहीं। ऋषियों ने जाना कि मैं ब्रह्म हूं। तत्वमसि, तुम भी वही हो। हरि ओम तत्सत्, परमात्मा ओंकार स्वरूप है। दिस इज दि अल्टीमेट ट्रुथ, तत् सत्, यही है सत्य। कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है।

फिलॉसफी में तर्क होते हैं, विज्ञान में तर्क होते हैं, काव्य में तर्क नहीं होते। तुम किसी कवि के पास जाकर ऐसा तो नहीं कहते कि तुमने कैसे कविता लिख दी कि तुम्हारी प्रेमिका का चेहरा चांद जैसा है, सिद्ध करो। चांद का डायमीटर इतने करोड़ किलोमीटर है, तुम्हारी प्रेमिका का है? चांद रोज घटता–बढ़ता रहता है, क्या तुम्हारी प्रेमिका छोटी–बड़ी होती रहती है? नहीं, कविता को तुम विज्ञान की कसौटी पर नहीं कसते हो। फिर अध्यात्म का अनुभव तो और भी गहरा है, उसको क्यों तर्क की कसौटी पर कसना चाहते हो। प्रेम या सौंदर्य भी सिद्ध नहीं हो सकते, कविता भी सिद्ध नहीं हो सकती, अध्यात्म भी सिद्ध नहीं होता। हां, धार्मिक

व्यक्ति, बुद्धपुरुष अपने भीतर जानता है और पूर्ण निश्चयपूर्वक जानता है, निस्संदेह रूप से जानता है यद्यपि सिद्ध नहीं कर सकता। निश्चय के संबंध में गीतादर्शन में बोलते हुए ओशो कहते हैं–

'चित्त की दो दशाओं में निश्चय का भाव पैदा होता है। एक तुम जब तर्क से, विचार से, मन से किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हो तब भी लगता है निश्चय हुआ है। लेकिन वह निश्चय क्षणभंगुर है। नए तर्क आएंगे और वह निश्चय डगमगा जाएगा।

तो तर्क से जो निश्चय आता है, उसको निष्कर्ष कहो, निश्चय मत कहो। वह सिर्फ निष्कर्ष है, कनक्लूज़न है, डिसीजन नहीं है। इसलिए वह हमेशा अस्थायी है।

जैसे विज्ञान निष्कर्ष निकालता है, निश्चय नहीं। न्यूटन ने कुछ खोजा तो कुछ निष्कर्ष निकाले। फिर आइंस्टीन ने उनको गलत कर दिया; और खोज आगे बढ़ गई। विज्ञान कभी निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कह सकेगा, उसके निष्कर्ष बदलते ही रहेंगे।

तर्क कभी भी निश्चय पर नहीं पहुंचता। उसके सभी निश्चय निष्कर्ष होते हैं। फिर कोई नया निश्चय उठा, फिर कोई नई घटना घटी, फिर से डांवाडोल हो जाता है।

लेकिन कृष्ण यह नहीं कहते कि मैं तुम्हें अपना निष्कर्ष बताता हूं। परिस्थिति बदलती है और निष्कर्ष बदल जाते हैं क्योंकि नई परिस्थिति के अनुकूल निष्कर्ष को होना चाहिए। लेकिन निश्चय नहीं बदलता, निश्चय परिस्थिति पर निर्भर ही नहीं है; नहीं तो बदलेगा। निश्चय तो आत्मनिर्भरता है। तुम अपने भीतर इतने इकट्ठे हो गए हो, एकजुट हो गए हो; तुमने भीतर योग की एक ऐसी स्थिति पा ली है, ऐसी समाधि पा ली है, एक ऐसा समाधान मिल गया है कि अब कोई भी न बदल सकेगा।

विज्ञान निष्कर्ष तक पहुंचता है; धर्म निश्चय तक। विज्ञान संदेहों को हल करके निष्कर्ष लेता है। धर्म संदेह से मुक्त होकर निश्चय लेता है। विज्ञान में संदेह मौजूद ही रहता है, छिपा रहता है भीतर, पर्दे की आड़ में। धर्म में संदेह की मृत्यु हो जाती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, उस त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन। मैं कोई पंडित की तरह नहीं बोल रहा हूं, मैं कोई विचारक की तरह नहीं बोल रहा हूं, ये मेरे जीवन का निश्चय है, ऐसा मैंने जाना है।

एक अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में बोले तो वह निष्कर्ष से ज्यादा कभी नहीं हो सकता। क्योंकि अनुभव तो उसका कोई भी नहीं है। और एक आंख वाला आदमी प्रकाश के संबंध में बोले तो वह निश्चय है। अब सारी दुनिया भी उससे कहे कि तुम गलत हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जो अनुभव से जाना गया है, उसमें अंतर नहीं आता। अनुभव शाश्वत की उपलब्धि है। और हम उसी को सत्य कहते हैं जो शाश्वत है, सनातन है। इसलिए विज्ञान के पास ज्यादा से ज्यादा परिकल्पनाएं हैं, सत्य नहीं। सत्य तो केवल धर्म की अनुभूति है।

हे अर्जुन, मेरे निश्चय को सुन....!

अगला प्रश्न... गीता में उल्लेख आता है कि दिव्य दृष्टि पाकर अर्जुन घबरा गया। दिव्य दृष्टि घबराने वाली क्यों होती है? पूछते हैं मनोज कपूर, मुंबई से।

ओशो ने इस घटना की बड़ी सुंदर व्याख्या की कि अर्जुन क्यों घबरा गया। पहली बात... अर्जुन शिष्य नहीं था, साधक नहीं था। संयोग की बात रणभूमि के मैदान में वह विषादग्रस्त हो गया और कृष्ण उसे उपदेश देने लगे, वह सवाल पूछने लगा और कृष्ण उसे समझाने लगे। अचानक कृष्ण का विराट रूप देखकर वह घबरा गया। उसने तो कृष्ण को अपना सखा, अपने मित्र के रूप में जाना था, गुरु के रूप में नहीं। अगर गुरु समझता उनको तो क्या उनको सारथी बनाता? तुम जानते हो सारथी का काम क्या होता है? रथ हांकना, घोड़ों की सेवा करना, घोड़ों को नहलाना, घोड़ों की मालिश करना, रथ चलाना... ड्राइवर का काम ले रहा था अर्जुन, अपना मित्र समझकर, गुरु समझकर नहीं! गुरु को तो हम अपने से ऊपर विराजमान करते हैं... हृदय के सिंहासन पर।

कृष्ण चूंकि अचानक गुरु का काम करने लगे और अर्जुन के भीतर शिष्यत्व पैदा नहीं हुआ इसलिए वह घबरा गया। दिव्य दृष्टि घबराने वाली नहीं होती। हजारों-हजारों अन्य लोगों को दिव्य दृष्टि उपलब्ध हुई, वे तो नहीं घबराए। कारण, उनकी तैयारी चल रही थी। महाकाश्यप को जब बुद्ध ने ज्ञान दिया तो महाकाश्यप घबराया नहीं, जोर से हंसा। सारिपुत्र को जब ज्ञान मिला तो सारिपुत्र अद्‌भुत शांति से भर गया, उत्सव से भर गया। हजारों झेन फकीरों, सूफी फकीरों ने अपने गुरु से उस परम धन को पाया, दिव्य दृष्टि को पाया। घबराहट किसी को भी नहीं हुई। मीरा को जब रैदास से दिव्य दृष्टि मिली तो वह नाच उठी... पायो जी मैंने रामरतन धन पायो, वस्तु अमोलक दी मेरे सद्‌गुरु किरपा कर अपनायो।

अर्जुन के साथ यह एक विशिष्ट घटना घटी, उसका कारण समझो। अर्जुन जैसा महायोद्धा चिल्लाने लगा कि बंद करो, हे कृष्ण वापस ले लो अपना यह रूप, मैं सह नहीं पा रहा हूं, मुझे तो वापस वही सखा वाला रूप चाहिए। उस विराट को देखने की अर्जुन की तैयारी न थी। अचानक कोई बड़ा सुख भी मिल जाए तो वह भी प्राणघाती हो सकता है। कभी-कभी होता है न कि किसी की लॉटरी लग गई, एक करोड़ रुपए मिल गए और सुनकर उसका हार्टअटैक हो गया! अर्जुन के साथ भी कुछ ऐसा ही हो गया... तैयारी न थी इसलिए। इस बात को गौर से समझना। साधक के जीवन में ऐसा नहीं होता। अर्जुन बेचारा साधक नहीं है, उसे केवल दुर्घटनावश दिव्य दृष्टि उपलब्ध हुई और कृष्ण का विराट रूप उसे दिखाई दिया।

अगला प्रश्न... आवागमन से छुटकारे की सरलतम तरकीब बताने की कृपा करें? पूछा है जीवन प्रसाद सक्सेना ने, कानपुर से।

एक चुटकुला सुन लो पहले... केमेस्ट्री के शिक्षक ने विद्यार्थी से पूछा कि झब्ब का फुलफॉर्म क्या है? एक लड़के ने कहा कि सर, बिल्कुल जीभ पर रखा है बस बोल नहीं पा रहा हूं, याद नहीं आ रहा है। टीचर ने कहा कि थूक नालायक! तुरंत थूक! पोटैशियम सायनाइड है, जहर है! तो सरलतम उपाय तो पोटैशियम सायनाइड है। साधु-संन्यासी तो दूसरे तरह का उपाय कर रहे हैं, वे एक प्रकार का धीमा जहर दे रहे हैं। वह जो लाइफ निगेटिव ऐटीच्युड

है, संसार को छोड़कर भाग जाना, ये जीवन से परास्त लोग, हारे हुए लोग एक प्रकार की धीमी आत्महत्या में पड़ गए। कुछ साहसी लोग हैं जो कि तुरंत फांसी लगा लेते हैं और मर जाते हैं। जो लोग इतने हिम्मतवर नहीं हैं वे साधु–संन्यासी बन जाते हैं, घर–द्वार छोड़कर भाग जाते हैं। संसार के संघर्ष से घबरा जाते हैं। ऐसे लोग अपने आपको धार्मिक कहते हैं। मेरी दृष्टि में ये जरा भी धार्मिक नहीं हैं। सुनो यह गीत, किसी दुखियारे की प्रार्थना। अधिकांश लोगों की प्रार्थनाएं ऐसी ही होती हैं।

तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं, वापस बुला ले,
मैं सजदे में गिरा हूं मुझको ऐ मालिक उठा ले।
बहार आई थी, किस्मत ने मगर ये गुल खिलाया,
जलाया आशियां सय्याद ने, पर नोच डाले,
मुझको ऐ मालिक उठा ले।
तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं।
भंवर का सर न चकराए, न दिल लहरों का डूबे,
ले कश्ती आप कर दी मैंने, तूफां के हवाले,
मुझको ऐ मालिक उठा ले।
तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं।

नकारात्मक दृष्टि से भरे हुए लोग, जिनका दिल नहीं लगा, जिनके पास एक प्रसन्न और स्वस्थ चित्त नहीं है, रुग्ण चित्त के लोग हैं, ये अपने आपको धार्मिक समझते हैं। लेकिन याद रखना, जो आदमी कह रहा है मुझको ऐ मालिक उठा ले वह कहीं न कहीं मालिक से नाराज है। एक पुराना फिल्मी गीत मुझे याद आता है–

होगा अपमान रचयिता का, रचना को अगर ठुकराओगे,
संसार से भागे फिरते हो, भगवान को तुम क्या पाओगे।

ये आवागमन से छुटकारे की बातें मेरी दृष्टि में अधार्मिक बातें हैं। तुम सोच रहे होगे कि तुमने बड़ा आध्यात्मिक सवाल पूछा है। मेरी दृष्टि में जरा भी नहीं। तुम बहुत ही निगेटिव सोच के व्यक्ति हो, थोड़ा पॉजिटिव बनो। और अंततः तुम्हें निगेटिव और पॉजिटिव दोनों के पार जाना है, अतिक्रमण करना है। धन्यवाद। जय ओशो।

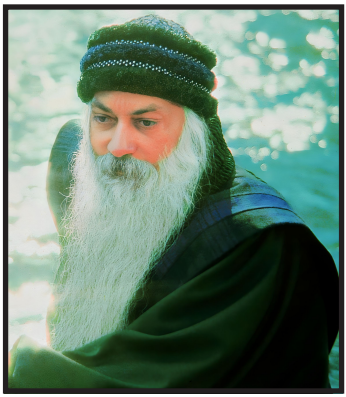

अध्याय–24

संदेह स्वाभाविक है

पहला प्रश्न पूछते हैं बसंतराम शर्मा, रजौरी, जम्मू और कश्मीर से। ओशो के एक प्रवचन में सुना है कि समाधि में समाधान होता है, प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते वरन् निश्प्रश्न दशा उपलब्ध होती है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मेरे मन में तो हर जवाब से नए सवाल पैदा हो जाते हैं। क्या ऐसी अवस्था वास्तव में संभव है? लीजिए, निश्प्रश्न दशा के बारे में ही प्रश्न उत्पन्न हो गया, आखिर मैं क्या करूं?

बसंतराम तुम पूछते हो कि क्या करूं? पूछो, और पूछो, फिर–फिर पूछो, जब तक यह प्रश्न पूछने की खुजली की बीमारी है खुजलाना ही पड़ेगा, और कोई उपाय नहीं। बिना खुजलाए चैन न मिलेगा लेकिन आशा रखो, प्रश्न पूछते–पूछते, संदेह करते–करते एक दिन श्रद्धा की अवस्था भी आएगी। लेकिन इस अग्नि से गुजरना ही होगा, इसका कोई शॉर्टकट संभव नहीं है। हमारा मन प्रश्न खड़े करता है, संदेह करता है, वह जीवन का रक्षक है। हर किसी बात पर अगर हम भरोसा कर लें तब तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। चारों तरफ धोखा देने वाले लोग हैं, झूठ बोलने वाले लोग हैं, बेईमानी, पाखंड सब तरफ व्याप्त है। अगर हमारा मन संदेह न करे तो पता नहीं हम किस कुएं में गिर जाएंगे। कोई न कोई हमें अपने जाल में फंसा लेगा। इसलिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है, प्रकृति ने हमें संदेह की क्षमता दी है। हर चीज के बारे में हमें संदेह उत्पन्न होता है, जब तक हम उससे संतुष्ट न हो जाएं तब तक हमारा मन आगे बढ़ने को तैयार नहीं

होता। इसे स्वीकारो, इसमें कुछ भी तो गलत नहीं है। देखते नहीं गीता में कृष्ण समझाते हैं और अर्जुन पूछता ही चला जाता है। हर जवाब में फिर दस नए सवाल खड़े हो जाते हैं, इसी प्रकार तो गीता के अट्ठारह अध्याय हुए। अगर अर्जुन पहली ही बार में समझ जाता तो एक ही अध्याय में बात खत्म हो जाती। एक अध्याय की भी जरूरत न पड़ती।

अष्टावक्र और जनक के बीच जैसा हुआ। अष्टावक्र ने कहा जनक, तू ब्रह्म है और जनक ने अपने पैर छू लिए और कहा अहो, मेरा मुझको नमस्कार। मैं ब्रह्म हूं, अद्भुत! ज्ञान घटित हो गया क्षण भर में। जनक परिपक्व हो गए थे, पहले से पुराने साधक थे। बस ऐसा ही समझो कि नींद टूटने को ही थी और अष्टावक्र ने कहा जागो और जनक उठकर बैठ गए और कहा कि अरे, जागरण हो गया, सुबह हो गई। अर्जुन गहरी नींद में है, सवाल पर सवाल किए जाता है, यह भी बिल्कुल स्वाभाविक है। अभी उसकी नींद पूरी नहीं हुई, बीच में नींद टूटनी भी नहीं चाहिए। और जब तक तुम्हारा समाधान न हो, जब तक तुम्हारी समस्या हल न हो तब तक पूछते जाना, पूछते जाना। तुम कह रहे हो मैंने इलाज कराया और बीमारी ठीक नहीं हुई इसका मतलब अभी और इलाज की जरूरत है। हो सकता है पैथी बदलनी पड़े, हो सकता है डॉक्टर बदलना पड़े। लेकिन जब तक बीमारी ठीक से नष्ट न हो जाए तब तक तुम्हें उपाय करते ही जाना चाहिए। यही उचित है। गीतादर्शन प्रवचनमाला में कृष्ण अर्जुन संवाद पर बोलते हुए ओशो कहते हैं–

'जब तुम पाओ कि तुम्हारे भीतर कोई प्रश्न आ रहा है और सुलझाव नहीं आता तो समझ लेना कि वह उत्तर उत्तर ही नहीं है, अभी खोज जारी रखनी है। अभी प्रश्न को सम्हालो, अभी उत्तर की फिक्र मत करो। अभी और पूछना है, अभी और जानना है, अभी और सर रगड़ना है। तुमने जल्दी उत्तर मान लिया, प्रश्न मरा नहीं है और उत्तर मान लिया तो प्रश्न तो बार–बार सिर उठाएगा। और तुम्हारा उत्तर नपुंसक है, तुम्हारा प्रश्न ही बलवान है और तुम्हारा उत्तर कमजोर है इसलिए तो सुलझाव नहीं आता। तो और पूछना पड़ेगा, अभी और खोजना पड़ेगा। इतनी जल्दी न करो, कोई जल्दी नहीं है, अनंतकाल से, धीरज से चलो, ऐसा न हो कि उठाया गया कदम फिर–फिर उठाना पड़े, ऐसा न हो कि फिर–फिर पीछे लौटना पड़े, कुछ अधूरा मत छोड़ जाओ।

जो प्रश्न तुम्हारे भीतर है जब तक हल ही न हो जाए तब तक जल्दी मत समझ लेना कि हल हो गया, मन चाहता भी है कि जल्दी हल हो जाए। क्योंकि मन की एक दूसरी बीमारी है, जल्दी, अधैर्य। भोजन पका ही नहीं, तुम कच्चा ही उतार लेते हो चूल्हे से। फिर पेट में दर्द होता है। भोजन को पकने दो, इतनी जल्दी मत करो। जल्दी की कि कुछ भी न होगा, जितनी जल्दी करोगे उतनी ही देर हो जाएगी। धीरज से चलो। तुम जहां हो वहीं सब मिल जाने वाला है, कोई यात्रा नहीं है। तुम जहां हो वहीं सब छिपा है, खजाना तुम्हारे पास है चाबी केवल खो गई है लेकिन खजाना नहीं खो गया है। इतना घबराओ मत और जल्दी मत करो। एक–एक प्रश्न को सुलझाओ और प्रेम से सुलझाओ क्योंकि हर प्रश्न को सुलझाने में तुम भी सुलझोगे। अगर प्रश्न को तुमने ऐसे ही टाल दिया, अपने को ऊपर–ऊपर समझा–बुझा लिया, सांत्वना दे ली, संतोष तो नहीं हुआ, सांत्वना दे ली तो प्रश्न फिर से उठ आएगा। तुम ज्यादा देर उससे बचे न रह सकोगे। फिर तुम उत्तर दिए चले जाओगे, उत्तर उधार है। तुमने मुझसे तो ले लिया लेकिन

तुम्हारे भीतर घटा नहीं। मैं जो उत्तर दे रहा हूं उन्हें बीज की तरह लो। अगर तुमने मेरे उत्तर को वैसा ही स्वीकार कर लिया जैसा मैंने दिया है तो तुम जरूर पाओगे अड़चन आएगी। क्योंकि मेरा उत्तर मेरा उत्तर है, वह तुम्हारा कैसे हो सकता है? मेरे उत्तर को तुम बीज की तरह लो, वृक्ष तो तुम्हारे भीतर ही पैदा होगा। मेरी तरफ से इंगित ले लो। फिर अपने उत्तर को आने दो, धीरज से। एक दिन तुम पाओगे कि जैसे तुम्हारे भीतर प्रश्न उठा था वैसे ही तुम्हारा अपना उत्तर भी आ गया। तुम्हारा प्रश्न है तो तुम्हारा ही उत्तर हल करेगा। मेरे उत्तर से तुम्हारे उत्तर को पास आने में सुविधा हो सकती है लेकिन मेरे उत्तर को तुम अपना उत्तर मत बना लेना, अन्यथा तुम उधारी में पड़ जाओगे। और धर्म नगद सत्य है, वह उधार नहीं है।'

बसंतराम स्थिति ऐसी है कि कोई पूछता है पानी के संबंध में, प्यास के संबंध में और मैं उससे कहता हूं कि ऐसा करो कि बाईं सड़क पर जाना आधा किलोमीटर, वहां नदी है वहां से पानी पी लेना। कहता है कि आपकी बात तो बड़ी अच्छी लगी, आपका सिद्धांत तो बड़ा अच्छा है लेकिन मेरी प्यास अभी बुझी नहीं। वह गया कहीं नहीं, यहीं बैठा है बकवास करते हुए। मैं उससे कहता हूं कि अच्छा कोई बात नहीं। छोटा सा एक कुआं खोदो, दस–बीस फुट नीचे एक जलस्रोत मिलेगा वहां से पानी निकालकर पी लेना। वह कहता है कि बात तो आपकी ठीक लगती है, तर्कसंगत है, शास्त्रों में भी लिखा है कि कुओं में पानी होता है लेकिन मेरा गला तो सूखा का सूखा है, आपकी बात सुनकर अभी मेरी प्यास बुझी नहीं। मैं कह भी नहीं रहा हूं कि मेरी बात सुनकर आपकी प्यास बुझेगी। तुम्हें या तो कुआं खोदना होगा या तो नदी तक जाना होगा, कहीं न कहीं जलस्रोत की तलाश करनी होगी। बातचीत सुनकर अगर तुम तृप्त हो जाओ इसका मतलब तुम्हें प्यास ही नहीं थी। कई बार दार्शनिक प्रवृत्ति के शास्त्रज्ञानी लोग आ जाते हैं। कहते हैं बस, आपकी बात सुनकर मजा आ गया! मैं अपना सिर ठोक लेता हूं। बात सुनकर मजा आ गया, इसका मतलब तुम्हें प्यास ही नहीं थी, प्यास तो अनुभव से बुझेगी। जब पानी तुम्हारे गले के नीचे उतरेगा तब प्राण तृप्त होंगे, उसके पहले संतुष्ट होना भी नहीं।

अगला प्रश्न श्रीमती सुमन लूथरा पूछती हैं, गुड़गांव से। पीढ़ी अंतराल कैसे दूर होगा। मेरा बेटा मेरी बात मानने को जरा भी राजी नहीं होता, मैं क्या करूं?

यह बात महत्वपूर्ण है, एक व्यक्ति का सवाल नहीं, सारे युग का सवाल है। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच में एक बड़ा गैप खड़ा हो रहा है और यह गैप प्रतिदिन बढ़ता जाएगा। पुराने जमाने में यह गैप नहीं था, उसके कारण थे। उस समय शिक्षा प्रणाली नहीं थी। आज शिक्षा प्रणाली आ गई है। आज एक बूढ़े डॉक्टर का जवान बेटा जब मेडिकल कॉलेज से डॉक्टर बनकर लौटता है तो वह अपने बाप से बहुत ज्यादा जानता है। उसकी नजरों में बाप आउट ऑफ डेट हो चुका है, वह बीस–पच्चीस साल पुराना इलाज कर रहा है, बाप वह दवाइयां लिख रहा है जो प्रचलन के बाहर हो गई हैं। वह उस विधि से ऑपरेशन कर रहा है जो उसने सीखी थी पच्चीस साल पहले। वह कब की आउट ऑफ डेट हो चुकी है। उसका बेटा जो अभी–अभी डॉक्टरी सीखकर आया है, इसको लेटेस्ट नॉलेज है। अब यह बेटा बाप का सम्मान नहीं कर पाएगा।

पुराने जमाने में एक बढ़ई का बेटा हमेशा अपने बाप का सम्मान करता था क्योंकि उसका पिता ही उसका शिक्षक था। छोटी उम्र से उसने अपने पिता के साथ काम करना शुरू कर दिया, पिता उससे बीस साल बड़ा है और वह हमेशा बीस साल बड़ा रहेगा, बीस साल ज्यादा अनुभवी रहेगा। यह बेटा अपने पिता से ज्यादा अच्छा कारपेंटर नहीं बन पाएगा, कभी भी! इसके मन में पिता के प्रति सदा सम्मान रहेगा। जो बेटी अपनी मां से खाना पकाना सीखेगी, बहू अपनी सास से गृह–व्यवस्था चलाना सीखेगी, निश्चित रूप से वह अपनी मां और सास से ज्यादा अनुभवी कभी नहीं बन पाएगी। इनके मन में अपने बुजुर्गों के प्रति सम्मान रहेगा

पुराने जमाने की बात अलग थी। जब से शिक्षा प्रणाली आई तब से स्थिति पूरी पलट गई है। इस नई परिस्थिति में हमें रीऐडजस्ट करना होगा, अपने आपको समायोजित करना होगा। अब अगर सास सोचती है कि उसकी बहू उसका सम्मान करे तो यह बड़ा मुश्किल मामला है। बहू होम साइंस में एम.एस.सी. करके आई है, उसे इंटरकॉन्टीनेंटल खाना पकाना आता है और यह सास गांव की गंवार पुराने ढंग का खाना बना रही है। वह बहू आकर कहेगी कि तुम बिल्कुल अनहाइजिनिक तरीके से खाना बना रही हो, तुम्हें साफ–सफाई का पता नहीं, इसमें बैक्टीरिया हो जाएंगे। अब उस बेचारी सास ने तो बैक्टीरिया का नाम ही नहीं सुना था। वह कहेगी कि हम पचास–साठ साल से ऐसे ही खाना बना रहे थे और सब ठीक–ठाक चल रहा था और अब तुम आकर बीच में टांग अड़ा रही हो कि ये विधि गलत है। अब ये बहू सास से कुछ सीख तो सकती नहीं क्योंकि ये तो पहले से ही ज्यादा सीखकर आई है। चूंकि ये सास से ज्यादा जानती है इसलिए इसके मन में सास के प्रति ज्यादा सम्मान नहीं रह सकता। अगर आज पुरानी पीढ़ी को नई पीढ़ी से सम्मान हासिल करना है तो कुछ नई गुणवत्ताएं पैदा करनी होंगी। पुराने जमाने में उम्र की वजह से सम्मान नहीं था, ज्ञान की वजह से सम्मान था। माता–पिता, वृद्धजन युवकों से ज्यादा ज्ञानी थे और हमेशा ज्यादा ज्ञानी ही रहते थे। इसलिए उनका सम्मान था, उम्र का सम्मान नहीं था। हम भूल में हैं, हम सोचते हैं कि पहले बुजुर्गों की इज्जत होती थी और अब नहीं होती, ऐसी बात नहीं है।

पहले भी बुजुर्गों की इज्जत नहीं थी, उनके ज्ञान की, उनके अनुभव की इज्जत थी। अब आज वह स्थिति तो नहीं हो सकती। या तो तुम्हें हमेशा अपटूडेट होना होगा, हमेशा नया सीखने को तत्पर होना होगा, वरना तुम्हारे बेटे आएंगे और पूछेंगे कि पापा कंप्यूटर चलाना आता है? तुम कहोगे नहीं। अब उनकी नजरों में तुम अनपढ़ गांव के गंवार जैसे लगोगे। यह बेटा अब बाप की इज्जत नहीं कर पाएगा। अगर बाप चाहता है कि उसकी इज्जत हो तो उसे नई गुणवत्ताएं पैदा करनी होंगी। ज्ञान के बारे में तो आगे नहीं बढ़ा जा सकता, एक सीमा है उसकी, सीखने की एक उम्र होती है, उसके बाद सीखना बहुत मुश्किल है। लेकन दूसरी चीजें हो सकती हैं। तुम्हारा हृदय ज्यादा प्रेमपूर्ण हो, तुम ज्यादा करुणावान बनो, तुम्हारे भीतर भाईचारे की भावना हो, तुम एक ज्यादा अच्छे मनुष्य साबित होओ तब हो सकता है कि तुम्हारा बेटा, कि तुम्हारी बहू, तुम्हारी बेटी तुम्हारा सम्मान कर पाएंगे। ज्ञान की वजह से अब सम्मान नहीं मिलेगा। पीढ़ी–अंतराल और भी तीव्र गति से बढ़ता चला जाएगा। नई पीढ़ी से निवेदन करने की भाषा सीखो। संवाद की नई

कला विकसित करनी होगी, पुराने ढंग की आज्ञाएं नहीं चलेंगी कि दशरथ ने राम से कह दिया कि चले जाओ चौदह वर्ष के लिए वनवास, तो रामचन्द्र जी पैर छूकर चले गए। अब तुम अपने बेटे से अगर ऐसा कहोगे तो बेटा पच्चीस सवाल पूछेगा कि क्यों चले जाएं, आपका दिमाग खराब हो गया है, बुढ़ापे में सठिया गए हैं, आप खुद ही क्यों नहीं चले जाते, वानप्रस्थ होने की उम्र तो आपकी है। अब कोई तुम्हारी आज्ञा नहीं मानने वाला, अब वे दिन गए। अब अगर तुम्हें कोई बात कहनी है तो तर्कयुक्त ढंग से कहनी होगी, वैज्ञानिक ढंग से समझानी होगी, उसे सिद्ध करना होगा कि जो तुम कह रहे हो वह सही है। अगर वह समझदारी की बात होगी तो कोई सुनेगा, वरना कोई नहीं सुनेगा। बच्चों के अपने तर्क होंगे।

आज सुबह मैं एक चुटकुला सुना रहा था, एक लड़के ने अपने कमरे में से आवाज लगाई क्योंकि उसके पिताजी दूसरे कमरे थे। उसने कहा कि डैडी कृपया मुझे एक गिलास पानी दीजिए। बाप को गुस्सा आया और उसने कहा कि साहबजादे, आप खुद उठकर पानी पीजिए। लड़के ने कहा नहीं पापा प्लीज, एक गिलास पानी दे दीजिए न। बाप ने कहा कि अगर दुबारा पानी मांगा न तो आकर एक थप्पड़ दूंगा। बेटे ने कहा पापा, जब आप थप्पड़ मारने आएं न तो उस समय एक गिलास पानी लेते आइएगा।

भाषा बदल गई है, जमाना बदल गया है, सारी परिस्थिति भी बदल गई है। अब पुराने ढंग का मान–सम्मान नहीं मिल सकता, अब तुम्हें भी बदलना होगा।

अगला प्रश्न पूछा है दिल्ली से स्वामी धर्म प्रेमानंद ने। मैं ओशो का अमृत संदेश घर–घर पहुंचाना चाहता हूं किन्तु लोग मेरी बात सुनते ही नहीं इसलिए मैं चुप रह जाता हूं?

अभी मैं पीढ़ी अंतराल की बात कर रहा था न, ऐसे ही एक युग अंतराल भी है। एक ही सदी में कई–कई सदियों के लोग रह रहे हैं। तुम ऐसा नहीं समझना कि अभी सभी इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। कोई पंद्रहवीं सदी का दिमाग रखे हुए है, कोई पाषाण युग का आदमी है, कोई बाइसवीं सदी में छलांग लगा गया है। धर्म प्रेमानंद, ऐसा न समझो कि लोग तुम्हारी बात सुनेंगे। क्योंकि सब लोग एक ही युग के हैं नहीं, बड़ा युग अंतराल है। कोई बैलगाड़ी के जमाने में जी रहा है, कोई कह रहा है रामराज्य वापस लाना है, वह पांच हजार वर्ष पुराने जमाने में जी रहा है। मन में वही आदर्श हैं आज तक। हम सब कंटेम्परी, समसामयिक नहीं हैं। लेकिन कुछ लोग तुम्हारी बात सुनेंगे। चुप मत रह जाओ, अपनी बात कहो। प्रेमपूर्वक निवेदन करना, आग्रह मत करना। महात्मा गांधी ने जो शब्द दिया है सत्याग्रह वह बिल्कुल उचित नहीं है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता, सत्य स्वयंसिद्ध होता है। तुम तो कहे जाओ, अगर बात कहने योग्य लग रही है तो। एक गीत तुम्हारे लिए–

परख के देख–भाल के फरेबे–जीस्त खाए जा
समझ के जानबूझ के जहां से जी लगाए जा।
नहीं बना कोई कभी किसी का इस जहान में
ये जानते हुए भी सबको अपना तू बनाए जा।

बुझे–बुझे हैं दिल यहां, दिमाग हैं धुआं–धुआं
तू इन स्याहियों में दीप प्रेम के जलाए जा।
इक और जाम की तलब लगी हरेक शख्स को
जो तश्नगी को दे मिटा वो जाम तू पिलाए जा।
न सोच ये कि तेरी बात समझ भी पाएगा कोई
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा।

हंगामा मचाते जाना, शोरगुल मचाते जाना, घर–घर खबर पहुंचा देना। जीसस ने कहा अपने शिष्यों से कि मकान की मुंडेरों पर खड़े होकर चिल्लाना, मेरा संदेश पहुंचाना, सौ आदमियों से कहोगे तो दो–चार जरूर सुनेंगे।

ये न सोच कि तेरी बात समझ भी पाएगा कोई,
है बात काम की अगर तू गलगला मचाए जा,
यही सदा उठेगी नारा बन के कायनात में
कोई सुने न सुने सदा–ए–हक लगाए जा।

एक दिन सारे अस्तित्व से यह आवाज उठेगी, तू तो सत्य का संदेश पहुंचाए जा, कोई न कोई जरूर सुनेगा। बहुत लोग प्यासे हैं, इंतजार में हैं।

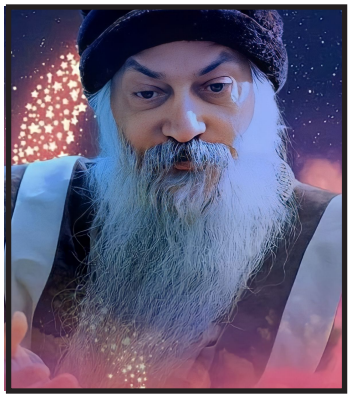

अध्याय–25

स्वर्ग–नर्क यहीं हैं!

आज का पहला प्रश्न पूछा है बुटवल नेपाल से पूर्णानंद जी ने। क्या आप स्वर्ग–नर्क में भरोसा करते हैं? मुझे तो यह पृथ्वी ही नर्क प्रतीत होती है। मेरे परिवार वाले और रिश्तेदार शैतान के एजेंट लगते हैं। मैं किन कर्मबंधों की सजा भुगत रहा हूं, पता नहीं! आपका क्या कहना है?

गजब का तुम्हारा नाम है पूर्णानंद और हो पूर्ण दुखी, एकदम से निरानंद! पृथ्वी न तो स्वर्ग है और न ही नर्क है और न ही तुम किन्हीं कर्मबंधों का फल भुगत रहे हो। ये तुम्हारे गलत दृष्टिकोण का परिणाम है। अगर तुम बैरभाव से, शत्रुभाव से लोगों की तरफ देखोगे, अस्तित्व के प्रति दुश्मनी का भाव रखोगे तो सब नर्क हो जाएगा। काश तुम मैत्रीभाव में, प्रेमभाव में, सद्भाव में जीना शुरू करो, मंगलभाव में जीना शुरू करो तो यही पृथ्वी स्वर्ग हो जाएगी। स्मरण रहे, स्वर्ग और नर्क कोई भौगोलिक परिस्थितियां नहीं हैं और न मृत्यु के पश्चात् तुम स्वर्ग या नर्क जाते हो। मृत्यु के पहले ही तुम यहीं स्वर्ग या नर्क में जीते हो। ये भौगोलिक परिस्थितियां नहीं, हमारी मनःस्थितियां हैं। मित्रता में जीने वाला व्यक्ति, सद्भावना से भरा व्यक्ति स्वर्ग में जीता है, दुर्भावना से भरा हुआ व्यक्ति नर्क में जीता है। 'एस धम्मो सनंतनों' नामक प्रवचनमाला में भगवान बुद्ध की वाणी धम्मपद पर प्रवचन देते हुए ओशो कहते हैं–

वैर नर्क है। कहीं और कोई नर्क नहीं; शत्रुता में जीना नर्क है। तुम जितनी शत्रुता

अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना तुम्हारा नर्क बड़ा हो जाता है। तुम जितनी मित्रता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना स्वर्ग खड़ा हो जाता है। स्वर्ग मित्रों के बीच जीने का नाम है। नर्क शत्रुओं के बीच जीने का नाम है। और सब तुम पर निर्भर है। नर्क कोई भौगोलिक स्थान नहीं है, और न स्वर्ग कोई भौगोलिक स्थान है। नक्शों में मत पड़ना। मनोदशाएं हैं। स्टेट्स ऑफ माइंड।

जब तुम सारे जगत को मित्र की तरह देखते हो... ऐसा नहीं कि सारा जगत मित्र हो जाएगा, इस भूल में मत पड़ना... लेकिन तुम जब सारे जगत को मित्र की भांति देखते हो, तुम्हारे लिए जगत मित्र हो गया, तुम्हारे शत्रु समाप्त हो गए। और अगर कोई तुम्हारी शत्रुता करेगा, तो वह शत्रुता उसके मन में होगी, वह उसकी पीड़ा पाएगा। लेकिन तुम्हें कोई पीड़ा नहीं दे सकता।

'इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता। अवैर से ही वैर शांत होता है। यही सनातन धर्म है, यही नियम है।'

नहि वेरेन वेरामि सम्मन्तीध कुदाचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो।।

यही सनातन धर्म है। शत्रुता से शत्रुता समाप्त नहीं होती। क्रोध से क्रोध समाप्त नहीं होता। वैर से वैर नहीं मिटता। और जितना वैर बढ़ता जाता है, उतना तुम अपने चारों तरफ अपने हाथों नर्क निर्मित करते चले जाते हो। यह जगत तुम्हारी कृति है। तुम चारों तरफ अपना परिवेश बनाते हो। यह बात तुम्हें दिखायी पड़ जाए, यह इशारा तुम्हें समझ आ जाए, तो तुम्हें फिर कोई दुख नहीं दे सकता। तुम्हारा स्वभाव तब सुख हो जाएगा।

फैलाओ मैत्री।

महावीर ने कहा– मित्ति मे सव्व भूए सू, वैरं मज्झ न केवई। मेरी मित्रता सबसे है, सारे विश्व से है। सब भूतों से –सव्व भूए सू। और वैर मेरा किसी से भी नहीं।

महावीर के कानों में भी खीलें ठोंकने वाले मिल गए, पत्थर मारने वाले मिल गए। महावीर को गांव–गांव से खदेड़कर बाहर निकालने वाले मिल गए। लेकिन महावीर यही कहते रहे, वैरं मज्झ न केवई –मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं। उनकी होगी, उनका हिसाब वे जानें।

छोटा सा प्रयोग करो। कभी पंद्रह मिनट के लिए आंख बंद करके चुपचाप शांत होकर अपने कमरे में बैठ जाओ। धीमी गहरी श्वास लो आनंदपूर्वक। दो–तीन सेकेण्ड सीने में श्वास को रुकने दो और भाव करो कि तुम्हारे हृदय से प्रेम की तरंगें फैलकर सारे अस्तित्व की ओर प्रवाहित हो रही हैं, मैत्रीभाव को सारे अस्तित्व पर आरोपित करो। आरंभ में तो यह कल्पना ही होगी। लेकिन जल्द ही तुम पाओगे कि कल्पना वास्तविकता बनने लगी। तुम्हारी यह धारणा चमत्कार बन जाएगी। किसी वृक्ष की तरफ देखो, ऐसे देखो जैसे किसी प्रिय मित्र की तरफ देख रहे हो। पुराने जमाने में लोग उगते हुए सूरज को नमस्कार किया करते थे, गंगा नदी को मां कह के पुकारते थे, सब तरफ प्रेम का संबंध बनाते थे, पीपल को देवता कहते थे और प्रणाम की मुद्रा में झुक जाते थे। सारी प्रकृति की तरफ प्रेम की तरंगों को प्रवाहित करो।

करीब पंद्रह मिनट के प्रयोग के बाद तुम पाओगे कि एक महीना बीतते–बीतते तुम एक दूसरे ही व्यक्ति हो गए और जो तुम्हें शैतान के एजेंट नजर आ रहे थे वे सब भगवान के दूत नजर आने लगेंगे, तुम्हारा घर ही स्वर्ग बन जाएगा।

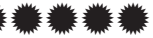

विगत दस–बारह साल से आप ओशो की जीवन–दृष्टि समझाने के कार्य में संलग्न हैं, यह काम कब खत्म होगा? पूछते हैं हांसी हरियाणा से पी.के.दहिया जी।

तुम इसे काम न कहो, कार्य मत कहो। यह कोई ड्यूटी या कर्तव्य नहीं है। अपने गुरु की देशना को लोगों तक पहुंचाना है। यह तो मौज है, मस्ती है, आनंद है। कौन चाहता है कि यह कार्य खत्म हो! कभी खत्म न हो, मैं खत्म हो जाऊंगा लेकिन ये काम खत्म नहीं होगा। काम ही ऐसा है जैसे सागर; और हम जो कर पाते हैं वह चम्मच जैसा है, नाकुछ के बराबर। मैं क्या, अगर सारे शिष्य भी अपना सारा जीवन न्योछावर कर दें तब भी यह काम पूरा न होगा। एक कहावत तुमने सुनी होगी, 'हरि अनंत, हरि कथा अनंता'। अंतहीन कहानी है यह। सारी मनुष्य जाति धीरे–धीरे विकसित, और विकसित होती चली जा रही है। इसका कहीं कोई अंत नहीं है। जीवंतता का यही प्रमाण है कि कोई चीज कहीं समाप्त नहीं होती। केवल मुर्दा वस्तुएं खत्म होती हैं, जीवन में कभी भी कुछ खत्म नहीं होता। और विशेषकर धर्म और अध्यात्म की बात। आने वाली हर पीढ़ी पिछली पीढ़ी से ज्यादा विकसित हो, और फूल खिलें समाधि के, और ध्यान की सुवास उड़े, और प्रेमपूर्ण दुनिया बने, और बेहतर स्वर्ग बन जाए, यह अनंत कहानी है। और इसलिए यह कार्य कभी भी खत्म नहीं होगा, अच्छा है तुम उसे कार्य न कहो, इसको मौज–मस्ती, आनंद और उत्सव कहो। किसी शायर ने कहा है–

मेरी आंखों ने जो देखा है दिखलाया नहीं जाता,
मेरे दिल ने जो समझा है समझाया नहीं जाता,
मेरे सीने के भीतर गूंजता है राग अनहद का,
मगर कुछ बात है ऐसी कि वह गाया नहीं जाता।

मैं कितना ही गाऊं वह गीत कंठ से निकलता ही नहीं, बात अधूरी रह जाती है। फिर–फिर प्रयास करता हूं, भलीभांति जानता हूं कि वह गीत कभी पूरा न होगा, मगर कुछ बात है ऐसी कि वह गाया नहीं जाता।

मेरी आंखों में उसका जलवा दिल में तस्वीर भी उसकी,
मुश्किल तो है कि फिर भी बतलाया नहीं जाता,
उसी के दम से हुई कायम शबाबो–शेर की दुनिया,
शबाबो–शेर में लेकिन उसे पाया नहीं जाता।

ये सारे काव्य, ये सारे शबाबो शेर, ये गीतों का सारा सौंदर्य उसी परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। लेकिन किसी भी गीत में वह परमात्मा बनता नहीं, शब्दों के संगम में वह अनहद का गीत समाता नहीं। इसलिए मैं कितना ही कहूं वह बात कभी पूरी न होगी। लेकिन मौज है, मस्ती है, चाहता कौन है कि वह पूरी हो, चलती रहे, चलती रहे। इस जन्म में क्यों, अगले जन्मों में भी चलती रहे।

✹✹✹✹✹

फतेहाबाद हरियाणा से कंवरभान जी पूछते हैं कि क्या मंदिर में मूर्तिपूजा करके ओंकार रूपी ब्रह्म को नहीं जाना जा सकता?

अवश्य जाना जा सकता है। ओशो की एक अद्‌भुत किताब है 'गहरे पानी पैठ'। उसमें मंदिर के रहस्य को समझाते हुए वे कहते हैं कि मंदिर में जो गुंबद बनाई गई है वह इसलिए कि उसके नीचे बैठकर साधक ओंकार की साधना कर सके। मंदिर के द्वार पर जो घंटा लटकाया है वह इस बात का प्रतीक है कि ध्वनि ही परमात्मा में प्रवेश का मार्ग है। साधक बैठा है गुंबद के नीचे उस वर्तुलाकार इमारत में आवाज गूंजती है, बाहर नहीं जाती। मंदिर में आने वाले यात्री बार-बार घंटा बजाते हैं, घंटे की आवाज धीरे-धीरे कम होती जाती है, धीरे-धीरे गूंज समाप्त होती जाती है और साधक बैठा-बैठा सुनता रहता है, सुनता रहता है। एक क्षण ऐसा आता है जब गूंज समाप्त हो जाती है और भीतर अनहद का स्वर सुनाई पड़ने लगता है, तब असली मंदिर में प्रवेश हो जाता है। मूर्तिपूजा करके भी अमूर्त की ओर जाया जा सकता है। 'गहरे पानी पैठ' पुस्तक में ओशो समझाते हैं कि कैसे मूर्त से अमूर्त की ओर चलो। समझदार व्यक्ति कहीं से भी शुरू करके अपनी मंजिल पर पहुंच जाता है। सारे रास्ते प्रभु के मंदिर तक जाते हैं। तो मूर्तिपूजा में तो कोई अटक भी सकता है, कोई मंदिरों में भटक भी सकता है और पहुंचने वाले वहां से भी पहुंच गए हैं। समझदार आदमी को सब तरफ से रास्ता मिल जाता है। ध्वनि के रहस्य में डूबना सीखो। जहां ध्वनि समाप्त होती है, उस मौन में परमात्मा का अवतरण होता है, उस शून्य में परमात्मा अवतरित होता है।

कल मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था। सेठ चंदूलाल के दोनों बेटे अपना परीक्षाफल लेकर लौटे। छोटे बेटे से चंदूलाल ने पूछा कि कितने नंबर मिले? उसने कहा कि पिताजी, गणित में बड़े भाई से सिर्फ चार नंबर कम मिले हैं बस। पिताजी बहुत प्रसन्न हुए। उसने बड़े बेटे से पूछा कि तुमको गणित में कितने नंबर मिले? बड़े बेटे ने कहा कि मुझे कुल चार नंबर मिले हैं। छोटे को मिला था शून्य! चंदूलाल को गुस्सा आया तो उसने शिक्षक को फोन किया और पूछा कि आपने मेरे बेटे को शून्य नंबर क्यों दिया? शिक्षक ने कहा कि क्या बताएं सेठ जी, मुझे इससे और कम नंबरों का पता ही नहीं है। काश, हम शून्य हो जाएं, शिथिल हो जाएं, शांत हो जाएं, भीतर हमारा अहंकार मिट जाए, विचारों का जाल खो जाए, भावनाओं का ऊहापोह खत्म हो जाए। ऐसा मंदिर के घंटे की आवाज सुनते-सुनते हो सकता है... शून्य में प्रवेश और इसी शून्य में फिर पूर्ण का अवतरण होता है। इसे प्रयोग करना, यह कोई सिद्धांत नहीं है। मैं जो कुछ भी यहां कह रहा हूं, ओशो ने जो कुछ भी समझाया है वह सब प्रायोगिक है।

✹✹✹✹✹

भोपाल, मध्यप्रदेश से मां अमृता पूछती हैं कि सुरति समाधि के पश्चात् ध्यान में शिवलिंग जैसी अंडाकार आकृति में ऊर्जा की अनुभूति होती है एवं भारहीनता का मजा आता है जैसे बचपन में झूले के नीचे उतरने पर रोमांच होता था। प्रभु यह क्या हो रहा है?

बिल्कुल ठीक हो रहा है अमृता। तुम भीतर के उस अमृत तत्व को जानने लगी। वह

निराकार ऊर्जा, वह वर्तुलाकार, अण्डाकार शक्ति का पुंज, वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है।

तुम देह नहीं, तुम मन भी नहीं, तुम हृदय के भाव भी नहीं, तुम वह शक्ति हो। हमारे ऋषियों ने उसी को आदिशक्ति कह के पुकारा है। और विशेषकर सुरति समाधि के पश्चात् इस निराकार स्वरूप में गूंजते ओंकार का ज्ञान बहुत आसान हो जाता है। कुछ संतों ने एक नया शब्द गढ़ा निरंकार, उसका तात्पर्य है निराकार में गूंजता ओंकार। वह जो ऊर्जा है उसका शेप ही ऐसा है, उसकी कोई आकृति नहीं है, फिर भी हम उसे वर्तुलाकार या अण्डाकार कह सकते हैं। वास्तव में सारा जगत वर्तुलाकार या अण्डाकार ही है। ये जो शिवलिंग बनाया गया है, ये ध्यान की गहराइयों को जिन्होंने अनुभव किया है जगत की ऊर्जा को उन्होंने बनाया है। यह सारा विश्व या तो कह लो निराकार है या कह लो अण्डाकार है, वर्तुलाकार है। बिल्कुल ठीक हो रहा है।

मैं अभी जो गीत कह रहा था कि मेरे सीने के भीतर गूंजता है राग अनहद का, मगर कुछ बात है ऐसी कि वह गाया नहीं जाता। ठीक वही तुम्हारे भीतर हो रहा है। अब इसमें और–और गहरे डूबो। और–और शून्य होते जाओ, होते जाओ। तुम्हारे भीतर और–और परमात्मा अवतरित होता जाएगा। और याद रखना, यह अंतहीन शृंखला है। ऐसा दिन कभी नहीं आ सकेगा कि हम कहें कि हमने सबकुछ जान लिया। इसलिए संतों ने एक उपमा दी है सहस्रदल कमल की, आजकल सहस्र का अर्थ हो गया 'हजार' लेकिन पुरानी संस्कृत भाषा में सहस्र का अर्थ होता था 'अनंत', अंतहीन जो फूल खिलता ही चला जाता है, खिलता ही चला जाता है। पंखुड़ियों पर पंखुड़ियां निकलती जाती हैं। हां, एक दिन इतनी मस्ती छा जाती है, ऐसा आनंद भर जाता है कि वह ओवरफ्लो होने लगता है और दूसरों तक पहुंचने लगता है। जैसे कोई फूल खिलता है तो उसकी सुवास उड़ती है, एक दिन तुमसे भी मैं यही उम्मीद करता हूं कि ऐसी ही सुवास उड़ेगी और बहुत लोगों के नासापुटों तक पहुंचेगी।

तुम्हें जो रोमांच हो रहा है वैसा रोमांच तुम्हारे आसपास के बहुत सारे लोगों को भी हो सकेगा। तुम्हारे द्वारा भी ओशो का संदेश फैलेगा। मैं चाहता हूं ओशो का हर संन्यासी, ओशो का हर शिष्य, ओशो की हर शिष्या अंततः सद्गुरु बने। सद्गुरु बने बगैर जानने की बात पूरी नहीं हुई। जो तुम्हें मिला है उसे बांटना, उसे फैलाना। बहुत लोग प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं। बांटो, फैलाओ, आनंद में डूबो और उसकी सुवास को उड़ने दो।

अध्याय–26

सामूहिक साधना

पहला प्रश्न पूछा है छपरा बिहार से राम तिलेश्वर जी ने। जंगल की गुफाओं में अथवा पर्वतों के एकांत में समाधि मिल सकती हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। यहां ओशोधारा समाधि साधना शिविर में सामूहिक रूप से अंतर्यात्रा की बात कुछ विचित्र सी लगती है।

ठीक सवाल पूछा है तुमने। बात कुछ विचित्र सी है। ओशो के महान योगदानों में से एक योगदान यह भी है, सामूहिक साधना। ओशो के पहले तक साधना हमेशा एकांत में हुआ करती थी। एकांत का उपयोग हो सकता है, आरंभिक रूप में वह सहयोगी हो सकता है किन्तु वह जीवन की शैली नहीं बननी चाहिए। जीवन की सघनता तो यहां संसार में ठीक है। कभी–कभार एकांत में चले गए, वो एक अलग बात है। ओशो ने संन्यास की एक नई धारणा दी। उस नवसंन्यास के साथ एक नए प्रकार की साधना की धारणा भी थी। अगर सामूहिक रूप से हम साधना में डूब सकें तो ही जगत में कोई बड़ी क्रांति संभव है, कोई बड़ा परिवर्तन संभव है। जंगल के एकांतवास में कितने लोग जा सकेंगे और गुफाओं में कितने लोग जा सकेंगे, इतनी गुफाएं हैं कहां और सारे लोग अगर एवरेस्ट पर पहुंच गए तो गर्मी से एवरेस्ट की बर्फ भी पिघल जाएगी! अगर जगत में कोई बड़ा परिवर्तन करना है तो संसार के बीच रहकर ही करना होगा। फिर सामूहिक साधना के कुछ लाभ हैं जो कभी किसी ने पहले सोचा

नहीं। सुनो ओशो की अमृतवाणी–

'साथ तो कोई जा ही नहीं सकता समाधि में। अकेले–अकेले ही जाना होता है। यात्रा का अंत तो सदा अकेले पर होता है। लेकिन प्रारंभ में अगर साथ हो, तो बड़ा ढाढ़स, बड़ा साहस मिल जाता है। तुम अकेले ध्यान करो, तो भरोसा नहीं आता कि कुछ होगा। तुम्हें अपने पर भरोसा खो गया है। तुम दस हजार आदमियों के साथ ध्यान करो, तुम्हें अपने पर तो भरोसा नहीं, यह नौ हजार नौ सौ निन्यानबे लोगों की भीड़ पर तुम्हें भरोसा आ जाता है।

इनमें से भी प्रत्येक की यही हालत है। इनको अपने पर भरोसा नहीं है। हो भी क्या अपने पर भरोसा! जिंदगी भर की कुल कमाई कूड़ा–करकट है। कुछ अनुभव तो आया नहीं। इनकी आस्था ही खो गयी है कि हमें, और शांति मिल सकती है? असंभव! इन्हें अगर आनंद मिल भी जाए, तो ये सोचेंगे कि यह कोई कल्पना हुई, या किसी ने कोई जादू कर दिया। मुझे, और आनंद! नहीं, यह हो नहीं सकता। सभी की यही हालत है।

लेकिन दस हजार लोग जब साथ खड़े होते हैं, तो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे तुम्हें बल देते हैं कि जहां इतने लोग जा रहे हैं, वहां कुछ तो बल होगा। यह बल प्राथमिक धक्का बन जाता है। इससे गति शरू हो जाती है। एक बार गति शुरू हो गयी, फिर तो तुम्हें अपने ही अनुभव से भरोसा आने लगता है। धीरे–धीरे साथ की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम अकेले हो जाते हो। अकेले होने के लिए भी साथ की जरूरत है। तुम इतने कमजोर हो गए हो, तुमने इतना अपने स्वभाव को भुला दिया है कि तुम्हें अपने पर ही भरोसा लाने के लिए भीड़ की जरूरत हो जाती है।

मेरा भी अनुभव यही है कि मैंने लोगों को अकेले–अकेले भी ध्यान करवा के देखा, लेकिन गति नहीं होती। लेकिन अगर वे साथ ध्यान करते हैं, एक दफा गति हो जाती है, फिर तो वे खुद ही कहते हैं कि अब हम अकेले करना चाहते हैं। साथ से शुरुआत सुगमता से हो जाती है। तुम थोड़े आनंदित होने की हिम्मत भी जुटा पाते हो। जब हजार लोग नाचते हैं, तो तुम्हारे पैर में भी कोई नाचने लगता है। तब रोके नहीं रुकता। और जब हजार लोग आह्लादित होते हैं, तो उनका आह्लाद संक्रामक होता है। बीमारी ही संक्रामक नहीं होती, स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। और जब दस लोग उदास बैठे हों, तो उनके बीच तुम भी उदास हो जाते हो। और जब दस लोग हंसते हैं, तो उनके बीच तुम भी हंसने लगते हो।'

साधना का अंत एक पर होगा, उसका नाम है एकांत। भीड़ से मुक्त हो जाएंगे लेकिन भीड़ से भागने की जरूरत नहीं, भीड़ में रहते हुए भीड़ से मुक्ति संभव है। संसार के बीच में हम हों, संसार हमारे भीतर न हो। ऐसी अनासक्ति का भाव ध्यान में डुबाएगा। और सामूहिक साधना बहुत उपयोगी हो सकती है। सन् 1964 में ओशो ने पहली बार ध्यान शिविर लिया था और उन्होंने सामूहिक रूप से ध्यान करवाया था। यह कोई सिद्धांत नहीं है, अब तो पिछले तीस–चालीस साल के प्रयोग से यह स्वयंसिद्ध, सत्य हो गया है कि सामूहिक साधना अकेले के साधना से ज्यादा आसान और सुगम है।

क्या सघन साधना और सडेन एनलाइटेनमेंट के द्वारा जादुई काया–कल्प और व्यक्तित्व परिवर्तन तुरंत हो सकता है? पूछते हैं लुधियाना से डॉ. शविन्दर सिंह जी।

हो तो सकता है लेकिन तुम्हें नहीं होगा। तुरंत परिवर्तन हो सकता है अगर अनंत धैर्य तुम्हारे भीतर हो। अगर तुम्हारे भीतर शीघ्रता है तो हड़बड़ी में गड़बड़ी हो जाएगी। जो व्यक्ति चाहता है कि शीघ्र एनलाइटेनमेंट हो उसका तो एनलाइटेंड होना भी मुश्किल है। उसका ये जल्दीपन ही बाधा बन रहा है। यह जल्दबाजी ही तुम्हें बेचैन करेगी, तुम्हें अशांत करेगी। यह अशांति ही तो बाधा है। जो व्यक्ति धैर्य से भरा है, अनंत प्रतीक्षा करने को राजी है उसकी सारी बेचैनी खो जाएगी, वह निश्चित ही शांत होता जाएगा क्योंकि उसे कोई जल्दी ही नहीं है। अगर कोई प्रतीक्षा करने को राजी है या अनंत–अनंत प्रतीक्षा करने को राजी है, सहर्ष स्वीकार है, ऐसे व्यक्ति को कैसे अशांत करोगे! और ऐसी शांति ही तो एक दिन बुद्धत्व, एनलाइटेनमेंट बन जाएगी। तो बड़ी विरोधाभासी बात है। जो जल्दी करेंगे उन्हें देर लगेगी और जो प्रतीक्षा के लिए तैयार हैं वे बड़ी जल्दी पहुंच जाएंगे। तुम्हारी यह जल्दबाजी ठीक नहीं है शविन्दर सिंह।

मुझे याद आता है सेठ चंदूलाल एक दिन बड़े उदास बैठे थे। किसी ने पूछा कि आज आप बड़े चिंतित नजर आ रहे हैं? उन्होंने कहा कि हां, मेरा एक मित्र अपने चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी करवाने के लिए मुझसे ढाई लाख रुपए उधार ले गया था, यह कहकर कि एक सप्ताह बाद वापस कर दूंगा। पूछने वाले ने पूछा कि आपको परेशानी क्या है? चंदूलाल ने कहा कि एक सप्ताह से ज्यादा बीत गया और वह आया नहीं, अब सवाल ये है कि मैं उसे पहचानूं कैसे? उसके चेहरे की प्लास्टिक सर्जरी हो चुकी है। तुम कह रहे हो कि क्या जादुई कायाकल्प और व्यक्तित्व में पूर्ण परिवर्तन तुरंत हो सकता है? तुम्हारे इरादे क्या हैं, कुछ धोखाधड़ी करनी है? धीरज रखो। संत कबीर साहब ने कहा है–

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।

तुम अपना काम करते चलो, तुम अपनी साधना में डूबते चलो, तुम ध्यान करते चलो। फल की चिंता ही छोड़ दो। कृष्ण बार–बार गीता में कहते हैं कि तुम फलासक्ति रहित हो जाओ। तुम तो बीज बोओ, पानी डालो, खाद डालो, धूप का इंतजाम करो, बाड़ लगाओ और सुरक्षा का इंतजाम करो, तुम माली का अपना कर्म करो फल की चिंता न करो, फल तो अपने आप आएंगे ऋतु आने पर। जापान के झेन फकीर कहते हैं, 'सिटिंग साइलेंटली डूइंग नथिंग, दि स्प्रिंग कम्स ऐण्ड दि ग्रास ग्रोज बाई इटसेल्फ', कुछ न करते हुए बस यूं ही शांत बैठे–बैठे बसंत ऋतु आती है और घास अपने आप उगती है, फूल अपने आप खिलते हैं, फल अपने आप आते हैं। फल लाने की जल्दी, तुम्हारा अधैर्य, तुम्हें विचलित करता रहेगा। कभी–कभी छोटे बच्चे करते हैं न, आम का बीज बो आए बगीचे में और रात भर सो न पाए कि क्या हुआ, बीज उगा कि नहीं उगा। सुबह उठते ही भागे और उखाड़कर देखा अरे, कुछ भी नहीं हुआ, बीज तो वैसे का वैसा ही है। निराश हो गए, फिर से बो दिया। दो–चार घंटे बाद फिर ख्याल

आया कि अंकुर निकला कि नहीं, फिर उखाड़कर देखा। यूं अगर उखाड़–उखाड़कर देखते रहोगे तो ये बीज ही नष्ट हो जाएंगे, कभी अंकुरित न हो पाएंगे। साधना के साथ धैर्य और प्रतीक्षा भी चाहिए।

धूर्त नेताओं, बेईमान बुद्धिजीवियों, पाखंडी धर्मगुरुओं और शोषक अधिकारियों के प्रति क्रोध कहीं मुझे आतंकवादी न बना दे, इसका भय उत्पन्न हो रहा है। क्या करूं? क्षमा करें मैं अपना नाम जाहिर करना नहीं चाहता।

इन मित्र ने अपना नाम भी प्रश्न के साथ नहीं लिखा है, तुम्हारा भय लगना स्वाभाविक है, लगना ही चाहिए। तुम खुद उसी रास्ते पर जा रहे हो जिनसे तुम लड़ने की सोच रहे हो। अगर आतंकवादियों से लड़ोगे और अगर तुम जीत गए तो तुम उनसे भी बड़े आतंकवादी बन जाओगे। अगर तुमने धूर्त राजनेताओं के साथ दुश्मनी ठानी तो तुम एक दिन पाओगे कि उनसे भी बड़े धूर्त बन गए। तभी तो उनको जीत पाओगे। इसलिए दुश्मन भी सोच–समझकर चुनना, मित्र किसी को भी चुन लो कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि मित्र तुम्हारे जीवन को उतना परिवर्तित नहीं करते जितना कि शत्रु करते हैं। यह निर्भर करता है कि तुम किससे लड़ रहे हो। तुम बुरे आदमी से लड़ोगे तो उस लड़ाई में तुम और भी बुरे बन जाओगे।

सावधान! तुम्हारी ये भावना निश्चित ही खतरनाक है। तुम्हें जो डर लग रहा है कि तुम ही कहीं आतंकवादी न बन जाओ, तुम बन जाओगे। क्रोध की ऊर्जा को करुणा में बदलो। ओशो कहते हैं कि क्रोध की शक्ति ही करुणा में रूपांतरित हो सकती है। क्यों न इसी भाव को, ये जो शक्ति तुम्हारे भीतर जागी है लड़ने के लिए, इसको ही तुम सृजन में लगा दो। ठीक है दुनिया में धूर्त और चालाक लोग हैं, बेईमान हैं। तो कम से कम तुम तो ईमानदार बनो, तुम तो शोषण छोड़ो, तुम तो दयावान बनो। कम से कम दुनिया का एक व्यक्ति तो उस राजनीति के जाल से बाहर हो जाए, तुम भी तो इसी दुनिया के हिस्से हो। अगर तुम बदल गए तो दुनिया में बदलाहट की शुरुआत तो हो ही गई। स्वयं से शुरू करो, दूसरों पर नजर न रखो। दूसरों के प्रति करुणाभाव रखो, दयाभाव रखो। वे जो शोषक हैं, चालाक हैं, बेईमान हैं, उनकी आंतरिक दरिद्रता पर थोड़ी दया करो। वे भीतर बिल्कुल दीन–हीन और दरिद्र हैं इसलिए राजनीति में उनका रस है, पद और प्रतिष्ठा में उनका रस है। तुम अपने भीतर आंतरिक संपन्नता को, समाधि के सौंदर्य को प्राप्त करो और जगत के प्रति करुणाभाव से भरो, दयाभाव से भरो। सुनो यह गीत–

मेरे दोस्तों, हमराहियों,
दया का पात्र है वह देश, जहां अपराधी ही नेता बन पाते हैं
और लोग वैभवशाली विजेता को उदारता का जामा पहनाते हैं।
जहां धर्मगुरु कुत्तों जैसे लड़ते–लड़ाते हों
जहां दार्शनिक मदारी के खेल दिखाते हों
जिसकी कला भौंडी नकल मात्र है
निश्चित ही वह मुल्क दया का पात्र है।

जो उन वस्त्रों को धारण करता है, जिन्हें वह खुद नहीं बनाता
वह रोटी खाता है, जिसकी फसल वह नहीं उगाता
लानत है उस देश पर लानत है
झूठी समस्याओं पर बकबक करने की जहां आदत है
जो विचारों से लदा है, सिद्धांतों से पूर्ण है
मगर धर्म और संस्कृति से शून्य है
जाग्रत अवस्था में जिस चीज से नफरत करता है
सपनों में उसी से भरपूर मोहब्बत करता है
करुणा का पात्र है वह पाखंडी देश
जिसके संत–महात्मा बूढ़े, अंधे, बहरे हो गए हैं
और जिसके महापुरुष अभी पालने में झूल रहे हैं
जो राष्ट्र टुकड़ों में बंटा है
और हर टुकड़ा अपने को एक राष्ट्र समझता है

दया करो, करुणा से भरो और आत्मरूपांतरण में लगो। अगर देश को बदलना चाहते हो, दुनिया की तस्वीर बदलना चाहते हो तो स्वयं से शुरुआत करो। यही राजनीतिक और धार्मिक दृष्टिकोण का भेद है। राजनीति दूसरों को बदलने की कोशिश है और अध्यात्म स्वयं को बदलने की सोचता है। अगर तुमने दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप करने की सोची, दूसरों को सुधारने की सोची तो संभावना यही है कि कहीं तुम ही न बिगड़ जाओ। कबीर साहब ने एक जगह कहा है–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय।

ठीक है तुम्हें कम से कम अपने प्रति होश आया कि कहीं तुम्हारा क्रोध तुम्हें आतंकवादी न बना दे। इसी होश का सूत्र पकड़कर आगे चलो।

ध्यान संबंधी ओशो साहित्य पढ़ना चाहती हूं, कहां से आरंभ करूं? पूछती हैं दिल्ली से शीला सागर।

ओशो की कुछ किताबें, ध्यान से संबंधित, साधना से संबंधित हैं, उनसे शुरू करो। मैं चार–पांच किताबों के नाम तुमसे कहता हूं। सबसे पहले तो उपयोगी होगा 'ध्यानयोग प्रथम एवं अंतिम मुक्ति'। दूसरी किताब 'ध्यानसूत्र' नए साधकों के लिए विशेष पठनीय है। 'तंत्रसूत्र' में भगवान शिव ने पार्वती को जो 112 ध्यान की विधियां दी हैं उनकी व्याख्या है। 'तंत्रसूत्र' किताब में अस्सी प्रवचन हैं। उन्हें न केवल पढ़ना, बल्कि उन विधियों को करना भी। और जो विधि तुम्हें रास आए उसमें डूबना। ठीक इसी प्रकार पतंजलि योगसूत्र पर ओशो की प्रवचनमाला बड़ी अद्‌भुत है। 'रजनीश ध्यानयोग' और 'रजनीश दर्शन' ये दो किताबें भी साधकों के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। ओशो की एक किताब है 'नेति–नेति'। इसमें वे प्रवचनमालाएं संकलित हैं जो ओशो ने ध्यान शिविरों में दिया है, विशेषकर नए साधकों के

लिए बड़ी उपयोगी हैं। 'ध्यान विज्ञान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयां', ये दो किताबें भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसे पढ़ना, गुनना, प्रयोग करना। पाकशास्त्र पढ़ने के लिए नहीं होता, स्मरण रखना। पाकशास्त्र पढ़कर भोजन पकाना है और उस भोजन को खाना है और पचाना है। वह हमारे शरीर का हिस्सा बने। ठीक इसी प्रकार धर्मग्रंथ और धर्मशास्त्र भी अपने खून में घुल-मिल जाने देना, प्रयोग में उतरना। तुमने ठीक प्रश्न पूछा है कि ध्यान संबंधी साहित्य पढ़ना चाहती हूं। बस इतना ही याद दिलाना चाहता हूं, पढ़कर ही तृप्त न हो जाना, पाकशास्त्र पढ़ने से भूख नहीं मिटती है, पानी के बारे में फिजिक्स और केमेस्ट्री पढ़कर प्यास नहीं बुझती है। पानी पीना होगा और भोजन करना होगा। ओशो की किताबों को इसी दृष्टि से लेना।

अध्याय–27

श्रेष्ठ शिष्य कौन?

आज का पहला प्रश्न है सद्गुरु की नजरों में कैसे कोई शिष्य श्रेष्ठ एवं सुपात्र बन सकता है, बताने की अनुकंपा करें? पूछती हैं नवांशहर पंजाब की श्रीमती नीलम।

जो श्रेष्ठ बनने की कोशिश करेगा वह निकृष्ट हो जाएगा। बड़ा विरोधाभास है, जो अपने को मिटा डालेगा, शून्य हो जाएगा वह सुपात्र और श्रेष्ठ हो जाएगा। पात्रता का अर्थ समझते हो? हम एक कटोरी को, गिलास को कहते हैं पात्र, क्यों? क्योंकि वह खाली है। अगर वह कटोरी, जो स्टील से बनी है, पूरी सॉलिड स्टील की बनी हो, उसमें कोई खाली जगह न हो तो फिर वह गेंद हो जाएगी, पात्र नहीं रह पाएगी। बरतन इसलिए बरतन है क्योंकि वह स्वयं से खाली है और भरा जा सकता है। ठीक ऐसे ही श्रेष्ठ शिष्य है... सुपात्र, स्वयं से खाली, अहंकार से रिक्त। तो पात्रता का अर्थ समझना– शून्यता, खालीपन, अहंकार से रिक्त, विचारों से रिक्त, धारणाओं से, सिद्धांतों से रिक्त। जो खुद अपनी ही मान्यताओं से भरे हैं वे सद्गुरु की कृपा से वंचित रह जाएंगे। गुरु तो आषाढ़ के बादल जैसा है जो कि पर्वतों पर भी बरसता है और झीलों पर भी। किन्तु पर्वत खाली रह जाते हैं क्योंकि वे स्वयं से भरे हैं। झील चूंकि खाली है, एक गड्ढा है इसलिए भर जाती है। दुनिया का सबसे बड़ा गड्ढा जानते हो कहां है? वह प्रशांत महासागर है, दुनिया में कहीं भी जल बरसे अंततः वह सागर में पहुंच

जाता है क्योंकि सागर सुपात्र है। सामान्यतः अहंकारी लोग उल्टे घड़े की भांति हैं। वर्षा भी होती रहेगी फिर भी वे खाली रह जाएंगे। जब तुम कहते हो सुपात्र, सुशिष्य, सद्शिष्य इसका अर्थ है सीधा घड़ा। सूरज की रोशनी भीतर आने को तो तैयार है। किंतु कुपात्र अपने खिड़की दरवाजे बंद किए बैठा है, मोटे-मोटे परदे लटकाए। सुपात्र वह है जिसने अपने हृदय की खिड़कियां खोल रखी हैं, जिसने अपने दिल के वातायन खोल दिए हैं। अब ताजी हवाएं आ सकती हैं, सूरज की रोशनी आ सकती है। गुरु का प्रकाश उसके भीतर आ सकता है। या एक दूसरी उपमा से समझो कि एक झील जिसमें तरंग न उठती हो, उस निस्तरंग झील में चांद का प्रतिबिम्ब बड़ा सुंदर बनता है, पूरा चांद उसमें उतर आता है। शिष्य भी ऐसा ही है... शून्य, निष्क्रिय। उसमें गुरु अवतरित हो जाता है। इसलिए इस विरोधाभास को समझना। जो श्रेष्ठ बनने की आकांक्षा से भरा है वह श्रेष्ठ नहीं हो पाता है। जो अपने को मिटाने को राजी है वही श्रेष्ठ और सुपात्र हो पाएगा। गीतादर्शन में कृष्ण बार-बार अर्जुन से कहते हैं कि हे पुरुषश्रेष्ठ! इसको समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा है-

'अर्जुन को कृष्ण बार-बार पुरुषश्रेष्ठ कहते हैं, बड़े भाव से कहते हैं।

शिष्य जितना ज्यादा झुकता जाता है, उतना ही श्रेष्ठ होता जाता है। यह विरोधाभास है। तुम सोचते हो, जितने अकड़े खड़े रहेंगे, उतने ही श्रेष्ठ हो जाएंगे। गुरु के सामने तुम जितने अकड़ते हो, उतने ही निकृष्ट सिद्ध होते हो। वहां तो झुकना ही कला है। वहां तो तुम जितने झुकते हो, उतने ही श्रेष्ठ होते चले जाते हो। वहां तो तुम बिल्कुल झुक जाते हो, तो तुम श्रेष्ठता की आखिरी परमसीमा हो जाते हो। अर्जुन पुरुषश्रेष्ठ है। वह झुकता जा रहा है, प्रतिपल झुकता जा रहा है। और पुरुषश्रेष्ठ इसलिए भी है कि अब उसने संन्यास और मोक्ष की जिज्ञासा की है। वह पुरुषश्रेष्ठ ही करते हैं। निकृष्ट पुरुष धन के बाबत पूछता है।

मेरे पास लोग आ जाते हैं। अब मेरे पास आने के पहले ही उन्हें सोचना चाहिए कि मेरे पास किसलिए जा रहे हैं! वे पूछते हैं कि ध्यान करने से आर्थिक लाभ होगा कि नहीं?

नुकसान हो सकता है, लाभ कैसे होगा! ध्यान करोगे, तो घंटेभर तो दुकानदारी बंद हो जाएगी। उतना नुकसान होगा। ध्यान करोगे, तो लोगों की जेब से पैसा निकालने में थोड़ी-सी झिझक होने लगेगी। उतना नुकसान तो होगा। ध्यान करोगे, तो झूठ बोलने में अड़चन आएगी। उतना नुकसान होगा। तो मैं उनसे कहता हूं, ध्यान की तरफ जाना ही मत। ध्यान से हानि है। वे कहते हैं कि नहीं, आप मजाक कर रहे होंगे। क्योंकि हमने तो यही सुना है कि ध्यान करने से सभी तरह का लाभ होता है। लौकिक, पारलौकिक सभी तरह का लाभ है। लाभ पर नजर है, परलोक से मतलब क्या है! ध्यान से धन पाने की आकांक्षा उठती हो, तो बड़ा निकृष्ट चित्त है।

पुरुष जब श्रेष्ठ चित्त से भरता है, तो उसकी जिज्ञासा मोक्ष की होती है। वह कहता है, मुक्त कैसे हो जाउं? देख लिया संसार, जान लिया संसार; दुख के अतिरिक्त कुछ भी न पाया; पीड़ा के अतिरिक्त कुछ भी न मिला। कांटे ही कांटे थे। फूल सिर्फ आश्वासन थे; आते कभी न थे; दूर दिखाई पड़ते थे; पास पहुंचने से सब कांटे ही सिद्ध होते थे।

संसार से, संसार की पीड़ा से जो ऊब गया, वह जाग रहा है। वही पूछता है, मुक्त कैसे हो जाउं? वही पूछता है, संन्यास क्या है? त्याग क्या है? हे कृष्ण, मुझे साफ–साफ करके बता दें।'

आज से करीब सौ साल पहले मनोवैज्ञानिकों ने एक शब्द गढ़ा था 'इंटेलीजेंस कोशेंट', बुद्धि मापांक। कोई चालीस साल पहले एक और नया शब्द गढ़ा इ.क्यू., 'इमोशनल कोशेंट' और धीरे–धीरे अब पांच दस सालों में एक तीसरा शब्द आ रहा है एस.क्यू., 'स्पिरिचुअल कोशेंट', आध्यात्मिक मापांक, भावनात्मक मापांक से भी ज्यादा गहरा है। और इसको कैसे नापेंगे? इसको शून्यता से, खालीपन से नापेंगे। तो याद रखना, पात्रता अर्थात् शून्यता।

कृष्ण तथा राम ने भी अनेक दुष्टों का वध कर दिया, मारने के बजाय उनका हृदय परिवर्तन क्यों नहीं किया? पूछते हैं भैरहवा नेपाल से दीन प्रसाद शर्मा।

प्रश्न बड़ा तार्किक लगता है। बुद्ध ने अंगुलिमाल का हृदय परिवर्तन किया, नारदमुनि ने बाल्याभील का हृदय परिवर्तन किया और ऋषि वाल्मीकि बनाया। राम और कृष्ण ने वध क्यों किया? उनका दिल क्यों न बदला, उनको समझाया क्यों नहीं? इस बात को थोड़े आधुनिक उदाहरण से समझो। समझो टॉन्सिल्स की बीमारी हुई, अब डॉक्टर एक सीमा तक दवाई से, ऐंटीबायोटिक से ठीक करने की कोशिश करेगा, लेकिन अगर बिमारी ठीक नहीं हुई तब टॉन्सिलेक्टॉमी करेगा। अगर अपेंडिक्स खराब हो गया और बर्स्ट होने के करीब है, दवा से ठीक नहीं हो सकता तब सर्जरी की जरूरत पड़ेगी। अगर ट्यूमर और कैंसर हो गया है तो ऑपरेशन करना पड़ेगा।

ठीक इसी प्रकार कुछ लोग हैं जिनकी आंतरिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि उनका पूरा शरीर ही बदला जा सकता है। जब एक अंग रिप्लेस करना स्वीकृत हो गया है आज, किडनी या हृदय ट्रांसप्लांट किया जा सकता है तो पूरा शरीर ही क्यों न बदल दिया जाए! कोई व्यक्ति इतना दुष्ट हो गया है, इतना हिंसक हो गया है और इस शरीर के संस्कारों का जाल और आदतों का संग्रह उसका ऐसा है कि इस शरीर में रहते हुए अब उसमें बदलाव संभव नहीं है। वह सीमा लांघ चुका जहां समझाने बुझाने से काम चल जाता या जहां दवाइयां काम करतीं। वाल्मीकि पर काम कर गई, अंगुलिमाल पर औषधि काम कर गई, लेकिन कंस पर काम नहीं करेगी, रावण पर काम नहीं करेगी।

दूसरी बात और ख्याल रखना, कृष्ण और राम की दृष्टि में मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है, आत्मा तो अमर है, उसका तो हनन हो ही नहीं सकता। केवल शरीर का रिप्लेसमेंट हो रहा है, इस मन का रिप्लेसमेंट हो रहा है इसलिए कृष्ण के लिए मौत की सत्ता नहीं है। जैसे एक बूढ़े आदमी को समझाना मुश्किल है लेकिन एक नया शरीर देना आसान है। यहां यह शरीर गिरेगा और वहां उसका पुनर्जन्म हो जाएगा, नए शरीर से सुख आना हो सकता है।

अमीर देशों में कोई मशीन या कार खराब हो जाए तो लोग उसको सुधरवाने के लिए नहीं ले जाते बल्कि नई कार ही खरीद लेते हैं। जरूरत क्या है पुरानी कार को सुधरवाने की। परमात्मा महाऐश्वर्यवान है, अति अमीर, वहां कोई कमी नहीं है। एक शरीर खराब हुआ तो

दूसरा शरीर ले लो, तीसरा शरीर ले लो। फिर पुनर्जन्म, कोई कंजूसी नहीं है इसलिए रिपेयर की जरूरत नहीं, रिप्लेसमेंट उपयोगी हो सकता है। राम और कृष्ण ने जिन लोगों का वध किया है याद रखना, उन लोगों ने मरते समय उन्हें धन्यवाद दिया है। रावण अनुग्रह भाव से भरा कि बड़ी कृपा की आपने, और मुझे इस शरीर से मुक्त कर दिया वरना इस शरीर में रहते हुए मेरा मोक्ष संभव न था। इस शरीर की आदतें और संस्कार ऐसे पड़ गए हैं, मैं उनसे छुटकारा नहीं पा सकता था। उसने राम को धन्यवाद दिया है। तो राम और कृष्ण ने जिनका वध किया है याद रखना, वे कह रहे हैं कि लो हम तुम्हें प्रकृति के हाथों में सौंपते हैं, कुदरत के रिपेयर वर्कशॉप में भेजते हैं। वहां से फिर सुधरकर वापस आ जाना। ये कोई हिंसा की बात नहीं, करुणा का ही कृत्य है। बुद्धपुरुषों के हाथ में क्रोध जैसी दिखने वाली बात भी करुणा से भरी होती है। उनके हथियार, उनके औजार सर्जन के इंस्ट्रूमेंट जैसे हैं। वे चाकू छूरियां भले के लिए हैं, बुराई के लिए नहीं। सुनो यह प्यारा गीत–

यदि धर्म निज निभते चलें, यदि कर्म निज निभते चलें
यदि मर्म निज निभते चलें
फल के लिए फिर भाग्य पर संतोष बहुत बुरा नहीं।
यह दोष बहुत बुरा नहीं।
अन्याय जग का देखकर, हो जाए कंपित स्वर प्रखर
जो क्रांति कर दे विश्व में वह रोष बहुत बुरा नहीं।
यह दोष बहुत बुरा नहीं।
निर्माण हेतु जो लड़े, मिटता मिटाता जो बढ़े

आदर्श पर दृढ़ हो अड़े
सच पर पतंगे सा जले, मदहोश बहुत बुरा नहीं।
यह दोष बहुत बुरा नहीं।
समझदार दोषों से भी अलंकृत हो जाते हैं।
जीसस का कोड़ा या कृष्ण और राम का युद्ध में उतरना।

समझदार दोषों से भी अलंकृत हो जाते हैं, नासमझ के हाथ में अमृत भी जहर हो जाता है। समझदार के हाथ में दुर्गुण भी सार हो जाते हैं। जीसस ने कोड़ा उठा लिया और यहूदियों के मंदिर में जाकर उन सूदखोरों की पिटाई की और उनको खदेड़कर बाहर निकाल दिया। उन सूदखोरों के तख्ते पलट दिए। जीसस के हाथ में कोड़ा भी वरदान है, अभिशाप नहीं। तो याद रखना, राम और कृष्ण ने जिनका वध किया है वह करुणावश किया है। उन्होंने वापस प्रकृति के हाथों में उनको दे दिया ताकि कुदरत उन्हें फिर से रिपेयर करके वापस भेज सके।

आपको जानकर आश्चर्य होगा एक आधुनिक हिप्नोटिस्ट और मनोवैज्ञानिक डॉक्टर माइकल न्यूटन ने एक अद्‌भुत किताब लिखी है और उन्होंने इस बात का जिक्र किया है कि जो लोग यहां जगत में विक्षिप्त हो गए हैं, किसी अति पर चले गए हैं, पागल हो गए हैं, असंतुलित हो गए हैं, मृत्यु के पश्चात् उनकी रिपेयरिंग होती है। प्रकृति उनको फिर से संतुलित करके, सुव्यवस्थित करके वापस पुनर्जन्म में भेजती है। और आश्चर्य की बात है कि ओशो ने ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है अपनी किताब 'कृष्ण स्मृति' में असुरों का वध समझाने के लिए कि प्रकृति के हाथों में रिपेयर करने के लिए कृष्ण ने उनको छोड़ दिया।

✹✹✹✹✹

बहुत समय से कुछ पूछने का भाव है किन्तु मालूम नहीं क्या, पूछते हैं दिल्ली से स्वामी प्रेम स्वभाव?

मैं जानता हूं प्रेम स्वभाव को, ध्यान में सुंदर प्रगति हो रही है। शुभ हो रहा है, अच्छा हो रहा है, पूछने का भाव है, भाव अभी मिटा नहीं लेकिन प्रश्नों की निरर्थकता समझ में आने लगी। आधी यात्रा पूरी हो गई है। एक दिन ऐसा भी आएगा प्रेम स्वभाव जब पूछने की यह खुजलाहट भी समाप्त हो जाएगी, मन की यह खुजली भी बंद हो जाएगी। प्रश्नों की निरर्थकता समझ में आने लगी। हमारे अधिकांश प्रश्न निरर्थक ही होते हैं, अधिकांश प्रश्नों के उत्तर भी निरर्थक होते हैं। पूछते-पूछते ही सही, लेकिन यह बात भी समझ में आनी है।

मैंने सुना है एक युवक से उसके मित्र ने पूछा कि आप जिस लड़की से शादी करने जा रहे हैं जरूर आपको पसंद होगी। अब देख लो, फिजूल का प्रश्न है। पसंद है तभी तो शादी कर रहे हैं, अब इसमें पूछने की क्या जरूरत है। उस युवक ने उत्तर दिया कि नहीं, लड़की पसंद नहीं थी, पसंद तो सास आई थी मगर वो शादी करने को तैयार नहीं है तो उसकी बेटी से ही कर रहा हूं। व्यर्थ के प्रश्न का व्यर्थ ही उत्तर हो सकता है!

मैंने सुना है हरियाणा में एक अर्थी को चार लोग लेकर जा रहे थे, पीछे शवयात्रा में बहुत से लोग जा रहे थे। सामने से आने वाले एक व्यक्ति ने पूछा कि क्यों भाई साहब, ये मर गया क्या? अर्थी ले जाने वाले जाट ने उत्तर दिया कि नहीं, मर नहीं गया है, सुबह

सैर–सपाटा कराने के लिए ले जा रहे हैं।

नेताजी ने भाषण शुरू करने के पहले कहा कि क्षमा करें, मुझे जल्दी फ्लाइट पकड़नी है केवल दस मिनट का समय है और बोलने के लिए मेरे पास बहुत कुछ है, समझ में नहीं आ रहा कि कहां से शुरू करूं। भीड़ में से एक आवाज आई कि नेता जी, कृपया नौवें मिनट से शुरू कीजिए।

अधिकांश प्रश्न व्यर्थ हैं, तो उनके उत्तर भी व्यर्थ ही रहेंगे। अच्छा हुआ प्रेम स्वभाव कि तुम्हारी निश्प्रश्न दशा करीब आ रही है। याद रखना, समाधि में कोई उत्तर नहीं मिलते, किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो जाता, समाधि में निश्प्रश्न दशा उपलब्ध होती है। लोग सोचते हैं कि सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। नहीं, उत्तर नहीं मिलेंगे। प्रश्न की व्यर्थता समझ में आ जाएगी। समझो बचपन में तुम पूछते थे कि परियां कहां से आती हैं, कहां रहती हैं, क्या खाती हैं?

फिर तुम्हारा बचपन बीत गया, प्रौढ़ावस्था आ गई। अब तुमसे कोई पूछे कि क्या हुआ उन सवालों का, अब तो तुम नहीं पूछते कि परियां चांद पर रहती हैं कि तारों पर। वो जो कपड़े पहनती हैं किस टेलर से बनवाती हैं? पहले तो तुम बहुत सवाल पूछते थे परियों के बारे में, अब तुम हंसोगे और कहोगे कि बचपन की बातें हैं, कहां की परियां! क्या हुआ, ये प्रश्न ही व्यर्थ हो गए। ऐसा नहीं है कि तुमको उत्तर मिल गया है कि परियां कहां रहती हैं, क्या खाती हैं और क्या पहनती हैं।

प्रौढ़ता के साथ–साथ वे प्रश्न भी व्यर्थ हो गए। ठीक ऐसे ही एक आध्यात्मिक प्रौढ़ता भी आती है और प्रश्न व्यर्थ हो जाते हैं। शुभ हो रहा है, सुंदर हो रहा है। इस निश्प्रश्न दशा में डूबो और प्रश्न पूछने की खुजलाहट को भी छोड़ो। धन्यवाद। जय ओशो।

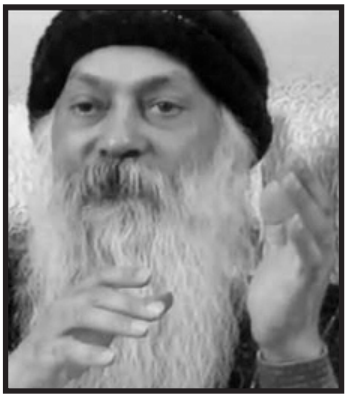

अध्याय–28

गुरु से मिले नया जन्म

पहला प्रश्न पूछती हैं नवांशहर पंजाब से श्रीमती नीलम। कंस और रावण के वध के संबंध में ओशो की अनूठी दृष्टि आपने कल समझाई। ओशो की हर बात निराली है! ऐसी अद्भुत व्याख्या कभी सुनी न थी! धन्यवाद प्रभु धन्यवाद! अब कृपया मेरा भी सर कलम कर दें।

नीलम तुम्हारा सर कलम करने की जरूरत नहीं, कृष्ण ने भी अर्जुन का सर कलम नहीं किया था। अर्जुन का सर फेरा था, काटा नहीं था। जो सीखने को तैयार है, जो झुकने को राजी है, जो शिष्य होने को राजी है, उसका सर काटने की जरूरत नहीं, उसका एक सूक्ष्म ऑपरेशन करने की जरूरत है। हां, तुम्हारे भीतर विचार जरूर काटे जाएंगे, तुम्हारे संस्कार मिटाए जाएंगे, तुम्हारी दुर्भावनाएं समाप्त की जाएंगी, सर कलम करने की जरूरत नहीं है। और तुम कह रही हो कि ओशो की हर बात निराली है। निश्चित रूप से अद्भुत हैं ओशो! मेरी दृष्टि में तो भगवान कृष्ण के बाद दूसरे पूर्ण अवतार हैं ओशो।

याद रखना, भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया था। ओशो भी हमें समझाते हैं। इतना स्थूल कार्य करने की जरूरत नहीं है, सर फेरा जा सकता है तो काटने की जरूरत नहीं पड़ती। अगर बिना सर्जरी के काम चल जाए तो औषधि पर्याप्त है, इंजेक्शन ही पर्याप्त है। मैं वही इंजेक्शन तुम्हें रोज–रोज दे रहा हूं। प्रेमभाव से, मैत्रीभाव से, सद्भाव से भरे व्यक्ति के

लिए समझाना पर्याप्त है। कहा जाता है न 'समझदार को इशारा काफी है'। बस ओशो भी हमारी तरफ इशारा करते हैं, संकेत करते हैं, अंगुली से बताते हैं। जो समझ सकेंगे, वे चल पड़ेंगे उस राह पर और पहुंच जाएंगे अपनी मंजिल पर। निश्चित रूप से एक आंतरिक मृत्यु तो घटित होती है। पहले जो हमारा व्यक्तित्व था, वह बाद में नहीं बचता। एक नए व्यक्ति का जन्म होता है, हम द्विज बनते हैं। भारत में ब्राह्मण को द्विज कहा जाता है

माता–पिता से जो जन्म मिलता है वह तो शरीर का जन्म है। गुरु भी एक जन्म देता है. .. वह आत्मा का जन्म है। लेकिन इस जन्म के पहले एक मौत भी घटती है। पुराने शास्त्रों में आचार्य को मृत्यु कहा गया है, गुरु मृत्यु स्वरूप है। पुराने को मिटाएगा, नए में प्राण फूंकेगा। संभव है भविष्य में अपराधियों का मस्तिष्क ट्रांसप्लांट कर दिया जाए, जैसे अभी हृदय के रोगियों का, किडनी के रोगियों का हृदय और किडनी ट्रांसप्लांट किया जाता है। हो सकता है भविष्य में न्यूरो सर्जरी और विकसित हो जाए जिससे उस व्यक्ति का मस्तिष्क ही बदला जा सके। अंग–अंग रिपेयर किया जा सके। कृष्ण और राम ने जो वध किए, उस समय प्रकृति के हाथों उनको रिपेयर करने को छोड़ दिया था।

ये पूरा व्यक्तित्व ही इतना सड़–गल चुका था कि अब इसमें सुधार की जरूरत नहीं थी, पूर्ण परिवर्तन की ही जरूरत थी। कुदरत यह काम बखूबी बड़े सरल तरीके से करती है। तुमने बिल्कुल ठीक कहा कि ओशो की बात बहुत निराली है और तुम धन्यवाद भाव से भरी।

अगला प्रश्न पूछा है श्री ओम प्रकाश पटवारी ने, मण्डी कालांवाली हरियाणा से। मेरा एक मित्र बहुत आलसी है इसलिए चाह कर भी यहां समाधि शिविर में नहीं आ पाता। क्या उसके लिए भी शांति पाने की कोई विधि हो सकती है?

आलसियों के लिए कोई विधि करने की जरूरत नहीं है। अगर वे विधि कर सकते तो आलसी ही क्यों होते! आलसियों के लिए अविधि की जरूरत होती है। अच्छे शब्दों में उसी को सांख्ययोग कहते हैं। सांख्ययोग अर्थात् कोई विधि नहीं। महागीता में अष्टावक्र अपने शिष्य जनक से कहते हैं कि हे जनक, 'आलस्य शिरोमणि हो रहो, आलस्य के शिखर पर पहुंच जाओ'। आलस्य का भी उपयोग किया जा सकता है। सामान्यतः हम जिन्हें आलसी कहते हैं वे केवल शारीरिक रूप से आलसी होते हैं। और ज्यादा आलसी बन जाओ, इतने आलसी कि विचार भी न चलें। जब तुम्हारे हाथ–पैर नहीं चलते तो मन में विचार भी क्यों चलें! और तुम्हारे हृदय में भावनाओं का ऊहापोह भी न उठे। उनको भी शांत हो जाने दो। पूरी तरह से आलसी ही हो जाओ। परमशांति घट जाएगी। किसी और विधि की जरूरत नहीं।

ओम प्रकाश, अपने मित्र को सताओ नहीं, वह घर में ही शांत है। उसे शांत रहने दो, यहां लाने की जरूरत नहीं। संत गोरखनाथ ने कहा है 'मरो हे जोगी मरो', आलसी आदमी वैसे ही मरे जैसा पड़ा रहता है। वह भी एक विधि हो सकती है। वह शिथिल है, शांत है। अगर सच में ही शिथिल और शांत है तो किसी अन्य विधि की जरूरत नहीं। महर्षि रमण ने इसी विधि का प्रयोग किया था, मुर्दे के समान पड़े रहे, 'मरो हे जोगी मरो, मरो मरण है मीठा'। और घंटे भर के प्रयोग से ही उन्होंने महाजीवन को जान लिया। आलस्य का भी उपयोग

किया जा सकता है, यद्यपि कठिन है। कल मैं तुम्हें चुटकुला सुना रहा था न हरियाणा वाला कि अर्थी लेकर कुछ लोग जा रहे थे वह अधूरा चुटकुला था।

'किसी ने पूछा कि क्या यह आदमी मर गया? जाट ने कहा कि मरा नहीं है, सुबह का सैर–सपाटा कराने ले जा रहे हैं'। आधा आज सुनाता हूं– फिर पूछने वाले ने पूछा कि आपलोग इसे सैर–सपाटा कराने ले जा रहे हैं, यह खुद क्यों नहीं जाता? जाट ने उत्तर दिया कि बहुत आलसी है, इसलिए अर्थी में बांधकर ले जा रहे हैं। अगर तुम ऐसे आलसी हो सको तो यह भी मार्ग बन जाएगा। परमात्मा तक पहुंचने के लिए सभी मार्ग हैं। तीन प्रकार के लोग हैं– तामसी, राजसी और सात्विक। निश्चित रूप से सबसे सरल मार्ग सत्व की तरफ से है। सात्विक बहुत शीघ्रता से पहुंच सकता है। लेकिन राजसी और तामसी के लिए भी मार्ग हैं। इस संबंध में सुनो ओशो की अमृतवाणी–

'प्रमादी कर्म नहीं करना चाहता... इसे तुम ठीक से समझ लो... वह फल चाहता है। सत्व को उपलब्ध व्यक्ति कर्म करता है, फल नहीं चाहता। एक छोर है प्रमाद, निम्नतम। दूसरा छोर है श्रेष्ठतम, सत्व। और मध्य में जो राजसी है, उसकी दशा बड़ी अलग है। उसे कर्म करने में ही मजा आता है, क्रिया में ही मजा आता है। उसमें इतनी ऊर्जा है, इतनी शक्ति है कि वह दौड़–धूप करने में रस लेता है। अगर उसे दौड़–धूप करने को न मिले तो परेशानी होती है।

जैसे तामसी उठ नहीं सकता, वैसे राजसी बैठ नहीं सकता। जैसे तामसी को सुबह बिस्तर से उठने में भारी अड़चन आती है, संसार का सारा कष्ट होता है, वैसे ही राजसी को रात बिस्तर में जाने में बहुत कष्ट होता है। राजसी की रात लंबी होती जाती है। वह दो–तीन बजे रात तक जागता है और कुछ नहीं तो नाचता है, होटल में, क्लब में कहीं भी समय बिताता है, ताश खेलता है, कुछ भी करने में राजी है। उसके भीतर इतनी बेचैनी है कि उस बेचैनी को न निकाले तो वो सम्हाल न सकेगा। तामसी पड़ा रहता है, उसे उठने में अड़चन है। राजसी का एक पागलपन है, उसका अलग एक जगत है। वह दौड़ता रहेगा लेकिन उसे पहुंचना कहीं नहीं है, उससे कोई लेना–देना भी नहीं है। ऊर्जा है, बेचैनी है।

फिर सत्व को उपलब्ध व्यक्ति है। वह संतुलित है। वह तो उतना ही करता है जितना करना जरूरी है। वह श्रम और विश्राम के बीच खड़ा है, वह सदा श्रम और विश्राम के बीच संतुलन को साधता है। उसका जीवन सम्यत्व की धारा है, समत्व। ऐसा व्यक्ति ही आकांक्षा को छोड़ सकता है, फल की आसक्ति को। ऐसा व्यक्ति ही अपने अहंकार को छोड़ देता है। क्योंकि जब तुम फल की आकांक्षा नहीं करते तुम्हारा अहंकार गिर जाता है।

बिना भविष्य के अहंकार जिएगा कैसे, वर्तमान में तो अहंकार होता ही नहीं। इस क्षण बोलो कहां है तुम्हारा अहंकार, इस क्षण तो भीतर सन्नाटा है। तुम खोजोगे कि 'कहां हूं मैं', लेकिन पाओगे नहीं। कल बड़ा मकान बनाना है, बड़ी कार खरीदनी है, चुनाव जीतना है, राष्ट्रपति होना है... कल है अहंकार। अभी इसी क्षण खोजोगे, पाओगे नहीं। जितना बड़ा भविष्य बनाओगे, उतना बड़ा अहंकार होगा।

डॉक्टर हरभजन सिंह बड़ैच, कनाड़ा से पूछते हैं कि आजकल हमारे देश में शराफत कम क्यों होती जा रही है? भारत में सर्वाधिक धार्मिक शिक्षक पैदा हुए मगर ज्यों–ज्यों दवा दी, बीमारी बढ़ती चली गई। ऐसा चमत्कार क्यों?

डॉक्टर हरभजन, तुम कनाडा में रहते हो इसलिए तुम्हें पता नहीं। ये भारत पुण्यभूमि, चमत्कारी बाबाओं का देश है। यहां चमत्कार होता है। जितना इलाज करो उतनी ही बीमारी बढ़ती है, यही तो चमत्कार है। तुम कभी–कभार देश में आते हो इसलिए तुम्हें लगता है कि देश में शराफत कम क्यों होती जा रही है।

मैंने सुना है अपनी निर्लज्ज बहू को सबक सिखाने के लिए एक सास कह रही थी कि बहूरानी, लज्जा नारी का आभूषण होती है। बहू ने कहा कि मांजी आपकी बात ठीक है, मगर चोरों के डर से आजकल आभूषण पहनता ही कौन है!

चंदूलाल से कोई पूछ रहा था कि डायनासोर और शरीफ लड़के में क्या समानता है? चंदूलाल ने कहा कि आज कल दोनों ही नहीं पाए जाते। पूछने वाले ने कहा कि डायनासोर और शरीफ लड़के में कौन सी भिन्नता है? चंदूलाल ने कहा कि पुराने जमाने में डायनासोर पाए जाते थे, शरीफ लड़के तब भी नहीं पाए जाते थे।

ये हमारी भ्रांति है कि पुराना जमाना अच्छा था। आजकल लोग बिगड़ गए हैं। ऐसी बात नहीं है। रावण कब हुआ था, कंस कब हुआ था, रामायण और महाभारत के युद्ध कब हुए थे? अगर उस समय अच्छे लोग थे तो फिर ऐसी घटनाएं क्यों घटी थीं? दुनिया की सबसे पुरानी किताब चीन में है, छः हजार वर्ष पुरानी। और उसकी भूमिका पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे आज के अखबार का संपादकीय हो। उसमें लिखा है कि आजकल लोग बहुत बिगड़ गए हैं, देश में शराफत कम हो गई है, बुराई बढ़ती जा रही है, बेटे बाप की नहीं सुनते, पत्नियां पति की नहीं मानतीं, लोग बिगड़ते जा रहे हैं, नई पीढ़ी बिल्कुल भ्रष्ट होती जा रही है। छः हजार साल पुरानी किताब में लिखा है कि पुराने जमाने में सतयुग था, अब कलियुग आ गया है। ये हमारी भ्रांति है कि पहले लोग अच्छे थे। हमेशा लोग ऐसे ही थे।

और तुम कहते हो कि भारत में सर्वाधिक धार्मिक शिक्षक पैदा हुए। इससे सिद्ध होता है कि यहां के लोगों को शिक्षा की बहुत जरूरत है। जहां बीमार हैं वहीं तो डॉक्टर की जरूरत होती है, डॉक्टर हरभजन सिंह! किसी मोहल्ले में अगर बहुत सारे डॉक्टर हों तो इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि यहां रोगियों की संख्या बहुत ज्यादा है। तो भारत में इतने तीर्थंकर हुए, अवतार हुए, ईश्वरपुत्र हुए, पैगंबर हुए, इतने फकीर, इतने मसीहा... इससे इतना ही सिद्ध होता है कि यहां के लोग बहुत ज्यादा बिगड़े हुए हैं, बीमारी बहुत ज्यादा है। तुम्हारे प्रश्न में भ्रांति छिपी हुई है। अपनी दृष्टि को थोड़ा साफ करो। दूसरी बात तुमसे कहना चाहूंगा, फूल और कांटे सदा बराबर होते हैं, प्रकृति में एक बैलेंस होता है। जहां रावण होंगे वहीं राम भी होंगे, जहां कंस होंगे वहीं कृष्ण भी होंगे, जहां बीमार होंगे वहीं डॉक्टर भी होंगे। फूल और कांटों की गिनती बराबर है। इसलिए मैं चाहूंगा कि दोनों से दृष्टि हटाकर तुम अपनी दृष्टि स्वयं के ऊपर लाओ। कब तक दुनिया की तरफ देखोगे, अपनी तरफ देखो।

अगला प्रश्न जबलपुर से स्वामी आनंद सरस्वती पूछते हैं। समस्त संतों का संदेश संक्षेप में बताने की अनुकंपा करें?

संदेश बड़ा छोटा सा है। कबीर साहब जिसे कहते हैं 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय', बस वही प्रेम सीखने जैसा है। वे ढाई अक्षर जिसने पढ़ लिए वह ज्ञानी हो गया, वह पंडित हो गया। 'पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय...', शास्त्र पढ़ने से, ग्रंथ पढ़ने से कोई ज्ञानी नहीं होता। एक ही बात सीखने जैसी है... प्रेम। और याद रखना, जिसे मैं ध्यान कहता हूं वह भी प्रेम का एक रूप है। ध्यान अर्थात् स्वयं से प्रेम, अपने एकांत से प्रेम, अपने मौन से प्रेम। जब तुम चुपचाप शांत, मौन अपने कमरे में बैठे हो तो वास्तव में क्या घट रहा है?... तुम स्वयं के प्रति प्रेमपूर्ण हो। तो ध्यान और प्रेम दो चीजें नहीं हैं– ध्यान का अर्थ है 'स्वयं से प्रेम' और प्रेम का अर्थ है 'दूसरे की तरफ ध्यान देना'। एक ही चेतना, जब दूसरे की ओर प्रवाहित होती है तो प्रेम कहलाती है, स्वयं की ओर प्रवाहित होती है तो ध्यान कहलाती है। तुम्हारी मौज, तुम उसे क्या कहो। बस उस चैतन्यता को साधो, उस जागरूकता को साधो, उस संवेदनशीलता को बढ़ने दो। प्रेम और ध्यान के ये दो रास्ते एक ही मंजिल पर पहुंचते हैं। उस मंजिल का नाम है समाधि। ईसा मसीह ने कहा है– गॉड इज लव। ओशो ने इसमें थोड़ा सा परिवर्तन किया लेकिन वह परिवर्तन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ओशो कहते हैं– लव इज गॉड। सुनने में लगेगा कि दोनों बातें एक ही हैं, लेकिन एक ही बात नहीं है। ईसा मसीह कह रहे हैं परमात्मा प्रेम है, उससे ऐसा लगता है कि परमात्मा के कई गुण हैं; उनमें से एक गुण उसका प्रेमपूर्ण होना, करुणावान होना, रहमान होना है। ओशो ने बात को पलट दिया। वे कहते हैं प्रेम ही परमात्मा है, प्रेम से ऊपर और कुछ भी नहीं है। ईश्वर को चाहो तो भूल जाओ, उसकी कोई भी जरूरत नहीं, प्रेम पर्याप्त है, तुम तो प्रेम में डूबो... सारे अस्तित्व के प्रेम में और स्वयं के प्रेम में भी, और एक दिन तुम परमात्मा को जान लोगे। प्रेम की पराकाष्ठा का नाम परमात्मा है। सुनो किसी कवि का यह प्यारा गीत–

तरानों में मोहब्बत का तराना लेकर आया हूं,
फसानों में हकीकत का फसाना लेकर आया हूं।
जमाने से अलग, माना, पुराने से भी अलग मैं हूं,
नया चैन–ओ–अमन का एक जमाना लेकर आया हूं।
खिड़कियां खोलकर ताजी हवा आने दो भीतर,
शायर हूं सुनाने का बहाना लेकर आया हूं।

मैं जो तुम्हें रोज–रोज सुना रहा हूं इसे तुम कोई प्रवचन या भाषण या शास्त्रों की व्याख्या न समझना, बस प्रेम का एक छोटा सा पाठ सिखा रहा हूं।

तुम्हारे हृदय के वातायन खुल जाएं, ये प्रेम की ताजी हवा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे, तुम अस्तित्व के साथ जुड़ जाओ, तुम स्वयं के साथ जुड़ जाओ, उस जुड़ने का नाम ही योग है, सहजयोग।

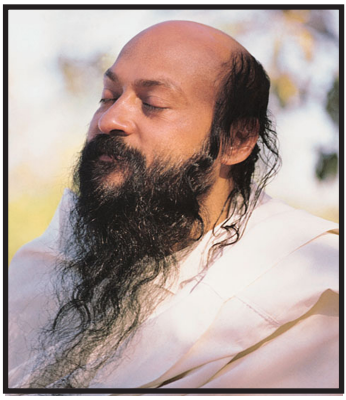

अध्याय–29

महत्वकांक्षा का ज्वर

आज का पहला प्रश्न श्री अनिल, रोहिणी दिल्ली से पूछते हैं कि ऐम्बीशन के बिना जिंदगी में प्रगति मुश्किल है। फिर ओशो जैसे धर्मपुरुष महत्त्वाकांक्षा को ज्वर क्यों कहते हैं?

क्योंकि महत्त्वाकांक्षा ज्वर है, बीमारी है, व्याधि है। यह प्रश्न तो ऐसा ही है कि जैसे कोई पूछे कि टी.बी. के बिना खांसी नामुमकिन है, फिर टी.बी. को बीमारी क्यों कहा जाता है. .. इसलिए तो बीमारी कहा जाता है! ज्वर का अर्थ है जो हमें तापग्रस्त कर दे, जो हमें उत्तप्त कर दे, उत्तेजित कर दे। ऐम्बीशन हमें एक्साइट करता है, उत्तेजित करता है, दौड़ाता है, पहुंचाता कहीं भी नहीं, सिर्फ दौड़ाता है। जैसे दूर क्षितिज दिखाई देता है... लगता है जमीन और आसमान मिलते हैं, होगी कोई तीन–चार किलोमीटर की दूरी, चलो भागो, दौड़ो, क्षितिज को पाना है... सारी महत्त्वाकांक्षाएं ऐसी ही हैं। यद्यपि क्षितिज कहीं है, फिर भी धोखा खड़ा होता है। ऐसा लगता है कि हमारे सामने जो लोग हैं, एक–दो किलोमीटर पर जो दिख रहे हैं वे शायद क्षितिज तक पहुंच गए। उनसे पूछो तो वे भी यही कहेंगे कि जो हमसे आगे दिख रहे हैं वे क्षितिज तक पहुंच गए। सबको भ्रांति बनी रहती है। सब दौड़ते रहते हैं लेकिन कोई कहीं भी नहीं पहुंचता। इसलिए महत्त्वाकांक्षा एक प्रकार का पागलपन है, एक प्रकार का बुखार है जो कि दौड़ाती बहुत है, पहुंचाती कहीं भी नहीं। किसी कवि ने बड़े प्यारे शब्दों में इस

बात को बयान किया है, सुनो–

सफर में धूप तो होगी जो चल सको तो चलो
मसल के भीड़ को तुम भी निकल सको तो चलो।
किसी के वास्ते राहें कहां बदलती हैं
तुम अपने आप को खुद ही बदल सको तो चलो।
यहां किसी को कोई रास्ता नहीं देता
गिरा के दोस्त को अपने, सम्हल सको तो चलो।
यही है जिंदगी, कुछ ख्वाब कुछ उम्मीदें
इन्हीं खिलौनों से तुम भी बहल सको तो चलो।
वो देखो दूर जमीं आसमां मिलते हैं जहां
वहां पहुंचने की हिम्मत अगर हो तो चलो।
कमबख्त जिंदगी में वक्त बहुत ही कम है
न सोचो, जल्दी से आगे निकल सको तो चलो।
वे खुशनसीब हैं जो मंजिल को पा लिए
जो अपनी किस्मत पे नाज कर सको तो चलो।
पत्थर होंगे, कांटे होंगे, पैरों में छाले होंगे
हां, अरमानों की आग में जल सको तो चलो।

ये अरमानों की आग बहुत जलाती है, राख कर देती है, लोग धूल धूसरित हो जाते हैं और पहुंचता कोई कहीं भी नहीं। सिकंदर की कहानी तो सुनी होगी न कि वह विश्वविजेता हो गया। फिर क्या हुआ? मिट्टी में मिल गया। सब मिट्टी में मिल जाते हैं। भारत में महायुद्ध हुआ था, महाभारत का। वह कुरुक्षेत्र यहां हमारे आश्रम के पास ही है, हरियाणा में। कहां हैं वे कौरव पांडव, कहां गए वे सिंहासन, कहां गए वे दिन?... सब उसी मिट्टी में समा गए जिस मिट्टी के लिए लड़ रहे थे। जिस जमीन के पीछे झगड़ा था वही जमीन उनको निगल गई। लेकिन हम पीछे लौटकर देखते भी नहीं। हमसे पहले कितने बड़े–बड़े महत्त्वाकांक्षी हो चुके हैं, मुकद्दर के सिकंदर, हम फिर उसी पागलपन में लग जाते हैं। थोड़ा जागो, चौंको! ओशो जैसे धर्मपुरुष जब कहते हैं कि महत्त्वाकांक्षा ज्वर है, तो वह ज्वर है इसलिए कहते हैं। तथ्य की घोषणा कर रहे हैं, किसी की निंदा नहीं कर रहे हैं। सद्गुरुओं के वचनों को आलोचनात्मक नहीं लेना। जब वे किसी चीज को कह रहे हैं कि यह ऐसा है तो केवल तथ्य की घोषणा है।

मेरे स्वर्गीय पिताजी के पड़ोसी ने उनके साथ नाइंसाफी की, जमीन–जायदाद के मामले में धोखाधड़ी करके बहुत दुख दिया। पड़ोसी का भी देहांत हो चुका है किंतु उसके बेटों से प्रतिशोध लेने की भावना मेरे मन में जड़ें जमाए हुए है। मेरे वकील कहते हैं कि कायर मत बनो, बाप का बदला लो, केस जीत सकते हो। मैं गांव छोड़कर वर्षों पूर्व दिल्ली में सेटल हो चुका हूं। कभी–कभी मेरा क्षत्रिय खून खौल उठता है। मैं अन्याय के खिलाफ शहीद होने को भी तैयार हूं। मगर अपने दुख के कारण को खत्म कर पिताजी की आत्मा को शांति जरूर

दिलाऊंगा। उचित आदेश दीजिए। पूछते हैं लक्ष्मण सिंह, नई दिल्ली से।

लक्ष्मण सिंह, जैसा तुम्हारा नाम है बिल्कुल लक्ष्मण की प्रतिमूर्ति हो और तुम्हारे भीतर 'सिंह' मौजूद है। अभी ठीक–ठीक आदमी हुए नहीं। अभी मैं जिस महत्त्वाकांक्षा की बात कर रहा था, अहंकार का रोग, वही तुम्हारे सिर पर सवार है। थोड़ा चौंको, जागो! मुझसे कहते हो कि उचित आदेश दीजिए तो फिर मेरे आदेश को मानो। अब पूछा है तो फिर मानना। शांत बनो, प्रेमपूर्ण बनो, बैर से बैर शांत नहीं होगा। तुम्हारे पिताजी स्वर्गीय हो गए, वह पड़ोसी स्वर्गीय या नर्कीय, जो कुछ भी होना था, हो गया। अब तुम क्यों नर्क में जी रहे हो! यह प्रतिशोध की आग तुम्हें जला रही है। अब तुम बताओ तुम्हारा इरादा क्या है? अपने बेटों को, नातीं–पोतों को भी दे जाओगे कि तुम उस पड़ोसी के नातीं–पोतों से लड़ना और ये वकील जो तुम्हें भड़का रहे हैं, उनका धंधा है लड़ाना। वे कभी नहीं चाहते कि कोई झगड़ा सुलझे।

सामान्यतः देखने में लगता है कि पुलिस वाले, न्यायाधीश और कोर्ट के लोग न्याय कराना चाहते हैं लेकिन इन्हीं लोगों की वजह से न्याय हो नहीं पाता। ये चाहते ही नहीं कि न्याय हो, किसी चीज का फैसला हो, ये चाहते हैं कि लोग लड़ते ही रहें। जैसे ऊपर–ऊपर से दिखाई देता है कि डॉक्टर लोगों का इलाज करना चाहते हैं, लोगों को स्वस्थ करना चाहते हैं, लेकिन डॉक्टरों की भीतरी मंशा क्या होती है?... कि लोग सदा बीमार होते रहें।

जुलाई, अगस्त, सितम्बर में जब हमारे सब तरफ बीमारियां फैलती हैं, हर व्यक्ति इनसे ग्रस्त हो जाता है, तब डॉक्टरों के चेहरे तुम प्रसन्न देखोगे। वे कहेंगे आजकल बहुत अच्छा सीजन चल रहा है। लोग फटाफट मर रहे हैं और डॉक्टर कह रहा है कि आजकल सीजन बहुत अच्छा चल रहा है! वे जो मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करते हैं उनसे पूछो, वे कहेंगे बहुत बढ़िया, मजा ही मजा है, बस ऐसा ही चलता रहे, आनंद ही आनंद हो जाएगा। लोगों के अपने–अपने स्वार्थ हैं। तुम कह रहे हो कि वकील तुमसे कहते हैं कि कायर मत बनो, बाप का बदला लो, केस जीत सकते हो। हर वकील सबसे यही कहता है कि केस जीत सकते हो।

मैंने सुना है एक बार नसरुद्दीन एक वकील के पास गया और बोला कि ये–ये झगड़ा है, ये पूरी कहानी मैं आपको सुनाता हूं, अब बताइए जीत पाऊंगा कि नहीं? वकील ने कहा कि निश्चित रूप से, सौ परसेंट जीत जाओगे। नसरुद्दीन ने कहा कि नमस्कार, फिर तो मैं वापस चलता हूं, अब तो केस लड़ना ही नहीं है। वकील ने कहा क्यों? नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने चालाकी से उल्टी कहानी सुनाई, मेरा जो विरोधी पक्ष है मैंने उसकी तरफ से कहानी सुनाई है। अगर सौ परसेंट गारंटी है कि वह जीतेगा तो फिर क्यों आपको फीस दूं, क्यों केस लडूं। वकील ने कहा तुम बैठो तो सही। वकील तो सबसे यही कहता है, कोई भी उसके पास जाए तो वह निश्चित ही कहेगा कि तुम ही जीतोगे क्योंकि उसका सारा धंधा इसी पर निर्भर है कि लोग लड़ते रहें। अब तुम मेरे पास आ गए हो तो मेरा कोई निहित स्वार्थ नहीं है

मैं चाहता हूं तुम शांत बनो, प्रेमपूर्ण बनो। और याद रखना, दुश्मनी से दुश्मनी समाप्त नहीं होती। अगर तुम चाहते हो कि वास्तव में तुम्हारे पिताजी की आत्मा को शांति मिले तो कम से कम पहले अपनी आत्मा को शांति दिला लो। जिनके साथ तुम्हारा झगड़ा चल रहा है

उस झगड़े को समाप्त करो, दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाओ। जो होना था, हो चुका। अन्याय दुनिया में सदा से हो रहा है। ये जमीन किसकी है? हम कहते हैं मेरी जमीन, लेकिन जमीन को तो पता ही नहीं कि उसका मालिक कौन है। तुम्हारे जैसे अरबों-खरबों लोग तुमसे पहले हो चुके और सब उसी जमीन में समा गए। बेचारी जमीन को पता ही नहीं कि वह किसकी है! जिस मकान को तुम कह रहे हो मेरा मकान, जिस दिन तुम्हारी अर्थी बाहर निकलेगी, मकान एक आंसू भी नहीं बहाएगा क्योंकि मकान को पता ही नहीं कि वह तुम्हारा है, सिर्फ तुम ही ऐसा मानते हो। फिजूल की बातों में न पड़ो। एक दुष्चक्र है, अगर तुम पड़ोसी से प्रतिशोध लोगे तो फिर वह भी तो कुछ करेगा। वह चुप थोड़े ही बैठा रहेगा, फिर वह बदला लेगा, फिर तुम बदला लोगे। इस कहानी का अंत कहां होगा? ...इससे नर्क पैदा हो जाएगा।

तुम कह जरूर रहे हो कि पिताजी स्वर्गीय हो गए लेकिन मैं मानता नहीं कि स्वर्ग जा सकते हैं और न ही तुम्हारा पड़ोसी स्वर्ग गया होगा। अगर तुम मेरी बात मान लो तो तुम जरूर स्वर्ग पैदा कर सकते हो, यहीं। उस पड़ोसी के साथ दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाओ। 'एस धम्मो सनंतनो' नामक प्रवचनमाला में सुनो ओशो की यह अमृतवाणी–

अगर जीवन को ऐसे देखने की कला आ जाए तो फिर तुम्हें कोई दुख नहीं दे सकता। दूसरा देना भी चाहे तो यह उसकी समस्या है। और तुम इस भ्रांति में कभी मत पड़ना कि वैर से तुम दूसरों के वैर को मिटा दोगे। कभी कोई नहीं मिटा पाया। प्रेम से ही मिटता है वैर। करुणा से ही मिटता है क्रोध।

'इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होते, अवैर से ही होते हैं। यही सनातन नियम है।'

यह बुद्ध के धर्म की आधारशिला है।

और थोड़ा सोचो भी कि कौन तुम्हें सुख दे पाता है, कौन तुम्हें दुख दे पाता है! सब तुम्हारे मन का ही हिसाब है। अभी घड़ी भर पहले जो बात सुख देती थी, घड़ी भर बाद दुख देने लगती है। अभी जो बात दुख दे रही है, घड़ी भर बाद सुख दे सकती है। तुम्हारी व्याख्या! तुम कैसे उस बात को पकड़ते हो! उस बात को क्या रंग देते हो! क्या रूप देते हो! और अगर तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए कि कोई दूसरा सुख नहीं दे सकता, तो दुख कैसे देगा? किसने तुम्हें कभी कोई सुख दिया, याद है कुछ? किसने तुम्हें कभी कोई आनंद दिया, याद है कुछ? और जब किसी ने कोई सुख नहीं दिया, तो कोई दुख क्या देगा!

मैं एक गीत कल पढ़ता था। बात मूल्यवान लगी--

डरूं मै किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था
मैं आज खिजां को जो रोऊं, बहार में क्या था
डरूं मै किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था

जब दूसरे के प्यार से कुछ न मिला, तब उसके गुस्से से क्या परेशान होना है! जब प्यार ही कुछ न दे सका, तो गुस्सा क्या छीन लेगा?

मैं आज खिजां को जो रोऊं, बहार में क्या था

और अब पतझड़ आ गया, सब वीरान हुआ जाता है– इसको रोऊं? लेकिन बहार में क्या था? जब बहार थी तब भी कुछ पास न था; जब बहार में भी कोई सुख न मिला, तो अब पतझड़ में दुख का क्या प्रयोजन है?

लेकिन आदमी बड़ा अजीब है! जिनसे तुम्हें सुख नहीं मिला, उनसे भी तुम दुख ले लेते हो। जिनके जीते–जी तुम्हें कभी कोई शांति नहीं मिली, उनके मरने पर तुम रोते हो।

और जब तुम्हें दोनों बातें साफ दिखायी पड़ जाती हैं, तब जैसे भीतर एक उद्घाटन हो जाता है, एक बिजली कौंध जाती है कि यह मैं ही हूं, अपनी ही शक्ल देखता हूं, दूसरे तो केवल दर्पण हैं। अपने ही प्रतिबिंब, अपनी ही प्रतिध्वनि, अपनी ही परछाईं पकड़ता हूं, दूसरे तो केवल दर्पण हैं; घाटियां हैं, जिनमें अपनी ही आवाज गूंजकर लौट आती है।

इसे बुद्ध 'एस धम्मो सनंतनो' कहते हैं, यही धर्म का सनातन सूत्र है। न परमात्मा, न मोक्ष, न वेद, न आत्मा–– कोई भी धर्म के मूल आधार नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं 'एस धम्मो सनंतनो' –यह छोटा सा सूत्र कि तुम्हारे दुख के कारण तुम हो, तुम्हारे सुख के कारण तुम हो; और दूसरे को दुख देने से तुम कभी सुख न पा सकोगे, दूसरे को सताने से कभी तुम उत्सव न मना सकोगे।

वैर से वैर शांत नहीं होता, अवैर से शांत हो जाता है। अवैर बरस जाए, वैर की अग्नि शांत हो जाती है। फिर हो या न हो शांत, यह कोई सवाल नहीं है; तुम्हारे लिए समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति को यह सूत्र समझ में आ गया, उसके लिए नर्क नहीं है, वह यहीं इसी क्षण स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाता है। उसका स्वर्ग कल नहीं है; उसका स्वर्ग अभी है।

लक्ष्मण सिंह, अच्छे से समझ लो... तुम्हारे सुख–दुख का, शांति–अशांति का कारण तुम ही हो, कोई और नहीं है। अगर तुम सुखी होना चाहते हो, शांत होना चाहते हो, अभी हो सकते हो। लेकिन उसकी कला सीखनी होगी। वह प्रेम की कला है। सबसे पहले तो दुख के कारण को अपने भीतर देखो, किसी दूसरे पर दोष मत मढ़ो।

अगला प्रश्न बुलंदशहर, यू.पी. से मां प्रेम प्रज्ञा पूछती हैं। परिवार से लेकर विश्वस्तर तक तनाव ही तनाव व्याप्त हैं। क्या ओशो की ध्यान विधियों से इसका इलाज संभव है?

बिल्कुल संभव है! क्योंकि तनाव पैदा होते हैं भविष्य की महत्वाकांक्षाओं से, कामनाओं से और ध्यान हमें लाता है भविष्य की जागरूकताओं में। हम अभी और इसी क्षण जाग सकते हैं, इसलिए तनाव से मुक्त हो जाते हैं। तनाव के लिए हमारी कामना और हमारे बीच में एक अंतराल चाहिए। मैं जो हूं और जो होना चाहता हूं उसमें जितनी दूरी होगी उतना ही तनाव होगा। मेरे पास जो है और मैं जो चाहता हूं कि मेरे पास हो, इन दोनों चीजों के बीच में जितना बड़ा गैप होगा मैं उतना ही ज्यादा परेशान होऊंगा। ध्यान का अर्थ है स्वयं पर आना। मैं जो हूं उसका एहसास करूं, अपनी उपस्थिति का एहसास। इसमें तनाव कैसे हो सकता है। पहले आत्मशांति होगी, आत्मशांति से संभव है कि तुम्हारे आसपास के लोगों में शांति फैले। यह भी संभव है कि समाज में, देश में, विश्व में, शांति की हवा फैले। लेकिन याद रखना,

शुरुआत सदा स्वयं से करना। तुम शांत बनो। तुम पूछ रही हो कि परिवार से लेकर विश्वस्तर तक तनाव व्याप्त हैं। मैं नहीं जानता विश्वस्तर के तनाव कैसे खत्म होंगे, परिवार के तनाव कैसे खत्म होंगे।

मुझे ज्यादा ज्ञान नहीं है। मैं तो एक छोटी सी बात जानता हूं कि तुम्हारे भीतर का तनाव कैसे समाप्त होगा। ओशो की बनाई ध्यान विधियां उस तनाव को समाप्त कर सकती हैं। तुम उतना कर लो और याद रखना, तुम भी इस विश्व के एक हिस्से हो। अगर तुम शांत हो गई तो विश्व में शांति की शुरुआत हो गई। हो सकता है ये तरंगें और फैलें, तुम्हारा फूल खिल गया, अब ये सुगंध और दूर-दूर तक उड़ेगी। अभी सुना न कि किसी ने ऐम्बीशन के बारे में पूछा, किसी ने पूर्वजों की लड़ाई को जारी रखने के लिए पूछा... अगर ये लोग शांत हो जाएं तो निश्चित रूप से और भी बहुत लोग शांत हो पाएंगे।

तनाव की जड़ हमेशा अहंकार है, अड़ियलपन, जिद्दीपन, कामना, महत्त्वाकांक्षा, आकांक्षा। तुम्हारा लक्ष्य दूर है, उसे पाना है तो तनाव है। ध्यान का अर्थ है अपने होने की अनुभूति। स्वयं पर लौट आओ फिर सारे तनाव समाप्त हो जाते हैं। आत्मशांति से विश्वशांति की एक छोटी सी संभावना निर्मित होती है।

याद रखना, मैं छोटी सी कह रहा हूं और संभावना कह रहा हूं क्योंकि लोग बहुत नासमझ हैं और उनको भड़काने वाले वकील बैठे हुए हैं हर तरफ। वे तुम्हारी कामनाओं को, तुम्हारे एंम्बीशंस को और भड़काते हैं। कोई तुमसे कह रहा है प्रथम हो जाओ। छोटे बच्चे को हम सिखाना शुरू कर देते हैं कि दौड़ो, क्लास में फर्स्ट आना है, फिर दुनिया में फर्स्ट आना है। ये प्रथम होने की दौड़ पागलपन है, इससे मुक्त हो जाओ और तुम पाओगे शांति घटित हो गई, इसी का नाम ध्यान है, समाधि है। धन्यवाद। जय ओशो।

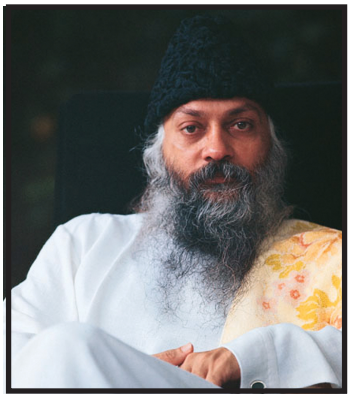

अध्याय–30

धीरे सब कुछ होय!

आज का पहला प्रश्न सोनीपत, हरियाणा से पूछते हैं अनुज। ओशो की किताबें पढ़ता हूं, प्रवचन व कैसेट सुनता हूं। मगर पूर्ण विश्वास नहीं जमता इसलिए संन्यास दीक्षा नहीं ली, साधना शुरू नहीं की। मन में शक बना ही रहता है। अभी तक अनिर्णय की स्थिति में हूं।

जल्दबाजी न करो अनुज, धीरे–धीरे चलो। मन में संदेह है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसा होना ही चाहिए। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति, होशियार व्यक्ति संदेहशील ही होगा। संदेह से ही विज्ञान का जन्म हुआ है, अध्यात्म का जन्म भी संदेह पर ही आधारित होना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं कि तुम्हारे जीवन में कभी श्रद्धा, भरोसा नहीं आएगा। आएगी जरूर, श्रद्धा भी आएगी, लेकिन धीरज रखना। धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय। एक दिन भरोसा आएगा। लेकिन जल्दबाजी की तो वह झूठा भरोसा होगा। ऑथेंटीसिटी पर ज्यादा ध्यान देना, प्रामाणिकता को पकड़कर चलना। जो तुम्हारी मनःस्थिति है, उसे स्वीकार करो कि ऐसा है, उसी के साथ जियो, उसी में से रास्ता निकलेगा। सत्य और असत्य में संघर्ष को चलने दो। मुझे पक्का पता है कि तुम्हारे संदेह झूठे हैं। ओशो जो कह रहे हैं वह परमसत्य है। कोई हर्ज नहीं, चलने दो सत्य और असत्य में संघर्ष, एक दिन सत्य जीतेगा इसलिए मुझे कोई जल्दी नहीं है कि तुम संन्यास लो, कि दीक्षा लो, कि साधना शुरू करो। आने दो ठीक समय,

परिपक्व समय में ही सब चीजें अच्छी लगती हैं। समय के पूर्व, प्रीमेच्योर कोई बात हो जाए तो उसमें बड़ी अपंगता रह जाती है। जैसे कोई प्रीमेच्योर बर्थ हो जाए, कोई बच्चा सात महीने में पैदा हो जाए तो वह ठीक से, स्वस्थ कभी नहीं रह पाता। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे भीतर जल्दी श्रद्धा आए। करो, जितने संदेह हो सकते हो, करते जाओ। देखते नहीं श्रीमद् भागवत गीता में अर्जुन संदेह पर संदेह किए चला जाता है। भगवान कृष्ण उत्तर देते हैं, फिर उस उत्तर में से वह चार प्रश्न खड़े कर देता है। फिर कृष्ण समझाते हैं। इसी प्रकार तो गीता के अट्ठारह अध्याय पैदा हुए। धन्यवाद दो अर्जुन को, उसमें कृष्ण का जितना हाथ है उससे ज्यादा बड़ा योगदान अर्जुन का है। अर्जुन तुम्हारी ही तरह रहा होगा अनुज, पूछता ही गया, पूछता ही गया। तुम भी जल्दबाजी न करना, चीजों को अपने आप धीरे–धीरे आने देना। जब वे स्वयं आती हैं तो उनमें एक सौंदर्य होता है। नौ माह के बाद जब बच्चे का जन्म होता है तब वह स्वस्थ पैदा होता है। ठीक ऐसे ही हमारे भीतर से श्रद्धा आनी चाहिए। भगवान बुद्ध की वाणी 'धम्मपद' पर बोलते हुए परमगुरु ओशो कहते हैं–

श्रद्धा पैदा नहीं होती, घबड़ाओ मत। कोई जल्दी भी नहीं है। झूठी श्रद्धा मत करना, पहली बात। जब तक न हो, करना मत। प्रतीक्षा करना। जल्दबाजी मत करना। क्योंकि जिसने झूठी श्रद्धा कर ली, वह सच्ची श्रद्धा से सदा के लिए वंचित रह जाएगा। संदेह करो, हर्ज क्या है? अभी संदेह है तो संदेह ही करो। कुछ तो करो। श्रद्धा नहीं सही, संदेह सही। संदेह से ही धीरे–धीरे श्रद्धा की तरफ उठोगे। संदेह करते–करते तुम पाओगे कि संदेह थकता है और गिरता है। मैं जो कह रहा हूं तुम उसे संदेह से काट न सकोगे। मैं जो कह रहा हूं वह तुम्हारे संदेह को काट देगा। होने दो संघर्ष। जल्दी कुछ नहीं है।

तुम जहां खड़े हो वहां तुमने झूठ को सच मान रखा है। इसलिए जब तुम सच को पहली बार सुनोगे, वह झूठ मालूम होगा। और थोड़ा सोचो। अंधी श्रद्धा मत करना। सच्ची श्रद्धा भी बेहतर है, झूठी श्रद्धा से। ईमानदार रहना। प्रामाणिक रहना।

गैलीलियो एक महान वैज्ञानिक हुआ। उसने लोगों से कहा कि कोई वजनदार चीज अथवा हल्की चीज ऊपर से जब गिरती है तो दोनों की गति एक सी होती है। लोगों ने नहीं माना। कोई तैयार ही नहीं हुआ इस बात को मानने के लिए। उसने कहा कि मैं प्रयोग करके, सिद्ध करके बता सकता हूं। लोगों ने कहा कि ये हो ही नहीं सकता, वजनदार चीज पहले गिरेगी, हल्की चीज बाद में गिरेगी। इटली में प्रसिद्ध पीसा की तिरछी मीनार है, गैलीलियो उस पर चढ़ा। एक किलो का पत्थर और दस किलो का पत्थर एक साथ मीनार से छोड़े गए, देखने वालों की बड़ी भीड़ थी। करीब लाखों लोग थे। दोनों पत्थर बिल्कुल एक साथ जमीन पर गिरे तब भी लोग बहुत नाराज हुए और उन्होंने कहा कि जरूर किसी भूत–प्रेत का कमाल है, ये आदमी कुछ चालबाजी कर रहा है, कुछ काला जादू कर रहा है, ये हो ही नहीं सकता। दस किलो का पत्थर पहले गिरना चाहिए और एक किलो के पत्थर को बाद में धीरे–धीरे गिरना चाहिए। गैलीलियो की बात उसके समकालीन लोगों ने नहीं मानी... इससे क्या फर्क पड़ता है! फिर तो गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत लागू हो गया और यह बात सिद्ध हो गई। आज

हम सब जानते हैं इस बात को लेकिन लाखों–लाखों साल तक लोग मानते रहे कि वजनदार चीज पहले गिरती है और हल्की चीज बाद में गिरती है जबकि दोनों की गति बिल्कुल एक समान होती है। क्या फर्क पड़ता है, तुम न करो भरोसा, चलने दो संघर्ष को। ओशो जो कह रहे हैं वह जीवन का परमनियम है। ताओ है, धम्म है। ताओ का अर्थ होता है नियम, धम्म का अर्थ धर्म नहीं होता। हम सामान्यतः धम्म से अर्थ निकालते हैं संगठन का, संप्रदाय का। धम्म का अर्थ होता है नियम। 'एस धम्मो सनंतनो', गौतमबुद्ध कहते हैं। तो जीवन के परमनियम से तुम कैसे संघर्ष करोगे! लेकिन जल्दबाजी न करो। जब तक तुम्हारा मन है करते चलो, करते चलो। अंततः तो सत्य की ही विजय होगी।

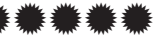

अगला प्रश्न है सोनीपत, हरियाणा से स्वामी प्रेम अंतस का। मन के विचार परिवर्तनशील क्यों हैं?

यह मन का स्वभाव है, इसको रोकने की जरूरत नहीं। कई साधक मन के विचारों को रोकने की कोशिश में पड़ जाते हैं और बुरी तरह पराजित होते हैं, आत्मग्लानि में पड़ जाते हैं, सेल्फ कंडेमनेशन, स्वयं की निंदा पैदा हो जाती है। तुमसे कहा किसने विचारों को रोकने के लिए? ...ये तो ऐसे ही हैं जैसे आकाश में बादल तैरते हैं। बादलों के रूप बदलते रहते हैं, यहां से वहां हवाएं चलतीं हैं और बादल डोलते रहते हैं। आना–जाना बादलों का स्वभाव है, बादलों को नहीं बदलना है। मैं आपका ध्यान दूसरी तरफ ले जाना चाहता हूं, उस आकाश की ओर जिसमें बादल गति कर रहे हैं। तुम वह आकाश हो, तुम्हारी आत्मा आकाश स्वरूप है।

आने जाने दो विचारों को, उससे कोई हर्ज नहीं। तुम अपना ध्यान विचारों से हटाकर उस चैतन्य पर लगाओ जिसमें ये विचार आवागमन कर रहे हैं। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है, साइकिल के स्पोक्स और वह जो कील है, उसकी धुरी, स्थिर रहती है, ठीक इसी प्रकार दोनों चीजें हैं। आतीं–जातीं चीजें हैं विचार, भावनाएं इत्यादि। उन्हें आने जाने दो। उन्हें रोकने की कोशिश नहीं करना। जो रुकी हुई कील है, उस स्थिर ऐक्सिस पर अपने ध्यान को लाओ। सभी ध्यानी साधकों के लिए यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन की भावनाओं में न उलझना, हृदय के ऊहापोह में मत पड़ना, उन्हें रोकने की कोशिश न करना। तुम तो अपना ध्यान उस स्थिर तत्व पर लाओ जो तुम्हारा चैतन्य है। वह आकाश जैसा सदा–स्थिर है।

आकाश में सबकुछ आता–जाता है। सृष्टि बनती, प्रलय होती है, पृथ्वी घूमती,, चांद–तारे घूमते। पर आकाश न कभी उगता है और न कभी डूबता है। ठीक इसी प्रकार इन परिवर्तनशील चीजों से ध्यान को हटाकर उस शाश्वत आकाश रूपी चैतन्य पर अपने ध्यान को लाओ। विचारों के परिवर्तन को चलने दो। वह उनकी प्रकृति है, वह वैसा ही होता रहेगा।

मैंने सुना है एक लड़के को लड़कियों के हॉस्टल में सफाई करने का काम मिला। बड़ी खुशी–खुशी उसने उस काम को स्वीकार कर लिया। एक महीने बाद जब उसे तनख्वाह देने के लिए बुलाया गया तो वह बहुत आश्चर्यचकित हुआ और उसने कहा कि क्या इस काम की तनख्वाह भी मिलेगी। ये थे कुंवारे लड़के के विचार! लड़कियों के हॉस्टल में काम करने को ही वह स्वर्ग समझ रहा था, इसकी सैलरी भी मिलेगी यह तो उसने सोचा भी नहीं था! अब सुनो

उसी लड़के के शादी होने के बाद के विचार!

उससे किसी ने पूछा कि कोई महिला मरकर स्वर्ग चली जाए तो तुम उसे क्या कहोगे? उसने कहा कि मैं उसको कहूंगा सौभाग्यशाली स्वर्गीय महिला। फिर उससे पूछा गया कि मान लो पृथ्वी की सारी महिलाएं मरकर स्वर्ग चली जाएं तो उसे तुम क्या कहोगे? उस शादीशुदा मर्द ने कहा– पृथ्वी पर और शांति की घड़ी, पृथ्वी पर स्वर्ग का उतर आना और पृथ्वी का सौभाग्य। शादी के पहले विचार कुछ और थे, निश्चित रूप से शादी के बाद बदल जाएंगे। जिंदगी में रोज–रोज अनुभव होंगे, तुम्हारे विचार बदलेंगे। विचारों की इस परिवर्तनशील शृंखला को स्वीकारो, वे ऐसे हैं। भावनाएं बदलेंगी, परिस्थितियां बदल जाएंगी, तुम्हारे अनुभव बदल जाएंगे, तुम्हारी अनुभूतियां बदल जाएंगी, तुम्हारी समझ विकसित होगी। तो विचारों की परिवर्तनशीलता को समस्या की तरह न लो। तुम तो उस अपरिवर्तनशील शाश्वत और सनातन चैतन्य की तरफ ध्यान दो।

ऊपर–ऊपर खुशहाल जिंदगी, भीतर बिल्कुल कंगाल जिंदगी,
उत्तर रहित सवाल जिंदगी, है ऐसी क्यूं बेहाल जिंदगी?
पूछा है डॉ. मनोहर चौबे, पी.एच.डी. ने।

अभी पहले के दो सवाल सुने न! उन्हीं में तुम्हारे सवाल का उत्तर भी छिपा है डॉ. चौबे। विचार तो बहुत हैं, विचारों का शोर बहुत है, निर्विचार का शून्य नहीं है। सिद्धांतों के जाल तो बहुत हैं, सिद्धि का सौंदर्य नहीं है। विज्ञान तो खूब विकसित हो गया, आत्मज्ञान विकसित न हुआ। परिस्थितियां बदलने पर जोर है मन:स्थिति की तरफ ध्यान ही नहीं है। शिक्षा और सभ्यता खूब है, संस्कृति का कहीं अता–पता नहीं है। याद रखना, सभ्यता और संस्कृति, दोनों एक चीज नहीं होतीं। सभ्यता तो सामाजिक औपचारिकताएं हैं। संस्कृति बड़ी अद्‌भुत और अनूठी बात है... वह तो भीतर ध्यान घटे, समाधि घटे तो ही पैदा होती है।

मस्तिष्क तो बहुत–बहुत बोझिल हो गए हैं, हृदय के भाव बिल्कुल मर गए हैं। दिमाग ही दिमाग पर जोर है, दिल बिल्कुल उपेक्षित हो गया है और आत्मा को तो हम भूल ही गए हैं। उस चैतन्य का तो हमें ख्याल ही नहीं है। इसलिए तुम्हें ऐसा लगता है कि ऊपर–ऊपर खुशहाल जिंदगी, भीतर बिल्कुल कंगाल जिंदगी।

हमारे भीतर तीन केन्द्र हैं– मस्तिष्क विचारों का केन्द्र है, हृदय भावनाओं का केन्द्र है और नाभि जीवन का, प्राणों का केन्द्र है। हमारी तथाकथित शिक्षा और सभ्यता ने मस्तिष्क पर तो बहुत बल दिया, उसे विकसित करने के तो बहुत उपाय किए, भावनाओं की बिल्कुल उपेक्षा कर दी। फिर भी थोड़ी बहुत भावनाएं बची हैं, वो प्रकृति की कृपा से। लेकिन आत्मा को तो हम बिल्कुल ही भूल गए हैं। उसकी तो कहीं कोई शिक्षा हो ही नहीं रही है। न तो कहीं प्रेम सिखाया जा रहा है, न कहीं करुणा सिखाई जा रही है। फिर भी प्रकृति की कृपा से कुछ प्रेम, कुछ करुणा, कुछ दया, कुछ सद्‌भाव, कुछ मैत्रीभाव हृदय में थोड़ा–बहुत शेष बचा है। लेकिन आत्मा–परमात्मा, ध्यान–समाधि, इनका तो बिल्कुल ही विस्मरण हो गया है। इसलिए

इतना खालीपन लगता है। तुम पूछते हो उत्तर–रहित सवाल जिंदगी, है ऐसी क्यों बेहाल जिंदगी? उत्तर मिल सकता है। समाधि में समाधान होता है, उसके बिना कोई उत्तर नहीं है। सवाल ही सवाल हैं बस। एक सवाल में से दस नए सवाल खड़े हो जाते हैं। कुछ और करना होगा। अपनी जीवन की दिशा को अंतर्गामी करना होगा। सुनो यह गीत–

पानी बहता चलता है, सब दुख सहता चलता है,
लहरें हैं कुछ मैली–मैली, मौजें हैं कुछ फैली–फैली,
पौधे झुक–झुक पड़ते हैं, पत्ते चुप–चुप झड़ते हैं,
तारे टिम–टिम होते हैं, पंक्षी छिपकर रोते हैं।
चांद भी है कुछ खोया सा, कुछ जागा कुछ सोया सा,
गुलशन में खामोशी है, हर कोपल में बेहोशी है,
हर ज़र्रा चुप, हर कतरा चुप, अफलाग का एक–एक तारा चुप,
चंपा की सब कलियां चुप हैं, दरिया की सब मौजें चुप हैं।

एक अजीब सन्नाटा सारी धरती पर छाया है, विचारों का बोझ बहुत बढ़ गया है। भावनाओं की कीमत गिर गई है, आत्मा का तो कहीं पता ही नहीं है। और परमात्मा का तो नामोनिशान ही मिट गया है। दुनिया में फिर से अध्यात्म को जीवंत करना होगा। पुराने प्रकार के धर्म अब नहीं चलेंगे, अब तो एक नए प्रकार की धार्मिकता, ओशो जिसे कहते हैं धार्मिकता, रिलीजियसनेस, नॉट रिलीजन्स, अब तो उसका ही उदय हो तभी जीवन में फिर खुशहाली आएगी, ये भीतर की कंगाली मिटेगी।

विज्ञान के द्वारा, विचार के द्वारा, मस्तिष्क के द्वारा बाहर की खुशहाली पैदा करके देख ली ...उससे भीतर की कंगाली न मिटी। याद रखना, मैं बाहर की खुशहाली के विपक्ष में नहीं हूं, मैं विज्ञान का विरोधी नहीं हूं और न ही विचार और विवेक का विरोधी हूं उनका सम्मान है लेकिन सिर्फ वे पर्याप्त नहीं हैं, हृदय को भी जगह देनी होगी। हृदय की भी शिक्षा होनी चाहिए और ध्यान समाधि की भी शिक्षा होनी चाहिए। तब जाकर एक पूर्ण मनुष्य पैदा होगा। और तभी जाकर भीतर की कंगाली मिटेगी। धन्यवाद। जय ओशो।

आनंद की दिशा में एक कदम तो उठाएं!

आधुनिक मनुष्य की बड़ी मानसिक बीमारियों में से एक है– अधैर्य, शीघ्रता। किंतु आश्चर्य यह कि इलाज की बात तो दूर, कोई इसे रोग ही नहीं मानता! ध्यानी के पास होनी चाहिए प्रतीक्षा की क्षमता। ध्यान का पौधा मौसमी फूलों की तरह नहीं है, कि आज बीज बोए, 15 दिन में पौधा तैयार। विराट वटवृक्ष की भांति है धर्म की साधना।

जितनी महत्त्वपूर्ण घटना हो उसके फूलने–फलने में उतना ही अधिक समय लगता है। बैक्टीरिया वाइरस की संतान 20 मिनिट में पौढ़ हो जाती है, और अगली पीढ़ी को जन्माने लगती है। मक्खी मच्छर अपने 2–3 सप्ताह के जीवनकाल में 150–200 अंडे प्रतिदिन देते हैं। पंक्षियों के बच्चे परिपक्व होने में 10–15 दिन लेते हैं। पशुओं के बच्चों का विकास 2–4 माह लेता है। मनुष्य का बच्चे की प्रतिभा प्रौढ़ होने में 25–30 वर्ष का वक्त लेती है। कुत्ते के बच्चे से ज्यादा उम्मीद नहीं है। उसके विकास की संभावना अत्यंत सीमित है।

आदमी के विकास की अनंत संभावनाएं हैं। वह इंसान से भगवान बन सकता है। पतन का खतरा भी भयंकर है। वह शैतान भी बन सकता है। कोई गधा या घोड़ा, सिकंदर या हिटलर जैसा हैवान नहीं बन सकता। सभी प्राणियों की नियति लगभग सुनिश्चित है। आदमी का सौभाग्य है, और दुर्भाग्य भी यही है कि प्रकृति ने उसे स्वतंत्र छोड़ा है।

प्रतिभा की प्रौढ़ता में में 25–30 साल लगते हैं, यह तो साधारण सांसारिक बुद्धिमत्ता की बात है। आध्यात्मिक रूप से विकसित होने में तो अनेक जन्म लगते हैं। जितना धैर्य, उतना शांत चित्त, उतने ही कम जन्म लगते हैं। जितनी जल्दबाजी में, उतनी अशांति की दशा, उतनी ही देर लगती है। प्रार्थना के संग जितनी गहन प्रतीक्षा की तैयारी, उतने शीघ्र परिणाम संभव। यही उलटबांसी है। लेकिन यह पढ़कर घबरा न जाना। यहां कोई नया नहीं, हम सब अनंत जन्मों से आत्मिक विकास की इस यात्रा पर हैं। यदि इस बार कुछ कदम उठा लिए, तो अपनी मनुष्य योनि को सार्थक समझें।

सदगुरु ओशो ने ध्यान–समाधि में डूबने की, एवं पिछले जन्मों को जानने की विधियों में बहुत परिष्कार किया है। तीव्र गति से परिणाम लाने वाली नई पद्धतियां ईजाद की हैं, ताकि आधुनिक व्यस्त मानव भी अपने जीवन को व्यर्थ न खोए। ओशो फ्रेगरेंस के समाधि शिविरों तथा प्रज्ञा कार्यक्रमों में इन अनूठी आध्यात्मिक तकनीकों का प्रयोग करके हजारों साधक–साधिकाओं ने अपनी जिंदगी को रूपांतरित कर लिया है। शांति व आनंद की दिशा में एक कदम बढ़ाने हेतु आपका भी स्वागत है। एक–एक कदम चलकर ही हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। अंततः परमात्मा की मंजिल भी मिल जाती है।

आत्म–सम्मोहन (सेल्फ–हिप्नोसिस) सीखिए सिर्फ सफलता ही नहीं, सुफलता भी पाइए

शेक्सपीयर के अनुसार 'हमारा जीवन बगीचा है और हम इसके बागवान हैं।' बागवान अपनी? भावनाओं व धारणाओं के अनुरूप विचारों के बीज अवचेतन मस्तिष्क में बोता है। फिर जैसा बोता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। तदनुसार ही मन–तन में परिवर्तन, एवं घटनाओं का प्रगटीकरण होता है। इसलिए प्रत्येक विचार एक कारण है एवं प्रत्येक दशा एक प्रभाव है।

सद्गुरु ओशो कहते हैं कि मनस्थिति ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, परिस्थिति नहीं। मनस्थिति से परिस्थिति निर्मित होती है। इसी कारण, यह आवश्यक है कि हम अपने विचारों को ऐसा बनाएँ ताकि हम इच्छित स्थिति को प्राप्तकर जीवन को सुख–शांति–प्रीति से भर सकें। यही बड़ी से बड़ी जीवन–क्रांति का सूत्र है।

क्या आप अपने जीवन में सफलता ही नहीं, सुफलता भी चाहते हैं? ओशो फ्रेगरेंस के 'सम्मोहन प्रज्ञा' नामक कार्यक्रम में सुफलता के सोपानों पर चढ़ने की विधि सिखाई जाती है। सेल्फ–सजेशन द्वारा आत्म–सम्मोहन करके जिंदगी में मनचाहा परिवर्तन किया जा सकता है। देश–विदेश के कई हजार लोग अब तक इसका लाभ उठाकर स्वयं की जिंदगी मनचाही मंजिल तक ले जा चुके हैं। हमारे अवचेतन मन में चेतन मन से कई गुनी अधिक शक्ति छिपी है, उसका प्रयोग करने की कला सीखकर चमत्कारी परिणाम लाना संभव है।

चेतन खंड सम्पूर्ण मस्तिष्क का दस–बारह प्रतिशत ही होता है। इससे नौ गुना बड़ा खंड मस्तिष्क का अवचेतन अंग है। हमारे सारे अनुभव, सुनी–पढ़ी जानकारी, दमित इच्छाएँ एवं दमित विचार हमारे अवचेतन में संचित हैं। ये हमारे व्यक्तित्व को बनाते व प्रभावित करते हैं और हमारे व्यवहार एवं आचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन अक्सर ये प्रभाव नकारात्मक ही होते हैं। चूंकि हम अवचेतन के प्रति जाग्रत नहीं हैं, अतः उसका सकारात्मक तरीके से प्रयोग नहीं कर पाते। जैसे आदिकाल से बादलों में चमकती बिजली हमारे पूर्वजों को डराती रही; किंतु विद्युत क्या है, यह मालूम हो जाने पर वह मानव जाति की सबसे बड़ी सेविका बन गई।

आइए, आप भी ओशो फ्रेगरेंस के त्रिदिवसीय 'आत्म–सम्मोहन (सेल्फ–हिप्नोसिस)' में शामिल होकर अपने मन की संपूर्ण शक्ति का उपयोग करिए तथा जीवन को मनोवांछित दिशा दीजिए। केवल सफलता ही नहीं, सुफलता हासिल कीजिए। जीवन–वृक्ष के फल सत्यं, शिवं, सुंदरं के स्वाद से ओतप्रोत हों; शांति, प्रीति, मुक्ति की सुगंध से सुवासित हों, तो ही सच्चिदानंद और परम संतुष्टि संभव है!